श्री उत्कर्ष I.A.S
हिन्दी माध्यम का अप्रतिम संस्थान

हिन्दी साहित्य

प्रश्न–पत्र (प्रथम)

खण्ड " क "

भाषा – विज्ञान

1425, औट्रम लाईन
किंगजवे कैम्प, दिल्ली – 9
27659400, 9868448606

" श्री उत्कर्ष I.A.S "

हिन्दी साहित्य

प्रश्न-पत्र (प्रथम)

(खण्ड " क ")

भाषा-विज्ञान

1.	अपभ्रंश का सामान्य परिचय	1 - 12
2.	काव्य भाषा और मध्यकालीन काव्य भाषा अवधी	12 - 26
3.	अवधी की व्याकरणिक विशेषताएँ	27 - 34
4.	साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रजभाषा का विकास	35 - 43
5.	सूरपूर्व काव्य भाषा के सामान्य लक्षण	44 - 53
6.	खड़ी बोली हिन्दी का प्रारंभिक रूप	54 - 61
7.	रासो साहित्य, विद्यापति, अमीर, खुसरू	62 - 70
8.	संत साहित्य	71 - 85
9.	खड़ी बोली का विकास	85 - 91
10.	हिन्दी भाषा का मानकीकरण	92 - 100
11.	स्वाधीनता आंदोलन के दौरान खड़ी बोली का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास	101 - 106
12.	राजभाषा के रूप में हिन्दी की संवैधानिक स्थिति	107 - 114
13.	आज के कम्प्युटर युग में देवनागरी लिपि की सार्थकता	115 - 128
14.	हिन्दी की विभिन्न बोलियों का परस्पर अंत: संबंध	129 - 133
15.	देवनागरी लिपि :- आरंभिक युग	134 - 149
16.	मानक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताएँ	150 - 159
17.	हिन्दी और उच्च प्रौद्योगिकी	160 - 169
18.	बैंको में हिन्दी	170 - 173
19.	हिन्दी का विकासशील स्वरूप	174 - 201

[illegible]

अपभ्रंश का सामान्य परिचय

मुख्य विचार बिन्दु :

1. **अपभ्रंश – संज्ञा + अपभ्रंश का अर्थ + अपभ्रंश शब्द की प्राचीनता**
2. **अपभ्रंश के भेद + अपभ्रंश की विशेषताएं**
3. **अपभ्रंश का साहित्य – प्रमुख रचनाकार**
4. **हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग**

भारतीय आर्य भाषा के विकास की जो अवस्था अपभ्रंश के नाम से जानी जाती है उसके लिए प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में 'अपभ्रष्ट' तथा 'अपभ्रंश', प्राकृत ग्रंथों में 'अवब्भंस', 'अवहंस', अवहत्थ','अवहट्ठ', 'अवहठ', 'अवहट' आदि नाम मिलते हैं। संस्कृत में प्रायः अपभ्रंश शब्द ही मिलता है। अवहत्थ, अवहट्ठ, अवहठ, अवहट – अपभ्रष्ट के तद्भव रूप हैं। इनका प्रयोग परवर्ती कवियों में विशेष रूप से पाया जाता है।

स्वयंभु ने अपनी रामायण में (8वीं शताब्दी) अवहत्थ का प्रयोग किया है। अद्दहमाण के 'संदेशरासक' (12वीं शती), 'ज्योतिरीश्वर वर्णरत्नाकर' (14वीं सदी) विद्यापति की 'कीर्तिलता' और 'प्राकृत पैंगलम' में (14वीं सदी) में अवहट्ठ का प्रयोग हुआ है।

अपभ्रंश का अर्थ है – भ्रष्ट, स्खलित, विकृत, अशुद्ध। भाषा के सामान्य मानदण्ड से जो शब्द च्युत हों – उन्हें अपभ्रंश कहते हैं।

अपभ्रंश शब्द की प्राचीनता – लगभग दो शताब्दी ईसा पूर्व पतंजलि ने अपने 'महाभाष्य' में 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग किया है – 'एकैकस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशाः' अर्थात् एक शब्द के बहुत से अर्थ होते हैं। म्लेच्छ, आर्येतर तथा निम्नश्रेणी के लोगों में संस्कृतनिष्ठ शब्दों के विकल्प में अनेक शब्द प्रमाणित रहे होंगे . . . .

परिनिष्ठित व्याकरण से च्युत लोकशब्द ही अपभ्रंश है।

भाषा–विशेष के अर्थ में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग प्रायः छठी शताब्दी/ईस्वी के आसपास मिलता है। प्राकृत वैयाकरणों में चण्ड प्रथम हैं जिन्होंने स्पष्ट रूप से भाषा के अर्थ में अपभ्रंश का प्रयोग किया है। इसी तरह संस्कृत आलंकारिकों में भामह को अपभ्रंश के प्रथम

नामोल्लेख का श्रेय है। वलभी के राजा धारसेन द्वितीय के ताम्रपत्र (छठी शताब्दी) में भी अपभ्रंश के भाषीय अस्तित्व की पुष्टि होती है।

स्पष्टतः छठी शताब्दी में अपभ्रंश का भाषा के अर्थ में प्रयोग होने लगा था ..... संस्कृत प्राकृत के बाद अपभ्रंश को ही स्थान प्राप्त था।

अपभ्रंश के विकास में राजकीय तथा धर्मिक संगठनों का पर्याप्त योगदान रहा। इसे विशाल राष्ट्रीय भाषा बनाने में मान्यखेट के राष्ट्रकूट, बंगाल के पाल तथा गुजरात के सोलंकी चालुक्यों ने पर्याप्त मदद की। जैन तथा सिद्ध कवियों ने अपभ्रंश में साहित्य की रचना की।

अपभ्रंश के भेद :

अपभ्रंश के व्यापक प्रचार प्रसार होने के कारण अपभ्रंश के अनेक क्षेत्रीय भेदों एवं उपभेदों का होना स्वाभाविक है। विभिन्न भाषाविदों ने अनेक आधारों पर अपभ्रंश के अनेक भेद किये हैं :

1. नमि साधु (11वीं सदी) – उपनागर, आभीर, ग्राम्य
2. मार्कण्डे (17वीं सदी) – नागर, उपनागर, प्राचड तथा 27 उपभेद
3. डा0 तगारे – पश्चिमी, पूर्वी तथा दक्षिणी – अपभ्रंश
4. डा0 धीरेन्द्र वर्मा – शौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री, पैशाची

पूर्वी अपभ्रंश

इस भेद की परिकल्पना सरह, कण्ह आदि बौद्ध सिद्धों के दोहों व कोशों के आधार पर की गई है।

पश्चिमी अपभ्रंश

यह शौरसेनी प्राकृत का परवर्ती रूप है जो गुजरात और राजस्थान की बोलियों में मिश्रित हो गया है। इसका प्राचीनतम रूप कालिदास के 'बिक्रमोर्वशीयम्' में दृष्टिगत होता है। अपभ्रंश की अधिकांश रचनाएं – भविष्यत्त कहा, परमात्म–प्रकाश, योगसार, पाहुड़ दोहा – इसी में लिखी गई हैं।

दक्षिण अपभ्रंश

दक्षिणी अपभ्रंश की अवधारणा महापुराण, जसहर चरिउ, णयकुमार चरिउ और करकंड चरिउ के आधार पर की गयी है।

वैयाकरणों ने अपभ्रंश के प्रायः तीन भेद स्वीकार किये हैं –

1. नागर : यह गुजरात की बोली थी। इसकी व्युत्पत्ति नागर ब्राह्मणों और नगर से मानी जाती है। यह शिष्ट भाषा थी तथा अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य इसी भाषा में लिखा गया।
2. उपनागर : यह राजस्थान की बोली थी। इसका स्वरूप नागर और व्राचड़ के मिश्रण से तैयार हुआ है।
3. व्राचड़ : यह सिन्ध प्रदेश की बोली थी।

अपभ्रंश के प्रमुख रचनाकार एवं रचनाएं

1.	ज्योतिरीश्वर	–	वर्णरत्नाकर
2.	वंशीधर	–	प्राकृत पैंगलम्
3.	अद्दहमाण	–	संदेसरासक
4.	स्वयंभु	–	पउम चरिउ
5.	पुष्पदंत	–	महापुराण
6.	विद्यापति	–	कीर्तिलता
7.	दामोदर शर्मा	–	उक्ति व्यक्ति प्रकरण
8.	रोड	–	राउल बेल

अपभ्रंश की विशेषताएं

1. परसर्गों की बहुलता
2. क्रियापदों में तिङत की जगह कृदन्त की मान्यता। वाक्य–विन्यास में शब्दों की क्रमिकता, उकार बहुलता आदि अपभ्रंश की विशेषताएं हैं।

विशेषताएं

1. अपभ्रंश में संस्कृत व्याकरण के विस्तार को अत्यंत संक्षिप्त करके भाषा के ढांचे को अत्यंत सरल बना दिया।
2. विभक्ति चिन्हों की संख्या बहुत घट गई।
3. कारकों के लिए परसर्ग–प्रयोग की बहुलता आई।
4. क्रियापदों में तिङत की जगह कृदन्त की मान्यता।
5. वाक्य–विन्यास में शब्दों की क्रमिकता।
6. उकार बहुलता।

अपभ्रंश एवं उनकी व्याकरणिक विशेषताएं

भारतीय आर्यभाषा के विकास की जो अवस्था अपभ्रंश के नाम से जानी जाती है उसके लिए प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में अवब्भंस, अवहंस, अवहत्थ, अवहट्ठ, अवहठ, अवहट आदि नाम मिलते हैं। 'विष्णुधर्मोत्तर' जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर संस्कृत में अपभ्रंश शब्द का ही प्रयोग मिलता है। आठवीं शताब्दी में स्वयंभू ने अपनी रामायण में अवहत्थ शब्द का प्रयोग किया है। अवहट्ठ, अवहठ, अवहट शब्दों का प्रयोग बारहवीं शताब्दी में अद्दहमाण ने 'संदशरासक' में, 14वीं शताब्दी में ज्योतिरीश्वर एवं विद्यापति ने क्रमशः 'वर्णरत्नाकर' एवं 'कीर्तिलता' में किया है।

अपभ्रंश का सामान्य अर्थ है – भ्रष्ट, स्खलित, विकृत अथवा अशुद्ध। वस्तुतः अपभ्रंश उन शब्दों को कहा गया जो भाषा के सामान्य मानदण्ड से च्युत थे। अपभ्रंश ने संस्कृत व्याकरण के विस्तार को अत्यन्त संक्षिप्त करके भाषा के ढांचे को अत्यन्त सरल बना दिया। विभक्ति–चिह्नों की संख्या बहुत घट गई। विभक्तियों के विकारी रूप कारक निर्माण में समर्थ समझे जाने लगे। कारकों के लिए परसर्ग–प्रयोग की बहुलता आई। क्रिया–पदों में तिङत रूपों की जगह कृदन्त रूपों का प्रयोग होने लगा। वाक्य–विन्यास में शब्दों का स्थान और क्रम भी महत्वपूर्ण हो उठा। अपभ्रंश भाषा के अध्ययन से उसकी निम्नांकित विशेषताएं लक्षित होती हैं।

ध्वनि–संरचना संबंधी विशेषताएं :

अपभ्रंश ध्वनियां मूलतः प्राकृत ध्वनि–समूह का ही अनुसरण करती हैं। अपभ्रंश की विशिष्टता केवल दो बातों में दिखाई पड़ती है –

1. ध्वनि परिवर्तन की जो प्रवृत्ति प्राकृत में सामान्य थी वह अपभ्रंश में विशेष प्रबल अथवा प्रधान हो उठी।

2. अपभ्रंश में कुछ ध्वनि–परिवर्तन ऐसे भी हुए जो प्राकृत से सर्वथा नए थे। कुछ नए परिवर्तन इस प्रकार हैं –

(1) **अन्त्य स्वर का ह्रस्वीकरण** ध्वनि–परिवर्तन की पहली और प्रधान प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति संस्कृत, पालि और प्राकृत में थी, लेकिन अपभ्रंश में यह प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल हो गई। जैसे – देवा > देवु

(2) **उकार बहुलता अपभ्रंश** की ध्वनि–संरचना का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। ब्रजभाषा और अवधी में जो मनु, अंगु आदि रूप मिलते हैं, वे अपभ्रंश से चले आ रहे हैं।

(3) शब्दों के उच्चारण में कई स्वरों का रूप बदल गया। जैसे – सिंह > सीह, जिह्वा > जीह, सीता > सिय।

(4) व्यंजन संयोग को सरल करने के लिए प्रायः संयुक्त व्यंजनों के बीच को लाया गया। जैसे वर्ष > वरिस, आर्य > आरिय।

(5) कई शब्दों में **स्वर–लोप** हो गया। जैसे – अरण्य > रण्ण, अहं > हउं, उपविष्ठ > वइट्ठ।

अपभ्रंश में व्यंजन ध्वनियों के परिवर्तन सम्बन्धी कोई सर्वथा नयी और प्रमुख प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती। वहां भी वह बहुत कुछ प्राकृत का ही अनुसरण करती है। अपभ्रंश में व्यंजन की स्थितियां इस प्रकार थीं :

(1) ङ, ञ, न, श, ष अनुपस्थिति हैं।

(2) शब्दों में ट और ण की बहुलता है।

(3) न का ण, य का ज और श, ष का स हो गया था। जैसे – नगर > णयर, यदि > जई।

(4) अन्त्य व्यंजन का लोप हो गया। जैसे – जगत्–जग, पश्चात्–पच्छा।

(5) संयुक्त व्यंजन प्रायः नहीं रहे। इनमें य्, र्, ल्, व् की क्षति बहुत अधिक हुई। फलस्वरूप इनके साथ के व्यंजन का द्वित्व हो गया। जैसे – चक्र > चक्क, मार्ग > मग्ग।

रूप–निर्माण संबंधी विशेषताएं :

अपभ्रंश में ध्वनि की अपेक्षा उसकी व्याकरण कोटियों में अधिक परिवर्तन हुए। विद्वानों की मान्यता है कि रूप–निर्माण के संदर्भ में ही अपभ्रंश प्राकृत से भिन्न अपने अस्तित्व को प्रकट करती है और भाषा के ऐतिहासिक विकास को घोषित करती है। अपभ्रंश के विशेषज्ञों ने उसकी रूप–निर्माण की निम्नांकित प्रवृत्तियों का निर्देश किया है :

1. रूप–निर्माण की दृष्टि से प्रातिपदिकों की विविधता अपभ्रंश में नहीं रही। रूप–निर्माण की दृष्टि से अपभ्रंश में केवल **अकारान्त पुल्लिंग** प्रातिपदिक की सत्ता थी।

2. व्याकरणिक लिंग–भेद क्रमशः समाप्त हो चला था और नपुंसक लिंग व्यावहारतः लगभग लुप्त हो गया था।

3. अपभ्रंश तक आते–आते कारक विभक्तियां सिमट कर केवल समूहों में एकत्र हो गई थीं :

पहला समूह – प्रथमा, द्वितीय और सम्बोधन का
दूसरा समूह – तृतीया और सप्तमी का
तीसरा समूह – चतुर्थी, पंचमी और षष्ठी का

इस प्रकार जहां संस्कृत में कारकों के लिए एक शब्द के 21 रूप होते थे और प्राकृत में 12, वहां अपभ्रंश में लगभग दो रूप रह गये।

4. निर्विभक्तिक पदों तथा सविभक्तिक रूपों से उत्पन्न अव्यवस्था और गड़बड़ी को दूर करने के लिए अपभ्रंश में अनेक स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग परसर्ग की तरह किया जाने लगा। जैसे – तृतीय के लिए सहूँ, तण्, चतुर्थी के लिए केहि, रेसि इत्यादि।

5. काल–रचना की दृष्टि से अपभ्रंश धातुओं के तिङन्त रूप मुख्यता लट्, लोट् और लृट् लकारों में ही होते थे। शेष लकारों के रूप प्रायः कृदन्त होने लगे।

6. अपभ्रंश में संयुक्त क्रिया बनाने की प्रवृत्ति बहुत तेजी से विकसित हुई, जबकि वह प्राकृत में नहीं थी। जैसे – मज्जिउ जति, भग्गा एन्तु आदि।

7. पूर्वकालिक क्रिया के प्रत्ययों में अपभ्रंश ने मुख्यतः 'इ' को ही अपनाया। जैसे– सुनि, चलि, करि आदि।

8. अपभ्रंश में सर्वनाम के रूपों में कमी आई।

उच्चारण और व्याकरण के अतिरिक्त अपभ्रंश ने **शब्दकोश** के क्षेत्र में भी विकास का नया चरण रखा। कुछ तो उसने तद्भव शब्दों में और भी ध्वनि–परिवर्तन करके अपनी छाप लगा दी और कुछ देसी शब्दों के ग्रहण से अपना कोश समृद्ध किया।

समग्रतः अपभ्रंश एक मिश्रित भाषा थी जिसने अपने शब्दकोश का अधिकांश साहित्यिक प्राकृतों से ग्रहण किया और अपना व्याकरणिक गठन देशी भाषाओं से। अपभ्रंश के शब्द–समूह में प्राचीनता थी लेकिन उसके व्याकरण में नवीनता के अंकुर थे। उसका व्याकरण प्राकृत के प्रभाव से मुक्त होकर लोक–बोलियों के सहारे भारतीय आर्य भाषा के विकास की नूतन संभावनाएं प्रकट कर रहा था। वस्तुतः इसी अपभ्रंश के गर्भ से अनेक क्षेत्रीय भाषाओं का जन्म हुआ।

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान

लगभग एक हजार वर्ष की यात्रा–प्रक्रिया में आज हिन्दी जिस मुकाम पर पहुंची है उसमें अनेक भाषाओं का योगदान रहा है। भारत की सामासिक संस्कृति को भाषा और साहित्य दोनों ही धरातलों पर धारण करने वाली हिन्दी का आरम्भ दसवीं शताब्दी के आसपास हुआ। विद्वानों की मान्यता है कि भारतीय आर्य भाषाओं के उदय के साथ–साथ हिन्दी का प्रादुर्भाव हुआ।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि भारतीय आर्य भाषाओं का उदय अपभ्रंशों से हुआ। हिन्दी के बीज भी अपभ्रंश में ही निहित थे। इसलिए भाषिक संदर्भ में यह माना गया है कि रूप–रचना से लेकर साहित्यिक रूपों तक में अपभ्रंश ने हिन्दी को प्रभावित किया है। अपभ्रंश और हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि हिन्दी निम्नांकित महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर अपभ्रंश से प्रभावित है (अथवा निम्नांकित बिन्दुओं पर इसका योगदान है) –

1. **अन्त्य–स्वर का लोप** – अन्त्य स्वर के लोप की जो प्रक्रिया अपभ्रंश में शुरू हुई थी, उसका निर्वाह और विस्तार हिन्दी में हुआ। वस्तुतः अन्त्य स्वर का लोप हिन्दी की ठेठ भाषिक पहचान है और यह पहचान उसे अपभ्रंश से उपलब्ध हुई है। द्रक्षा > दाख, निद्रा > नींद, चंचु > चोंच, बन्ध्या > बाँध आदि।

2. **पंचमाक्षर (ङ्, ञ, ज्, न्, म्) के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग** – पंचमाक्षरों के स्थान पर अनुस्वार के प्रयोग से भाषिक सरलीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। अपभ्रंश में भी 'अं' की बहुलता को हिन्दी ने छोड़ा और उसके स्थान पर अनुस्वार को प्राथमिकता दी। जैसे – अङ्क > अंक, बन्धन > बंधन, दण्ड > दंड, पञ्च > पंच आदि।

3. संस्कृत के **संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण** की प्रवृत्ति हिन्दी में अपभ्रंश से आई। इससे हिन्दी उच्चारण बहुत सरल हो गया। जैसे – काष्ठ > काठ, श्रेष्ठि > सेठ, आश्चर्य > अचरज, उद्वर्तन > उबटन आदि।

4. अनेक **महाप्राण ध्वनियों (ख, घ, थ, ध, भ) के स्थान पर 'ह' कर देने की प्रवृत्ति** प्राकृतों से चलकर अपभ्रंश–अवहट्ठ में और वहां से हिन्दी में आयी। जैसे –

संस्कृत		हिन्दी
आखेट	>	अहेट
कथानिका	>	कहानी
गर्दभ	>	गदहा
दुर्लभ	>	दूलहा
मधूक	>	महुआ आदि

5. शब्द के बीच में पड़ने वाले कग, चज, तद आदि का लोप होने से प्राकृत में ही 'अ' रह गया था। इसी कारण स्वरगुच्छों की संख्या बढ़ गई थी। जैसे गत से 'गअ' और गज से भी 'गअ'। इससे कई शब्द निरर्थक हो गए। इस स्थिति की प्रतिक्रिया में अपभ्रंश–अवहट्ट में स्वर–गुच्छों का संकोच हो गया। स्वर–संकोच की यह प्रवृत्ति हिन्दी में पाई जाती है। जैसे –

अपभ्रंश, अवहट्ट		हिन्दी
इअर	>	इतर
पआस	>	प्रकाश
बअन	>	वचन
तउ	>	तो
जीअन	>	जीना

6. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का एक महत्वपूर्ण योगदान **परसर्गों** का विकास है। को, से, का, के, की, में, पै, पर – परसर्गों का स्रोत अपभ्रंश ही है। 'के लिए' का विकास 'क लागि' से और 'ने' का विकास अपभ्रंश के 'तजे' या अवहट्ट के 'सजे' से माना जाता है।

7. हिन्दी के अनेक **सर्वनाम** भी अपभ्रंश–अवहट्ट से आये। अपभ्रंश का 'मह' हिन्दी में 'मैं' हो गया। 'तुहु' से 'तू' प्राप्त हो गया था। एह > यह, कित्ता > कितना, जित्ता > जितना आदि सर्वनामों का विकास अपभ्रंश, अवहट्ट से हुआ।

8. विद्वानों की मान्यता है कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान **क्रिया की रचना में कृदन्तीय रूपों का विकास** था जो अपभ्रंश और अवहट्ट में हुआ। वर्तमानकालिक कृदन्त 'त' और भूतकालिक कृदन्त 'इआ' ने क्रिया की काल रचना को सरल कर दिया। चलन्ता, चलिआ, भरन्ता, भरिआ का विकास बहुत ही उपयोगी घटना सिद्ध हुई।

9. अपभ्रंश में **संयुक्त क्रियाओं** का जो सूत्रपात हुआ था उसका विकास हिन्दी में हुआ। संयुक्त क्रियाओं के विकास से उनमें नयी अर्थवत्ता विकसित हुई। जैसे – आ गया, आ बैठा, आ सका, आ लिया आदि।

10. परवर्ती अपभ्रंश में **तत्सम शब्दों के पुनरूज्जीवन–विदेशी शब्दावली के ग्रहण और देशी शब्दों का गठन** द्रुत गति से बढ़ा। अपभ्रंश की इस उदार ग्रहणशीलता ने हिन्दी को अपना शब्द–भण्डार भरने में बहुत भारी सहायता दी।

इस प्रकार हिन्दी भाषा के गठन और विकास में अपभ्रंश का योगदान ऐतिहासिक है। इसके साथ साहित्यिक स्तर पर भी अपभ्रंश ने हिन्दी संवेदना एवं रूप–विन्यास के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हिन्दी के इतिहासकारों ने अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत ही स्वीकार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार – 'आदिकाल के भीतर अपभ्रंश की रचनाएं भी ले ली गई हैं क्योंकि वे सदा से 'भाषा काव्य' के अन्तर्गत ही मानी जाती रही हैं।' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी साहित्य का मूल रूप समझते हैं। ऐसी स्थिति में अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य की प्रगाढ़ता निर्विवाद है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी साहित्य अपभ्रंश का ही विकास है, क्योंकि हिन्दी की प्राणधारा में अपभ्रंश के साथ संस्कृत, प्राकृत एवं विदेशी साहित्य का भी योगदान रहा है, लेकिन फिर भी उसका योगदान महत्वपूर्ण है – इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने पर प्रभाव के निम्नांकित रूप दिखाई पड़ते हैं –

1. **भावधारा का अन्तर्विरोध** : विद्वानों ने लक्षित किया है कि अपभ्रंश साहित्य के भीतर **रूढ़ि–पोषक** और **नवोन्मेषशालिनी** दो प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियों का अस्तित्व मिलता है। इसमें **ग्राम्य और शिष्ट, रूढ़ और नवीन, राजस्तुति एवं ऐहिकतामूलक, शृंगारी तथा वीर काव्य** और इसके समानान्तर **निर्गुनियां संतों की शास्त्र–निरपेक्ष उग्रधारा, योगपद्धति,** कहीं–कहीं **भक्तिपरक रचनाओं** का अस्तित्व मिलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अपभ्रंश–साहित्य में दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों की उपस्थिति लक्षित होती है। हिन्दी साहित्य के आदिकालीन साहित्य में भी अन्तर्विरोध की यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इस काल में वीरगाथाओं के साथ धार्मिक रचनाएं भी हो रही थीं। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने इस युग को **"अनिर्दिष्ट लोकप्रवृत्ति"** का युग कहा और पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "स्वतो–व्याघातों का युग।"

2. **परवर्ती अपभ्रंश का रूढ़ काव्य और हिन्दी के चारण काव्यों में उसका निर्वाह** – हिन्दी के आरंभिक चरित काव्यों पर अपभ्रंश–चरित काव्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दी के **हम्मीर रासो, खुम्मान रासो, परमाल रासो, पृथ्वीराज रासो** आदि अपभ्रंश के परवर्ती चरित–काव्यों के ही विकास हैं। राजाओं के धन–वैभव, पराक्रम, विवाह–बाहुल्य एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन, इन ग्रंथों की जो मूल प्रवृत्ति है, उसके बीज अपभ्रंश में मिलते हैं। यद्यपि इन ग्रंथों की अपनी रचनात्मक उपलब्धियां भी हैं।

3. **अपभ्रंश लोकगीत और हिन्दी के शृंगारी मुक्तक** – अपभ्रंश में लोकजीवन के स्पर्श और लोक तत्वों की प्रचुरता की दृष्टि से अब्दुर्रहमान का **'संदेसरासक'** महत्वपूर्ण काव्य है जिसका प्रभाव परवर्ती हिन्दी साहित्य पर किसी न किसी रूप में पड़ा। **'बीसलदेव रासो' एवं 'ढोला मारू रा दूहा'** आदिकालीन काव्य के महत्वपूर्ण विरह काव्य हैं। 'संदेसरासक' की भांति 'बीसलदेव रासो' भी मुख्यतः विरह–काव्य है। अभिव्यक्ति की सादगी और भावों की तीव्रता में 'बीसलदेव रासो' 'संदेसरासक' की तुलना में लोकजीवन का स्पर्श अधिक गहरा था। इस प्रकार बीसलदेव रासो एवं ढोला मारू–रा दूहा 'संदेसरासक' का ही स्वाभाविक एवं रचनात्मक विकास प्रतीत होता है।

4. **अपभ्रंश–कथाएं एवं हिन्दी के आख्यानक काव्य** – अपभ्रंश साहित्य में ऐहिक लोकगीतों के अतिरिक्त कथा–काव्यों की भी एक सुदीर्घ परम्परा थी। इन कथा–काव्यों

में धार्मिकता का पर्याप्त पुट दिखाई देता है। विद्वानों की मान्यता है कि धार्मिक उद्देश्य के अनुसार लोक–कथा का मोड़ने की प्रवृत्ति का सूत्रपात अपभ्रंश कथा काव्यों में हुआ जिसका विकास हिन्दी में स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है। **'भविसयत्तकहा'** में पूर्वप्रचलित कथा को जैन–धर्म की मान्यताओं के अनुसार मोड़ा गया है। लोक–कथाओं को मोड़ने की यह प्रवृत्ति आख्यानों में विशेष तौर पर दिखाई देती है। जायसी का **'पद्मावत'** एक ऐसा ही सूफी काव्य है जिसमें 'भविसयत्तकहा' की ही तरह लोक–कथा में सोद्देश्य संशोधन किया गया है।

5. **अपभ्रंश का सिद्ध–साहित्य और हिन्दी संत–काव्य** : संत काव्य धारा का एक महत्वपूर्ण संदर्भ योग–साधना भी है। बौद्ध, सिद्धों में योग साधना के अनेक प्रसंगों का उल्लेख हुआ। विद्वान मानते हैं कि योग–साधना की शब्दावली संतों को अपने पूर्ववर्ती–सिद्धों से प्राप्त हुई। सरहपा आदि सिद्धों ने जिस शैली में अपनी साधना की अभिव्यक्ति की और जिस प्रखरता से वर्ण–व्यवस्था एवं धार्मिक–पाखण्डों का प्रतिकार किया उसकी गहरी आवृत्ति संत काव्य में दिखाई पड़ती है। इतना निश्चित है कि संत कवियों ने योग–साधना को अनुभूति की तरलता से जोड़ा और ज्ञान को भावना में प्रगट किया। संत काव्य के स्रोत के रूप में सिद्ध साहित्य की भूमिका असंदिग्ध है।

6. **काव्य–रूप** : हिन्दी साहित्य का अनुशीलन करने पर यह ज्ञात होता है कि अपभ्रंश से अधिक विकसित और नवीन भाव–धारा को अपनाकर भी हिन्दी कविता बहुत दिनों तक अपभ्रंश के ही अधिकांश काव्य–रूपों को अपनाए रही। अपभ्रंश ने पहली बार **मात्रिक छंदों** का सूत्रपात किया था और इसी के साथ छंद के क्षेत्र में **तुकान्त–प्रथा** चली थी। हिन्दी की छंद व्यवस्था को अपभ्रंश ने सीधे प्रभावित किया। लगभग नौ सौ वर्षों तक अपभ्रंश द्वारा गृहीत छंद–व्यवस्था का ही निरंतर व्यवहार होता रहा। दोहा छंद अपभ्रंश की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन है।

काव्य–रूप के बिन्दु पर भी अपभ्रंश ने हिन्दी को प्रभावित किया है। **गेय–काव्य** के रूपों में अपभ्रंश–काव्य बहुत रागृद्ध था। **शस, फाग, चांचर, रसायण, कुलक** आदि अनेक प्रकार के गेय–काव्य अपभ्रंश में दिखाई पड़ते हैं। अपभ्रंश के **'रास'** काव्य रूप का ही विकास हिन्दी के **रासो काव्य** में हुआ। लोक प्रचलित लोक–गीतों को साहित्यिक बनाने की प्रवृत्ति अपभ्रंश में विद्यमान थी और हिन्दी के कवियों ने इसी प्रवृत्ति के आलोक में हिन्दी काव्य रूपों का विकास हुआ।

7. **काव्य–रूढ़ियां** – कविता की विकास–प्रक्रिया में प्रत्येक देश की कविता में कुछ काव्य–रूढ़ियां विकसित हो जाती हैं। जैसे प्रबंध काव्य के आरंभ में **मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, सज्जन–स्तुति, दुर्जन निंदा** आदि। मुक्तकों में कवि द्वारा अपना नाम रखने की मनोवृत्ति दिखाई पड़ती है। प्रबन्ध और मुक्तक की इन काव्य–रूढ़ियों का निर्वाह हिन्दी काव्य में भी होता रहा। आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल की कविता पर इन काव्य–रूढ़ियों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी मुख्यतः अपभ्रंश की जीवित परंपरा को लेकर आगे बढ़ी। वह अपभ्रंश की रूढ़ियों का रक्षक अथवा अनुकर्ता कभी नहीं रही। अपभ्रंश की जीवंत परम्परा कुछ हो, 'संदेसरासक' जैसे प्रेम मुग्ध लोकगीतों में व्यक्त हुई और कुछ भविसयत्तकहा, जसहर चरिउ या करकउ चरिउ जैसे आख्यान–काव्यों में जैन–बौद्ध कवियों के दोहों, स्वयंभू एवं पुष्पदंत के पौराणिक काव्यों में भी अपभ्रंश की प्राणधारा प्रवाहित होती रही। हिन्दी में इसी प्राणधारा का विकास होता रहा, कहीं परोक्ष में तो कहीं अपरोक्ष रूप में।

काव्यभाषा और मध्यकालीन काव्यभाषा अवधी

बोली और भाषा

आम बोलचाल में 'बोली' और 'भाषा' दोनों शब्द समानार्थक हैं। हम ही कभी 'हिन्दी भाषा' कहते हैं और कभी 'हिन्दी बोली' कह देते हैं। भोजपुरी भाषा है या बोली ? भाषाविज्ञानी के लिए स्वरूप, विश्लेषण और अध्ययन की दृष्टि से भाषा और बोली में कोई मौलिक भेद नहीं है। वह भेद बता पाना भी कोई सरल कार्य नहीं है। फिर भी यह स्वीकार किया जाने लगा है कि वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए भाषा और बोली के पारिभाषिक अर्थों में भेद करना आवश्यक हो जाता है। निम्नलिखित विभेदक तत्व विचारणीय हैं –

1. **बोधगम्यता** : सापेक्ष दृष्टि से कहा जा सकता है कि भाषा को बोली से पृथक् करने की एक कसौटी बोधगम्यता है, अर्थात् यदि दो क्षेत्रों के अशिक्षित और अप्रभावित व्यक्ति एक दूसरे की वाणी को नहीं समझ सकते, तो उनकी वाणियां दो भाषाएं हैं। और, यदि वे अधिकांश बात को समझ–समझा लेते हैं तो उनकी वाणियां दो बोलियां हैं, एक ही भाषा की। यदि एक बंगाली और एक पंजाबी अपनी–अपनी मातृभाषा में परस्पर वार्तालाप करें तो

एक दूसरे के पल्ले लगभग कुछ नहीं पड़ता। अतः बंगाली और पंजाबी दो भाषाएं हैं। परन्तु झांसी जिले की बुंदेली बोलने वाला और अयोध्या की अवधी बोलने वाला आपस में बातचीत करें तो लगभग सब कुछ समझ पाएगा – पूरा न सही। अतः बुंदेली और अवधी दो बोलियां हैं– एक ही भाषा की। इस बात को यों भी कह सकते हैं कि यदि दो वाणियों में दुर्बोधता बहुत अधिक हो तो वे दो भाषाएं हैं और सुबोधता अधिक हो तो वे एक ही भाषा की दो बोलियां हैं। भाषाओं में इस दुर्बोधता का अनुपात कम हो तो इस आधार पर उपभाषाएं बनती हैं। बोलियों में सुबोधता का अनुपात भी बहुत अधिक हो तो उपबोलियां बनती हैं। उपबोलियों के सामान्य लक्षण लेकर बोली बनती है, और बोलियों के सामान्य लक्षण लेकर भाषा बनती है।

किन्तु, बात इतनी सरल नहीं है। उपर्युक्त आधार पर मानना पड़ेगा कि उर्दू और हिन्दी दो अलग भाषाएं नहीं हैं। परन्तु एक बहुत बड़ा वर्ग है जिसे यह स्वीकार्य नहीं है। बंगला और असमी इस सिद्धान्त के अनुसार दो भाषाएं नहीं हैं, पर संविधान में इन्हें दो अलग भाषाएं मान लिया गया है, यद्यपि इस मान्यता के पीछे राजनीति है, भाषाविज्ञान नहीं। फिर भी कहना पड़ेगा कि बोधगम्यता एकमात्र कसौटी नहीं है, भले ही यह एक महत्वपूर्ण कसौटी अवश्य है।

हम अन्य कसौटियों की तलाश करते हैं।

2. **सीमितता** – एक मान्यता यह है कि बोली एक क्षेत्र–विशेष या वर्ग–विशेष के अंदर सीमित होती है और भाषा का क्षेत्र–विस्तार अधिक होता है। अवधी या व्रजभाषा का क्षेत्र निश्चित और सीमित है। हिन्दी या बंगला एक विस्तृत क्षेत्र की भाषा है। मूलतः वह भी एक सीमित क्षेत्र की बोली थी। विस्तार पाकर या अपने क्षेत्र से बाहर कुछ बोलियों पर छा जाने से भाषा बन गई। एक युग में व्रज प्रदेश की बोली अपनी सीमाओं से बाहर फैलकर भाषा बन गई थी। यही किस्सा खड़ी बोली या कौरवी का है, जो 'हिन्दी' भाषा बन गई है।

3. **बोली का शब्द–भण्डार** भी सीमित होता है। अनुमान लगाया गया है कि किसी बोली की अपनी शब्द–संपदा 20–22 हजार शब्दों से अधिक नहीं होती, किन्तु भाषा में लाखों शब्दों का व्यवहार होता है। यह शब्द–संख्या द्रुतगति से बढ़ती रहती है, क्योंकि भाषा के संपर्क बहुत व्यापक होते हैं।

4. **भाषा शिक्षा का माध्यम** होती है, बोली नहीं। आप कह सकते हैं कि शिक्षाविदों का अब तो यही मत है कि बच्चे को प्राथमिक शिक्षा अपनी मातृभाषा में देनी

चाहिए। वास्तव में यह काम पहले से ही हर माँ करती आ रही है। अंतर यही है कि प्राथमिक कक्षाओं में बच्चे को साक्षर बना दिया जाता है। साक्षरता और बात है, शिक्षा कुछ और। कहना यह होगा कि विद्याग्रहण का माध्यम भाषा ही होती है। आप किसी भी ग्रामीण बोली में दर्शनशास्त्र, भूगोल या विज्ञान की शिक्षा नहीं पा सकते। महाविद्यालयों में भाषा का ही व्यवहार होता है।

5. **साहित्य का माध्यम** होना भी भाषा का एक आवश्यक गुण है, और साहित्य की भी एक परंपरा होनी चाहिए। छिटपुट साहित्य तो प्रायः सभी बोलियों में प्राप्त है, परन्तु एक तो वह बहुत सारा लोक साहित्य है, और जो ललित साहित्य है भी तो उसकी परंपरा नहीं बनी। उदाहरणस्वरूप, अवधी में भरपूर रामकाव्य है। किंतु तुलसी की परंपरा बहुत आगे नहीं चली, तो अवधी का साहित्यिक इतिहास बनते–बनते रह गया। ब्रजभाषा का साहित्य कुछ शताब्दियों चला, लेकिन वह भी खड़ी बोली के विकास से पहले तो रुका और फिर समाप्तप्रायः हो गया। व्रजभाषा पुनः बोली बन कर रह गई।

6. **भाषा को शासकीय मान्यता** प्राप्त हो जाती है, बोली को नहीं। शासकीय आदेश से उत्तरी चीन की बोली मण्डारिन् सारे चीन की भाषा बन गई है। बिस्मार्क के अध्यादेश से एशिया की बोली सारे जर्मनी देश की भाषा बनी बैठी है। हमारे संविधान में जिन सोलह भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है, वे ही भाषाएं हैं, शेष बोलियां हैं।

7. भाषा की अपनी **लिपि** होती है। बोलियां उस भाषा की लिपि को अपना कर चलती रहती हैं।

8. दैनिक समाचार–पत्रों, रेडियो और सिनेमा में अधिकाधिक प्रयोग, बड़े–बड़े मेलों और तीर्थस्थानों में अंतः प्रादेशिक व्यवहार एवं अनेक अखिल देशीय कार्यों में भाषा ही काम आती है, बोली नहीं।

9. धार्मिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक और राजनीतिक श्रेष्ठता और वरीयता भी किसी भाषा की पहचान है। लूथर की मातृभाषा होने के कारण धार्मिक क्षेत्र में और फिर पूरे जर्मनी देश में पूर्वी जर्मन बोली प्रतिष्ठित हुई। अरबी भी इस्लाम के साथ उत्तरी अफ्रीका की अनेक बोलियों पर छा गई। सांस्कृतिक श्रेष्ठता के बल पर संस्कृत की श्रेष्ठता बनी हुई है। व्यापारिक कारणों से अंग्रेजी कई देशों में फैली और कई जगह की अनिवार्य भाषा बन गई। राजनीतिक क्षेत्र में राजधानी की भाषा भाषा कहलाती है।

10. भाषा और बोली में एक और महत्वपूर्ण अंतर यह है कि भाषा में लेखबद्ध होने के कारण स्थिरता रहती है, उसका एक मानक रूप निखरता रहता है। बोली बदलती ही रहती है, कभी–कभी द्रुतगति से – कुछ बाह्य प्रभावों के कारण और कुछ आंतरिक प्रकृति के कारण। बोली का जो क्षेत्र है, उसके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की बोलियों का अलग–अलग प्रभाव पड़ता रहता है, जिससे उपबोलियों का विकास होता रहता है। हाँ, यदि एकता के सूत्र दृढ़ हों तो इकाई अक्षुण्ण बनी रहती है।

भाषा के अनेक प्रयोगगत रूप हैं। एक वह जो जनसामान्य की बोलचाल में चलता है, जिसमें प्रायः व्याकरण अथवा शैली की चिंता नहीं रहती, उच्चारण व्यक्तिपरक और भिन्न–भिन्न होता है, शब्द भंडार सीमित और मिश्रित होता है और वाक्य छोटे–छोटे होते हैं, और जिसमें व्यक्ति की मातृभाषा का दखल या व्याघात अधिक रहता है। दूसरा वह जो पढ़े–लिखे शहरी बोलते–लिखते–पढ़ते हैं, जिसके माध्यम से अध्यापक कक्षाओं में पढ़ाते हैं तथा पत्रकार समाचार और सूचनाएं तैयार करते हैं। भाषा का यह मानक या परिनिष्ठित रूप होता है जिसमें व्याकरणिक नियमों का निर्वाह होता है और सामान्यता अधिक होती है। बोलचाल की भाषा का एक रूप राष्ट्रभाषा हो सकती है और मानक भाषा का राजभाषा। हिन्दी के ये दोनों रूप हैं, सभी भाषाओं के नहीं होते। स्वाधीनता से पहले हिन्दी राष्ट्रभाषा तो थी, राजभाषा नहीं थी। राजभाषा शासन और न्याय आदि राजकार्यों के लिए होती है और राष्ट्रभाषा पूरे देश की जनता की संपर्क भाषा होती है।

मानक भाषा का एक उच्चतर रूप है जिसे साहित्यिक भाषा कहते हैं। इसके दो उपरूप हैं – एक गद्य की भाषा और दूसरी काव्यभाषा।

काव्यभाषा और बोली का अंतर

काव्यभाषा कवि की साहित्यिक भाषा है। इसमें व्याकरण का महत्व तो होता है पर इतना नहीं जितना निबंध या नाटक की गद्य भाषा में। कवि निरंकुश होते हैं। हमें अपने बड़े ऊँचे स्तर के ग्रंथों, जैसे रामचरितमानस व सूरसागर और कामायनी में भी व्याकरणिक विचलन या विपथन के दोष मिलते हैं, उनमें कई वाक्यों में संबंध–तत्व लुप्त हैं और कई वाक्यों में अन्विति नहीं है। काव्यभाषा में व्याकरण की अपेक्षा शब्दयोजना का, शब्दों के भावपूर्ण अर्थ का, उनसे बने चित्रों का और उनसे प्रेषित प्रभाव का महत्व अधिक होता है। शब्द से भी अधिक

महत्व उनके अर्थ का होता है, शब्द और अर्थ की संपृक्ति का। कवि साधारण भाषा को लेकर काव्यभाषा की 'रचना' करता है और इस प्रकार से यह उसकी अपनी सृष्टि होती है। फिर भी, उसका उददेश्य वैयक्तिकता का प्रदर्शन करना नहीं है। कवि अपनी उस रचना का साधारणीकरण करना चाहता है, इसलिए उसकी काव्यभाषा सारे रसिक समाज की भाषा हो जाती है।

कोई भी भाषा हो, वह बोली से ही उठती है। व्रज की बोली ही साहित्य में स्थान पाने पर अपने क्षेत्र से बाहर भी व्यवहृत होने लगी तो भाषा बन गई। भाषा बनने के कारण ही उसमें बोलीपन जाता रहता है और और–धीरे वह अनेक बोलियों का महत्तमसमापवर्तक बन जाती है, भले ही वह अपने मूल से अधिक जुड़ी रहती है। खड़ी बोली मूलतः दिल्ली और मेरठ के आसपास की बोली ही तो थी। दक्षिण में जा बसे मुसलमानों ने इसको साहित्य में प्रतिष्ठित किया, बाद में उत्तरी भारत में भी उर्दू और हिन्दी साहित्यों का माध्यम बन गई। 'बोली' नाम अब भी इसके साथ लगा हुआ है। यद्यपि आज यह सारे भारत में फैली हुई सबसे बड़ी भाषा है। बोली और भाषा में सदा अन्तर बना रहता है। साधारण भाषा और काव्यभाषा में भी गुणात्मक अंतर बना रहता है। अपने शोधप्रबंध 'मध्यकालीन काव्यभाषा' में प्रो0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस प्रसंग में एक दिलचस्प बात कही है। वे लिखते हैं कि "आरम्भ में काव्यभाषा का आधार–रूप बोलचाल की भाषा से दूर हटा हुआ होता है और बाद में क्रमशः यह अंतर कम होता जाता है।" हम इस मत से सहमत नहीं हो पा रहे बात कुछ उलटी है। अवधी का उदाहरण ले लें। प्रारंभिक कवियों, मुल्ला, दाऊद, मंझन आदि की काव्यभाषा जनभाषा के निकट है। धीरे–धीरे उसमें इतने अधिक तत्सम शब्द और प्रयोग आने लगे कि वह तुलसी के हाथों में न पूर्णतया अवधी रही न कुछ और। वह बस काव्यभाषा बन गई, जनभाषा से दूर। व्रजभाषा की भी यही कथा है। अग्रवाल कवि से चलकर बिहारी और पद्माकर के हाथों में आई तो वह जनभाषा के निकट कहाँ रह गई। इसी से उसका स्थान एक अन्य जनभाषा ने ले लिया। एक और बात भी है। कोई बोली या भाषा जब प्रचलन से बाहर हो जाती है, तब भी उसका काव्यभाषा रूप चलता रहता है। अपभ्रंश–काल दसवीं शताब्दी तक माना जाता है, परन्तु अपभ्रंश काव्य 14वीं शताब्दी तक लिखा जाता रहा। इतिहास के गुप्तकाल में संस्कृत बोलचाल की भाषा निश्चय ही नहीं रह गई थी, लेकिन यही संस्कृत साहित्य का स्वर्णयुग था। कालिदास इसी युग में हुए।

इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक भाषा का काव्यरूप पहले प्रकट होता है और गद्य रूप बाद में। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, बंगला, मराठी किसी को ले लें। उस भाषा के आदिकाल में लोग तो गद्य में ही बातचीत करते थे, फिर काव्यभाषा पहले क्यों ? इस अन्तर का कारण भाषा का अलिखित और लिखित द्विरूप होता है। याद रखने के लिए या प्रभाव पैदा करने के लिए काव्यभाषा अधिक उपयोगी मानी जाती है। आरम्भ में प्रायः लेखक, विद्यालयों के कई विद्यार्थी, अथवा साधारण ग्रामीण कवि काव्यभाषा के माध्यम से अपनी प्रतिभा का उद्‌घाटन करते हैं, गद्य से नहीं।

काव्यभाषा और बोली का अन्तर सदा बना रहता है। वास्तव में यह अन्तर साधारण व्यक्ति और एक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के बीच का है, सामान्य और विशिष्ट अभिव्यक्ति का भी है।

शब्द वही हो, व्याकरण वही हो, तो भी काव्यभाषा इसलिए भिन्न हो जाती है कि कवि उन्हीं शब्दों और प्रयोगों को लेकर रचना करता है, उनमें भाव भरता है, उनको विशिष्ट अर्थ देता है। इसका फल यह है कि कविता की भाषा, जनभाषा के निकट होते हुए भी, कवि की अपनी शैली, अपनी प्रयोग–विधि और निजी वाक्ययोजना के कारण अलग होती है। इसलिए आलोचकों ने उसे 'कृत्रिम' कह दिया है और उदाहरण–स्वरूप इसीलिए एक ही आधार (खड़ी बोली) होने पर उर्दू हिन्दी की काव्यभाषा के बीच में इतना अन्तर है। उर्दू के अप्रस्तुत विधान, उर्दू के प्रतीक और बिंब हिन्दी काव्यभाषा की पद्धति से बिल्कुल निराले हैं। इसके विपरीत मध्यकालीन हिन्दी में आधारों की विविधता होते हुए भी काव्यभाषा में समानता के तत्व बहुत अधिक हैं, कबीर, नानक और दादू के आधार भिन्न–भिन्न थे, परन्तु उनकी काव्यभाषा में बहुत अन्तर नहीं है। तुलसीदास ने अपनी काव्यभाषा के लिए दो आधार लिये – अवधी (रामचरितमानस में) और व्रजभाषा (विनय–पत्रिका में)। परन्तु उनकी काव्यभाषा की तात्विक एकता स्पष्ट है।

सामान्य भाषा या बोली में व्याकरणिक प्रयोग का ध्यान रहता है, क्योंकि वक्ता को अपनी बात स्पष्ट रूप से समझानी होती है, परन्तु कवि को शायद अपनी बात कुछ–कुछ छिपानी होती है। यह है तो विरोधाभास, क्योंकि कवि की अभिव्यक्ति भावों की प्रेषणीयता के लिए होती है, परन्तुसिद्ध कवियों की संध्या भाषा, कबीर की उलटबांसियां, सूरदास के दृष्टकूट, रीतिकाल के कवियों के यमक और श्लेष–युक्त छंद इस तथ्य के प्रमाण हैं। कवि को व्याकरण के बन्धन में कौन बाँध सकता है ? निरंकुशाः कवयः। काव्यभाषा अंकुशित होकर काव्यभाषा

नहीं रहती। विशिष्ट भावों को विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत करना ही काव्यभाषा का मुख्य लक्षण है। काव्यभाषा में शब्दों के, विशेषतः संज्ञापदों के, चयन का महत्व होता है। इन्हीं संज्ञाओं से कवि अपने भावचित्रों, बिंबों और प्रतीकों की सृष्टि करता है। इन्हीं नामों के साथ संस्कृति जुड़ी होती है। प्रेषणीयता के यही महत्वपूर्ण साधन हैं। यही शब्द हैं जो देशी–विदेशी भाषाओं से आते–जाते रहते हैं और युग की काव्यभाषा का आधार बनते हैं। इन्हीं के कभी तत्सम रूप, कभी तद्भव रूप और कभी अधिकता से देशज या विदेशी प्रयोग काव्यभाषा का स्तर निर्धारित करते हैं। कवि अपनी कल्पना से इन्हीं को भावात्मक रूप देता है।

आरम्भिक काव्यभाषा के अनेक आधार

हिन्दी साहित्य के आरंभिक युग में भाषा का कोई एक स्वरूप निश्चित नहीं था। पुराने अभिलेखों में और सरकारी स्तर पर संस्कृत का प्रयोग चल रहा था, परन्तु वह संस्कृत अशुद्ध भी थी और लोक भाषा–मिश्रित भी। अपभ्रंश विकासमान थी, परन्तु इसमें भी स्वाभाविकता नहीं रह गई थी। जन कवियों के चरित काव्यों की भाषा अपभ्रंश–मिश्रित पश्चिमी हिन्दी थी। पूर्व में अवहट्ठ–मिश्रित पूर्वी हिन्दी थी। सिद्धों की वाणियों में लोक प्रचलित भाषा थी जो नाथ योगियों की रचनाओं में कुछ निखरकर आने लगी। काव्यभाषा के रूप में अनेक भक्तों और सन्तों की रचनाओं की यही भाषा थी जो आगे चलकर सधुक्कड़ी कहलाई। राजस्थान और उसके आसपास के क्षेत्र में डिंगल–पिंगल और पुरानी राजस्थानी–मिश्रित भाषा मिलती है। वास्तव में पिंगल ही पश्चिमी व्रजभाषा है भले ही इसका स्वरूप अभी स्पष्ट नहीं हुआ था। कुछ साहित्य राजस्थानी में भी मिलता है। तत्कालीन खड़ी बोली के नमूने अमीर खुसरो और बन्दा नवाज की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि आदि युग की काव्यभाषा का कोई एक आधार नहीं था।

मध्यकालीन काव्यभाषा

आदिकाल के कुछ प्रयोग आगे नहीं चल पाये और कुछ प्रयोग चले परन्तु सफलतापूर्वक नहीं, और कुछ निश्चय ही निखरकर आने लगे। पूर्वी हिन्दी से अवधी और मैथिली राजस्थानी से मरुभाषा, पिंगल से व्रजभाषा, खुसरो आदि की भाषा से खड़ी बोली हिन्दवी और नाथपन्थियों तथा सिद्धों की भाषा से कबीर आदि की सधुक्कड़ी भाषा का विकास हुआ।

(1) **विद्यापति** की साहित्यिक परम्परा आगे नहीं बढ़ पाई, क्योंकि **मैथिली** ने धीरे–धीरे पश्चिम की बोलियों से अपना सम्पर्क तोड़ दिया और मैथिली साहित्य लोक साहित्य की कोटि में गिना जाने लगा वह साहित्य अपने में अत्यन्त समृद्ध है किन्तु हिन्दी की मुख्य धारा से कटा–कटा है।

(2) **राजस्थानी काव्यधारा** भी क्रमशः क्षीण होती गई। मध्ययुग में चारणकाव्य धीरे–धीरे ह्रासमान होता गया। ढोला–मारू–रा–दूहा, बेली कृस्न, रुक्मणी री आदि अनेक काव्यग्रन्थ मिलते हैं परन्तु इनकी लोकप्रियता संकुचित रही है। यह भाषा भी हिन्दी से अलग–थलग पड़ गई। फलतः राजस्थान के बहुत से कवि जैसे मीराबाई, माधोदास, नरहरिदास, जोधराज व्रजभाषा में ही लिखते रहे यद्यपि उनकी भाषा में राजस्थानी का पुट अवश्य है।

(3) **खड़ी बोली हिन्दवी** के दो रूप हो गए – दक्खिनी हिन्दी और उत्तरी हिन्दी। दक्खिनी हिन्दी के कवि वे मुसलमान थे जो दिल्ली और उसके आस–पास के क्षेत्र से जाकर दक्षिण में बस गए थे। उनके साहित्य का विषय धर्म था, अतः अरबी फारसी शब्दावली का प्राधान्य के शब्द भी सरल और सुबोध रहे हैं। व्याकरण दिल्ली और मेरठ की बोली का है। वातावरण पूर्णतया भारतीय है जिसमें पौराणिक सन्दर्भ, वसन्त और वर्षा के परम्परागत वर्णन, नायिका–भेद, नखशिख–वर्णन आदि दक्खिनी हिन्दी की धारा को उत्तर के साथ जोड़े रखते हैं। छन्द–विधान भी पूर्णतया अरबी–फारसी का नहीं है, दोहा का प्रयोग बहुत से कवियों ने किया है। उनमें **कुतुबशाह की रचनाएं विशेषतः फारसी प्रभाव से मुक्त हैं।**

उत्तर में बहुत से मुसलमान कवि इस युग में हुए हैं जो दक्खिनी हिन्दी की शैली में लिखते रहे हैं। 17वीं शताब्दी में वली के दिल्ली आने पर उत्तर में फारसीनिष्ठ हिन्दी का प्रचार बढ़ा जिसमें भारतीय वातावरण लुप्त था। विषय, कला और भाषा की दृष्टि से भी इस खड़ी बोली हिन्दी का रूप हिन्दी से अलग हो गया। इसी का नाम उर्दू पड़ा। अमीर खुसरो की शैली को हिन्दुओं ने आगे बढ़ाया। **गंगाभाट, जटमल, प्राणनाथ, वृन्दावन जैन, ललित किशोरी, आलम, नागरीदास** आदि अनेक कवियों ने खड़ी बोली को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। किन्तु खड़ी बोली प्रदेश में कोई धार्मिक या सांस्कृतिक केन्द्र न होने के कारण और राजधानी के कुछ काल के लिए आगरा बदल जाने के कारण खड़ी बोली की यह धारा धीरे–धीरे लुप्त हो गई।

(4) **सन्तों की वाणी** में कोई एकरूपता नहीं थी। कबीर बनारस के थे, दादू राजस्थान के और नानक पश्चिमी पंजाब के रहने वाले थे। स्वभावतः उनकी वाणी में अपनी–अपनी मातृभाषा का प्रभाव स्पष्ट है। उनकी भाषा को आलोचकों ने कोई विशेष नाम नहीं दिया। लोगों ने उसे सधुक्कड़ी, खिचड़ी, या पंचरंगी भाषा कहा है। किन्हीं ने उसमें भोजपुरी की बहुलता देखी, किसी ने खड़ी बोली की, किसी ने व्रजभाषा की, किसी ने राजस्थानी की और किसी ने पंजाबी की। सभी सन्तों की भाषा में सभी प्रदेशों के शब्दों के प्रयोग मिल जाते हैं। कबीर की भाषा को ही ले लें। उनकी मातृभाषा बनारसी बोली थी, किन्तु उसमें बहुत से पद और दोहे मिल जाते हैं जो कुछ तो ठेठ खड़ी बोली में हैं, कुछ शुद्ध व्रजभाषा में, और कुछ राजस्थानी–मिश्रित पंजाबी में हैं। संस्कृत के शब्दों को विकृत करके प्रयुक्त किया गया है। कबीर संस्कृत को उच्च वर्ग की भाषा होने के कारण आदरभाव से नहीं देखते थे। लोकभाषा उन्हें प्रिय थी। "संस्कृत है कूप जल भाषा बहता नीर।"

कबीर की भाषा की विशेषताएं हैं उग्रता, चुटीलापन, निर्भीक अभिव्यक्ति, संगीतात्मक प्रवाह, बोधगम्यता और स्पष्टता। उसमें काव्यकला का प्रदर्शन नहीं है। शान्तरस की प्रधानता होने के कारण उसमें संवेदना अवश्य है।

रैदास की भाषा अधिक मधुर ओजपूर्ण और कलामय है। **नानक** की काव्यभाषा में सरलता, सहजता, संगीतात्मकता और गम्भीरता है। **दादू** दयाल में माधुर्य और ओज दोनों हैं। उन्होंने चमत्कार लाने की चेष्टा की। मलूकदास वैराग्य और प्रेम के कवि थे। उनकी भाषा ओजपूर्ण तो है लेकिन उसका विशेष गुण सहजता या सरलता है। **रज्जब** ज्ञानी कवि थे। उन्होंने अपने कथन का स्पष्टीकरण करने में दृष्टान्तों का प्रयोग विशेष रूप से किया है। **सुन्दरदास** उच्चकोटि के विद्वान थे। उनकी भाषा में प्रवीणता और साहित्यिकता के साथ विनोदप्रियता के गुण विद्यमान हैं। प्रायः सन्तकवियों की भाषा यत्र–तत्र व्याकरण सम्मत नहीं जान पड़ती। छन्द की दृष्टि से भी उसमें बहुधा दोष पाये जाते हैं, परन्तु सुन्दरदास की भाषा सामान्यतया दोषपूर्ण नहीं है। **धरणीदास** की कृतियों में भाव–गाम्भीर्य शब्द–माधुर्य और संगीत विशेष हैं। **धर्मदास** की भाषा मंजी हुई सरस और काव्यगुण सम्पन्न है। **दयाबाई** ने बहुत कम लिखा है लेकिन जो है वह सुबोध, सरस और स्पष्ट है। **पलटू साहब** की भाषा परिमार्जित है।

सामान्य रूप से सन्तभाषा जनभाषा के निकट थी और उसमें अक्खड़पन भी था, जीवंतता भी, तीव्रता भी।

काव्यभाषा अवधी का विकास

काव्यभाषा अवधी साहित्यिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण रही है। जगनिक ने आल्ह–खंड में अवधी का प्रयोग किया है परन्तु बताया जाता है कि ऐसे प्रसंग बाद के प्रक्षेप हैं। मूल आल्ह–खंड पश्चिमी हिन्दी में था। भाटों के द्वारा पूर्वी प्रदेश में लाये जाने के कारण उसमें अवधी का सम्मिश्रण हो गया। अवधी की पहली कृति मुल्ला दाऊद कृत 'लोरकहा' या 'चन्दायन' (14वी शती) मानी गयी है। इसमें चाँदा और लोरिक की प्रेमकथा है जो मसनवी शैली पर लिखी गई है अर्थात् पहले ईश्वर की स्तुति, बाद में पैगम्बर की, फिर गुरु की और उसके बाद तत्कालीन राजा की स्तुति की गई है। दोहा चौपाई का विशेष प्रयोग किया गया है इसमें का विरह–वर्णन बहुत सुन्दर बन पाया है। भाषा सुबोध और स्पष्ट है। उदाहरण –

बैरिन भई सो जाकरि रूखा। तेहिं तर बसे परा मोहिं दूषा।
काठि पेड़ जरि मूर उपारउँ। डारि–डारि कइ फैली फारउँ।।

मुल्ला दाऊद की भाषा ठेठ अवधी है जो वर्णन के लिए विशेषतया उपयुक्त है। इसमें अरबी फारसी के शब्द परवर्ती सूफी कवियों की अपेक्षा बहुत कम हैं। तत्सम और तद्भव शब्दों की अधिकता है। हो संकता है कि इस कृति में क्षेपक आ गए हों। व्याकरणिक रूपों से यही लगता है क्योंकि उनमें प्रायः विकसित अवधी के कुछ लक्षण पाये जाते हैं। उदाहरण –

सर्वनाम – मइँ, हउँ, तूँ, तुग्ह रो, ते (वे के लिए) जो कवन कोई किच्छू

परसर्ग – कहँ (को के लिए) लागि (लिए) सेउं, हुत (से) क, का, केर पइ, पहि (पै, पर) माँझ (में के लिए) सहायक क्रिया – आई, आहइ (है), अछै (है) अहही, आछहिं (हैं) अहा, हता (था) भवा (हुआ)।

अवधी को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन्हीं सूफी कवियों को है। इन्हीं की परम्परा को कुतबन, मंझन, जायसी, उसमान आदि ने आगे बढ़ाया।

मध्यकालीन अवधी के तीन रूप निखर कर आये हैं – (क) सूफियों की ठेठ अवधी, (ख) हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानक काव्यों की पश्चिमी परम्परा से संपृक्त अवधी और (ग) राम भक्त कवियों की साहित्यिक अवधी।

(क) **प्रेममार्गी सूफी कवि** मुसलमान थे। उनकी भाषा में अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है परन्तु उनका साहित्यिक वातावरण भारतीय रहा है। सामान्य रूप से उन्होंने जनसाधारण की बोली को अपनाया और उसे सजीव तथा प्रभावपूर्ण रूप दिया। उन्हें शब्द–शक्तियों का अच्छा ज्ञान था। भाषा के कलापक्ष का भी उन्होंने पूरा–पूरा ध्यान रखा। अलंकारों का बड़ा प्रयोग किया। उनमें शब्द–चमत्कार गौण और कम है, अर्थ–चमत्कार अधिक। छन्दों में दोहे और चौपाई के अतिरिक्त बरवै का प्रयोग अधिकारपूर्ण किया गया। अवधी का प्रयोग वर्णनों के लिए बहुत उपयुक्त सिद्ध हुआ। वन, तड़ाग, नदी–नाले, पशु–पक्षी आदि के वर्णन बहुत सुन्दर बन पाये हैं। नायिकाओं के सौन्दर्य का वर्णन उच्च कोटि का है। विरह–वर्णन में भी इन कवियों ने सफलता प्राप्त की है।

जायसी से पहले दो सूफी कवियों ने नाम उल्लेखनीय हैं – मृगावती के रचयिता **कुतबन** और मधुमालती के रचयिता **मंझन**। दोनों की कथाएं रोचक और उनके वर्णन विशद हैं। चरित्र–चित्रण की दृष्टि से उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। भाषिक दृष्टि से इनका अपना महत्व है, तद्भव शब्दों की परम्परा का अनुसरण जो बाद के सूफी कवियों ने किया है उसकी नींव इन्होंने रखी। कुतबन की कविता में जनभाषा के साथ तद्भव शब्दों की अधिकता किन्हीं चौपाइयों और दोहों में देखी जा सकती है, उदाहरण –

प्रेमसुरा जिन अँचइब तिन्है कुछो ना सुधि।
ना चित्त चित्ता लाज मो विसमौ हरख न बुधि।।

मंझन की अवधी अधिक सरल और सटीक जान पड़ती है। प्रकृति–वर्णन और विरह–वर्णन विशेषतः विशद और सुन्दर हैं, उदाहरण –

विरह–अवधि अवगाह अपारा। कोटि माहिं इक परै त पारा।
विरह की जगत अबिरथा जाहीं। विरह रूप यह सृष्टि सबाही।।
नैन बिरह अंजन जिनसारा। विरह रूप दरपन संसारा।
कोटि माहिं बिरला जग कोई। जाहिं सरीर बिरह दुःख होइ।।
रतन कि सागर सागरहिं, गजमोती गज कोई।
चन्दन कि बन बन उपजै, विरह कि तन–तन होई।।

जायसी के छह–सात ग्रन्थ अब तक प्राप्त हुए हैं परन्तु इनका **पद्मावत** सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रौढ़ ग्रन्थ है। क्या कलापक्ष में और क्या भाषापक्ष में, क्या प्रस्तुत वर्णन में

और अप्रस्तुत की अभिव्यंजना में, इस ग्रन्थ की गूढ़ता, सरसता, गम्भीरता और रोचकता निर्विवाद है। इसमें स्तुति, ऋतु वर्णन, स्त्री–परिचय, प्रेम, नखशिख, विरह, सुख–दुःख, धर्म, राजनीति, घर, दुर्ग, समुद्र, राजमन्दिर, जीवन, मृत्यु सभी विषयों का वर्णन विस्तृत और हृदयग्राही है। भाषा सजीव और सरस है। संस्कृत शब्दों का तद्भव रूप अधिकारपूर्ण ढंग से निभाया गया है। मूलतः भाषायी आधार ठेठ अवधी है अर्थात् अवध प्रदेश की जनभाषा। अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग सामान्य है, अधिक नहीं। वास्तव में सूफी कवियों को भाषा का कोई आग्रह नहीं है, भावाभिव्यक्ति की चिन्ता मुख्य है। जायसी स्वयं कहते है –

तुरकी अरबी हिन्दुई भाषा जेती आहि।
जेहि मँह मारग प्रेम कर सबै सराहै ताहि।।

जायसी की भाषा में प्रसंगानुसार भाषा का रूप बदलता हुआ सा दिखाई देता है, जैसे– योग के प्रसंग में वे दिष्टि और रुद्राख आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं, तो साधारण रूप से दीठि और रुद्दाख का। नायक–नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करने में भाषा अर्ध तत्सम और साहित्यिक तद्भव शब्दों से भर जाती है, लौकिक वस्तुओं का वर्णन करने में जन प्रयोग अधिक हो जाते हैं।

जायसी के बाद **उसमान** का नाम लिया जाता है। इनकी चित्रावली की रचना पद्मावत के ढंग पर हुई है। इसमें भी इसी प्रकार आध्यात्मिक वर्णन, राजस्तुति, नगर, सरोवर, यात्रा आदि का विशद वर्णन है। विरह–वर्णन के अलावा प्रकृति–वर्णन भी सरस और सुन्दर हुआ है। इनकी कविता में पौराणिकता भी है क्योंकि नायक को शिव का अंश माना गया है। प्रसंग में भारतीयता आ जाने से शब्दावली भी हिन्दू माने में लिपटी हुई है। फारसी बहुत ही कम है।

इन्द्रावती और अनुराग बाँसुरी के रचयिता **नूर मुहम्मद** का नाम भी उल्लेखनीय है। इनकी रचना भाव–व्यंजना की दृष्टि से उच्चकोटि की है। भाषा ठेठ अवधी है जिसमें संस्कृत और व्रजभाषा के शब्द खूब मिलते हैं। उदाहरण –

जब लगि वारि वारि रहु वारी। राजकुँवर कह उग असमारी।।
दामिनि चमक चाह अधिकाई। दुअऊ चितै रहे चित लाई।।
बहेउ पवन लट पर अनुरागे। लट छितरानि पवन के लागे।।
परी वदन पर लट सरकारी। तपा दिवस भै निसि अंधियारी।।

मोहि परा दरसन कर चेरा। हना बान धन आंखिन करो।।

छीना के कवि जान कथानक के गठन और कवित्वपूर्ण तथा प्रेमतत्व के निरूपण के लिए प्रसिद्ध हैं। यूसुफ, जुलेखा के रचयिता निसार बड़े विद्वान कवि थे। हृदय की अनेक अवस्थाओं का चित्रण करने में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। इन दोनों कवियों की रचनाओं की भाषा एक–एक नमूना नीचे दिया जा रहा है –

जोबन बिनासुमन अति लागै। तरनी भये कहाँ को भागै
बिनु तरुनी हरनी सुत बैन। बरनी जात न कापै नैन।।
हाव भाव नहि जानत भोरी। कभूं न चितवै चितवनि चोरी।।
जब कटाक्ष नैनन में वरिहैं। मानुस कहा देव बस करिहैं।

सूफियों ने मुक्तक काव्य की रचना भी की है। उनकी अवधी संतों की परम्परा में आती है, अर्थात मूलतः भले ही वह भाषा अवधी क्षेत्र की रही हो, परन्तु उसमें खड़ी बोली व्रजभाषा, राजस्थानी आदि का सम्मिश्रण पाया जाता है। उन्होंने भाषा को व्यापकता प्रदान करने की चेष्टा की है।

सूफी काव्य परम्परा छह शताब्दी तक चलती रही परन्तु भाषा की दृष्टि से जायसी के बाद कोई विशेष विकास की दिशा स्पष्ट नहीं हो पाई। कवियों में कथानक की नवीनता भले ही रही हो परन्तु उनमें जायसी से भिन्न कोई विशेषता नहीं है। प्रायः सूफी कवि अपने चरित्र–चित्रण में स्वाभाविकता नहीं ला सके। अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) के प्रतिपादन की ओर अधिक ध्यान दिया गया, चरित्र–चित्रण की चिन्ता नहीं की गई। वस्तु–वर्णन भी प्रायः अरुचिकर और शुष्क है फिर भी जहां प्रेम की मधुर अभिव्यक्ति हुई है अथवा आत्मा और परमात्मा के विरह और मिलन का वर्णन किया गया है, वहां प्रकृति चित्रण और भावों की अभिव्यंजना सजीव बन गई है। यहीं पर भाषा का साहित्यिक स्तर उच्चकोटि का हो जाता है। रति, शोक, वियोग, रोमांस, युद्ध–उत्साह सब का वर्णन सुन्दर और मार्मिक भाषा में किया गया है। सूफी काव्य का भाषिक महत्व असंदिग्ध है। जनभाषा का जैसा सुन्दर रूप सूफी काव्य में प्राप्त होता है, वैसा पहले न था। सूफी कवि शब्दों की अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शक्तियों से पूर्णतया भिज्ञ थे और उन्होंने इनका प्रचुर उपयोग भी किया है।

जायसी की काव्यभाषा के व्याकरणिक लक्षण नीचे दिये जा रहे हैं। इन्हीं की भाषा का निर्वाह 17वीं शती में अग्रलम और उसमान ने, 18वीं शती में नूरमुहम्मद और शेख निसार ने किया।

1. संज्ञारूपों में कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं आ पाई थी।

2. पुल्लिंग संज्ञा की सामान्य पहचान उकारान्त शब्दों से और स्त्रीलिंग शब्दों की इकारान्त शब्दों से होती है।

3. बहुवचन के अंत में न, नि, न्हि मिलता है।

4. सर्वनाम –

महँ, मैं, हौं, हम्ह, हम्हार	तूँ, तुइँ, तैं, तुम्ह, तुम्हार
वह, आइ, ते	जो, जेइँ, जेहिं
से, तहिं	किंछू, कोउ, काहु
को, कौनु	आपु।

5. संज्ञा और सर्वनाम के परसर्ग – ऐ (ने के लिए), क, कहँ, काँ (को के लिए), सों, सौं, तें, सेंती (से के लिए), का, के, कै, केर, कर, केरा (काके लिए), लगि (के लिए के स्थान पर), महँ, महि, माँह, माँहाँ, माँझि (में के लिए)। हि प्रायः सभी कारकों के लिए प्रयुक्त हुआ है। कुछ विचित्र परसर्ग भी पाये जाते हैं, जैसे – मीत भै (मित्र से), तर भै (नीचे से), तहाँ डाइ (वहाँ से)। कहीं–कहीं परसर्ग का लोप है।

मध्ययुग के बहुत–से परसर्ग उत्तर काल में नहीं रहे।

6. क्रिया – वर्तमान काल – करत (करता, करते, करती), सूझ (सूझता)।

भूतकाल – आव (आया), छूट (छूटा), कइल (किया), केन्हसि (किया), दीन्हि (दी), दीहिसि (दिया)।

भविष्यत् काल – जाब, चलब, चलहि, करहि।

7. सहायक क्रिया – हुत (था), अहा (था), अछिलो (था), आहि, अहै (है), भा (हुआ), भै (हुए)। क्रिया के रूप भी अभी स्थिर नहीं हुए थ।

(ख) हिन्दू प्रेमाख्यानकार – इनमें वुहकर, नरपतिव्यास, गोवर्धनदास, दुखहरन आदि की काव्य भाषा अपभ्रंश और व्रजभाषा से संपृक्त अवधी है। जिसमें संस्कृत का बढ़ता हुआ प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। दुखहरन की इन दो चौपाइयों में भाषा का रूप देखिए :

रोवत नैन रकत कै धारा। टेसु फूलि बन भा रतनारा।।
जौ सिंगार कोई बरबस करई। अनिल समान होई सो जरई।।

इस वर्ग के कवियों ने प्रायः कई बोलियों का प्रयोग किया है और उनका मिश्रित रूप भी। भाषा की इस विविधता के कारण इन आख्यानक काव्यों की भाषा का महत्व बहुत अधिक नहीं है क्योंकि इनकी कोई परम्परा बनने नहीं पाई।

(ग) **राममक्ति–काव्य** – काव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है, परन्तु इसका स्वरूप सूफी काव्य की ठेठ अवधी से भिन्न है। इसे शिष्ट वर्ग की परिष्कृत और परिमार्जित साहित्यिक भाषा कह सकते हैं। इस धारा के सारे कवि हिन्दू हैं जो मध्य युग में संस्कृत की ओर झुकते रहे हैं। सूफियों की काव्यभाषा में तद्भव तत्व जितनी मात्रा में प्राप्त होता है, उतना किसी युग में नहीं मिलता। वे सचमुच जनकवि थे। रामकाव्य की भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है, परन्तु वह प्रधानतः तत्सममुखी है। बताया जाता है कि इस काव्य का प्रतिपाद्य विषय धार्मिक और भक्तिप्रधान है, इसलिए कवियों ने भगवान राम की प्रतिष्ठा में संस्कृत शब्दावली को अधिक ग्रहण किया है। जहाँ धर्म और दर्शन का प्रसंग हो, तथा उच्च काव्य सौष्ठव दिखाना हो, वहां तत्सम् की प्रधानत स्वाभाविक ही है। परन्तु मुसलमान कवि सूक्ष्म और उच्चतम भावनाओं को सर्वथा ग्रामीण भाषा में व्यक्त करने में कैसे सफल हो गए। उनकी लोकप्रियता को देखकर ही तुलसी ने अवधी को रामचरितमानस का माध्यम बनाया किन्तु यह अवधी बोलचाल की अवधी नहीं है। रामचरितमानस का कोई प्रसंग ले लें –

जगकारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन–पति लीन्ह मनुज अवतार।।
कोसलेस दसरथ के जाये। हम पितु–वचन मानि बन आये।।
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।।
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई।।
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।।
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर वेष कै रचना।।

इन पंक्तियों में भवभंजन, धरणी, भार, अखिल, भुवन–पति, मनुज, अवतार, संग, नारि, सुकुमारि, निसिचर, वैदेही, विप्र, चरित, निज, कथा, प्रभु, सुख, पुलकित, तन, मुख, रुचिर, वेष, रचना – इतने सारे तत्सम शब्द हैं। कुछ अन्य शब्दों को कृत्रिम ढंग से तद्भव रूप दिया गया है, जैसे – कारन (कारण), कोसलेस (कोसलेश), दसरथ (दशरथ), चरन (चरण), बचना (वचन)।

अवधी की व्याकरणिक विशेषताएं

अवधी की व्याकरणिक विशेषताओं का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

ध्वनि–संरचना

1. अवधी में उकारन्तता की प्रवृत्ति प्रमुख है, विशेषतः पुल्लिंगवाची शब्दों में। यह विशेषता उसे अर्द्धमागधी और अवहट्ठ से मिली है। जैसे – रामु, मातु, संसारू, मुलतानु, पाहसु आदि।

2. अवधी में 'ऐ' और 'औ' संध्याक्षर हैं और इनका उच्चारण भी उसी के अनुरूप होता है। जैसे –

ऐ > अई – जैसा = जइसा, पैसा = पइसा, नैहर = नइहर, बैल = बइल

औ > अउ – औरत = अउरत, कौन = कउन, और = अउर आदि।

3. अवधी में **संयुक्त व्यंजन** प्रायः अलग–अलग उच्चरित होते हैं। जैसे – प्रवीण–परबीन, भ्रम–भरम, आश्चर्य–आसचरज, कृपा–किरिपा आदि।

4. आरंभिक और अन्तिम **'य' का उच्चारण** प्रायः 'ज' होता है। जैसे – यौवन–जोबन, युवती–जुबती, कार्य–कारज आदि।

5. मध्यवर्ती **'ल' एवं 'इ' का उच्चारण** प्रायः 'र' के रूप में होता है – उलझन–उरझन, लड़ाई–लराई, पड़यो–परयो आदि।

6. अवधी में लेखन और उच्चारण के स्तर पर निम्नांकित व्यंजनों में परिवर्तन होते हैं –

'व' – आरम्भिक व का उच्चारण 'ब' होता है।

वर्षा – बरखा, वदन–बदन, विश्वामित्र–बिस्वामित्र आदि।

□ व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को छोड़कर मध्यवर्ती 'व' का उच्चारण कहीं 'ब' और कहीं 'उ' होता है – कवि–कबि, पवन–पउन।

ण, श एवं ष का उच्चारण क्रमशः न, स और ख होता है।

कारण–कारन, रावण–रावन, रण–रन

शशि–ससि, शीश–सीस, शरण–सरन, श्रृंगार–सिंगार

भाषा–भाखा, वर्षा–बरखा आदि।

रूप–रचना

1. अवधी में पुल्लिंग संज्ञाओं के अन्त में प्रायः 'वा' और स्त्रीवाची संज्ञाओं के अंत में 'इया' जोड़कर बोलने की प्रवृत्ति है – जगदीशवा, बचवा, मिवा, रतिया, बतिया, खटिया, बहिनिया, बिटिया आदि।

2. संज्ञाओं को बहुवचन बनाने के लिए अधिकतर 'न्ह' परसर्ग का प्रयोग किया जाता है – बालकन्ह, राखिन्ह, बातन्ह, सुरन्ह।

सर्वनाम

अवधी में सर्वनामों के विविध रूप इस प्रकार होते हैं –

पुरुष	एक वचन	बहुवचन
उत्तम	मइं, हउं, हौं	हम
मध्यम	तूं, तै, तो	तुम, तुम्ह
अन्य	ता, तिस, वा, उस	ते, तिन, तिन्ह

अनिश्चय वाचक सर्वनाम – कोउ, काहु, जोइ, सोइ, कछुक, केहँ आदि।

निश्चयवाचक सर्वनाम	–	या, वा
सम्बन्धवाचक	–	जो, जेइ, जवन
प्रश्नवाचक	–	के, कवन, कउन, को
निजवाचक	–	आपु, आपुहिं, आपन

विशेषण

1. अवधी में विशेषण लिंग के अनुसार बदल जाते हैं –
   आपन–आपनि, हमार–हमारि, ओहिका–ओहिकी, सबकर–सबकी आदि।

2. मूल रूप में विशेषण प्रायः अकारान्त होते हैं – नीक, भल, बड़, खोट, थोर, हमार, केकर आदि।

अव्यय

अवधी के कुछ विशिष्ट अव्यय इस प्रकार हैं –

कालि (कल), पुनि, बहोरि, बेगि, नियरे, अवसि, बरू आदि।

क्रिया

अवधी की क्रिया सम्बन्धी रूप रचना की निम्नांकित प्रवृत्तियां मुख्य हैं :

1. संज्ञार्थ क्रियाओं के अन्त में 'इबो' परसर्ग जोड़ने की प्रवृत्ति –

जाइबो, खाइबो, मांगिबो, मारिबो आदि।

2. पूर्वकालिक क्रिया के लिए प्रायः इ परसर्ग का प्रयोग होता है – करि, चलि, लिखि, देखि।

3. भूतकालिक क्रिया रूपों के अंत में प्रायः न, ना, न्ह, न्हा – परसर्गों को जोड़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है –

किया – कीन, कीना, कीन्हा

दिया – दीन, दीना, दीन्हा

स्त्रीवाची क्रिया रूपों में 'नी' तथा 'न्हीं' परसर्गों का प्रयोग मिलता है – किया–कीनी, दिया–दीन्हीं।

4. अधिकांश भूतकालिक क्रियाओं के मध्यवर्ती व्यंजन हलंत होते हैं – लिख्यो, गिर्‌यो, चल्यो, कह्‌यो आदि।

5. भविष्यत कालिक क्रिया रूपों में प्रायः 'ब' जोड़ने की प्रवृत्ति मिलती है – चलब, कहब, करब, उठब आदि।

6. अवधी में निम्नांकित सहायक क्रियाएं होती हैं – आहे, बाहै, अहै, भये, रहे आदि।

कारकीय रूप–संरचना

अवधी में कारकीय रूपों के प्रयोग की स्थिति इस प्रकार होती है –

कर्त्ता – मानक हिन्दी का 'ने' पूर्वी हिन्दी की किसी बोली में नहीं है।
केवट उतरि चरन तब धोवा
(यहां केवट के साथ 'ने' का प्रयोग नहीं है)

कर्म – के, कहुँ, काहु

करण – सों, तें, सन, पांहि, कहं

सम्प्रदान – लागि 'न' परसर्ग का प्रयोग (देखन बाग कुँवर दोउ आए)

अपादान – सों, सन, तें, तन

सम्बन्ध – कर, केर, क, कै

अधिकरण – माहिक, मां, मँह आदि।

मध्यकाल की एक समृद्ध काव्यभाषा होने के नाते अवधी का व्याकरणगत ढांचा व्यवस्थित है। शब्दकोशीय स्तर पर उसमें भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी एवं ब्रजभाषा के शब्दों की उपस्थिति भरपूर है, लेकिन ध्वनि एवं रूप–रंचना के धरातल पर उसकी पहचान असंदिग्ध है।

–000–

साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का विकास एवं व्याकरणिक विशेषताएं

हिन्दी साहित्य के विकास एवं समृद्धि में जिन बोलियों की ऐतिहासिक भूमिका है, अवधी उनमें से एक है। एक साहित्यिक भाषा के रूप में इसने जायसी और तुलसी जैसे महान कवि दिये हैं। इस रूप में वह बोली होने के बावजूद बोली की परिभाषाओं एवं धारणाओं का अतिक्रमण करती है। लेकिन आधुनिक साहित्य में जब खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हो गई तब मध्यकाल की अन्य काव्य भाषाओं की तरह अवधी का क्षेत्र सीमित हो गया। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि अवधी पूर्वी हिन्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बोलियों में से एक है और सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में इसका स्थान महत्वपूर्ण है।

'अवधी' शब्द का सम्बन्ध अयोध्या या अवध से है। अवधी का अर्थ है – अवध प्रान्त में बोली जाने वाली बोली। अवधी के लिए पूर्वी, कोसली और बैसवाडी संज्ञाओं का भी प्रयोग कुछ लोग करते हैं, लेकिन प्रयोग और औचित्य की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त संज्ञा अवधी ही है।

'पूर्वी' कोई एक बोली नहीं बल्कि तीन बोलियों का समुच्च है –अवधी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी। इसलिए यह संज्ञा अतिव्याप्ति दोष से ग्रस्त है।

बैसवाड़ी अवध प्रदेश के एक सीमित भाग में बोली जाती है। और अवधी की एक उपबोली है। इसलिए एक उपबोली को बोली का स्थानापन्न नहीं किया जा सकता।

भाषाविदों की निश्चित मान्यता है कि कोसली अवधी से अधिक पुरानी बोली है और विकासक्रम में अवधी ने अपनी अनेक विशेषताएं कोसली से ग्रहण की हैं। इसलिए कोसली भी अवधी का पर्याय नहीं है। विकास–क्रम में दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है।

'अवधी' संज्ञा पर भी कुछ विद्वानों ने आपत्ति की है। उनका तर्क है कि 'अवधी' से जिस भौगोलिक क्षेत्र की व्यंजना होती है – यानी जौनपुर, मिर्जापुर के पश्चिमी भाग, इलाहाबाद और कानपुर जिले के कुछ भागों में भी बोली जाती है। नेपाल की तराई के कुछ हिस्सों में भी इसका प्रयोग होता है। इसलिए यह नाम भी पूरी तरह उपयुक्त नहीं है। लेकिन यह तर्क अर्थहीन है, क्योंकि निष्कलंक उपयुक्तता हमेशा निष्प्राण और इसलिए अव्यावहारिक होती है। 'अवधी' नाम प्रयोग, परम्परा और स्वीकृति की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त है।

अवधी की उत्पत्ति अर्द्धभागधी से हुई है – इस स्थापना को अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है। अवधी के पूरब में भोजपुरी है और पश्चिम में ब्रजभाषा। ये दोनों बोलियां क्रमशः मागधी एवं शौरसेनी से विकसित हुई हैं। इन दोनों की कुछ–कुछ विशेषताएं अवधी में मिलती हैं। इसलिए ग्रियर्सन, धीरेन्द्र वर्मा जैसे भाषाविदों ने अर्द्धभागधी को ही अवधी का स्रोत माना है। सिर्फ डा० बाबूराम सक्सेना ने इस स्थापना से अहसमति व्यक्त की है और तर्क दिया है कि अवधी की निकटता पाली से है क्योंकि जैन ग्रंथों में अर्द्धभागधी का जो स्वरूप मिलता है वह अवधी की प्रकृति से नितांत भिन्न है। लेकिन भाषा के विद्वानों की मान्यता है कि जिस अर्द्धभागधी की चर्चा डा० सक्सेना ने की है वह मूल अर्द्धभागधी का प्रतिनिधित्व नहीं करती। दरअसल वे जैन ग्रंथ बाद के हैं। इसलिए उनमें तत्कालीन अर्द्धभागधी का प्रतिनिधि रूप नहीं मिलता।

चौदहवीं शताब्दी तक अवधी का कोई स्पष्ट स्वरूप लक्षित नहीं होता। अवधी की उत्पत्ति मध्यकाल की अन्य भारतीय भाषाओं की तरह दसवी–ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास हुई। लेकिन उसके प्राचीन रूप 'कुवलयमाला', 'उक्ति व्यक्ति–प्रकरण' और 'प्राकृत पैंगलम्' में दिखाई पड़ते हैं। भाषा के अर्थ में अवधी का आरंभिक प्रयोग अमीर खुसरो ने किया। अबुल फजल ने भी 'आइन–ए–अकबरी' में अवधी का उल्लेख किया है। लेकिन यह निर्विवाद है कि साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का प्रयोग चौदहवीं शताब्दी के आसपास शुरू होता है।

वस्तुतः साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के प्रयोग का सूत्रपात **सूफी प्रेमाख्यानों** से होता है। इस परम्परा की पहली कड़ी है मुल्ला दाउस कृत **'चंदायन'** जिसका रचनाकार 1370 ई० के आसपास माना गया है। चंदायन में दोहा–चौपाई की कड़वक शैली का प्रयोग किया गया है और ईश्वर वंदना, पैगम्बर वंदना, गुरू वंदना और तत्कालीन राजा की प्रशंसा के द्वारा मसनवी–परम्परा का निर्वाह किया गया है। मुल्ला–दाउद की अवधी का स्वरूप **बोलचाल के निकट** है, इसलिए उसमें **सहजता** और **चित्रात्मकता** है। इस परम्परा के दूसरे महत्वपूर्ण कवि **कुतुबन** हैं जिनकी कृति है **'मृगावती'**। मृगावती में **ठेठ अवधी** का प्रयोग किया गया है। भाषा सहज है इसलिए अलंकृति के प्रति उसमें कोई मोह नहीं है। यह काव्य दोहा, चौपाई, सोरठा में रचा गया है। ठेठ अवधी के साथ **तत्सम शब्दों के चयन की प्रवृत्ति** इस रचना में दिखायी देती है। **एक ही शब्द के अनेक पर्यायों का प्रयोग** कर भाषा को सशक्त बनाया गया है। जैसे चन्द्रमा के लिए ससि, मयंक और चाँद का एक साथ प्रयोग किया गया है।

तुलसीदास के पूर्व अवधी एवं प्रेमाख्यानक काव्य–परम्परा के शिखर कवि हैं **जायसी** और उनका कालजयी ग्रंथ है 'पद्मावत'। जायसी ठेठ अवध क्षेत्र के निवासी थे और लोकजीवन का गहरा अनुभव इस कवि के पास था। इसलिए जीवनानुभव की व्यापकता, गहराई और समग्रता के साथ उन्होंने जिस 'पद्मवत' की रचना की उसमें अवधी भाषा की सम्पूर्ण रचनात्मक संभावनाओं की छवि दिखाई दी। इस कृति का कथानक इतिहास के सच और कल्पित लोक के बीच फैला हुआ है। इसमें चित्रित जन–जीवन, लोकविश्वास अवध–अंचल का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। जायसी ने **ठेठ अवधी** का प्रयोग किया है, लेकिन अपनी रचना में वे भाषा की शुद्धता के आग्रही नहीं हैं। मध्यकाल में ऐसा होना संभव भी नहीं था। संस्कृत, फारसी की अर्द्धतत्सम शब्दावली के साथ तद्भव शब्दों, देशज शब्दों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी प्रभावशाली प्रयोग इस रचना में किया गया है। विद्वानों की मान्यता है कि 'पद्मावत' को ठेठ अवधी की साहित्यिक सम्पदा का शिखर प्रतिमान माना जा सकता है। इसके द्वारा अवधी भाषा को जो रचनात्मक ऊर्जा मिली वह भावी प्रेमाख्यानक काव्यों को लम्बे समय तक प्रेरित करती रही। 'पद्मावत' में नायिका के सौन्दर्य–वर्णन में तत्समता आ गई है, वैसे इसमें अवधी के तद्भव शब्दों की ही प्रधानता है। शब्द–चयन के प्रति जायसी की दृष्टि उदार है इसलिए उसमें पर्याप्त विविधता है।

'पद्मावत' के बाद भी अवधी में प्रेमाख्यानक काव्य–धारा का प्रवाह जारी रहा। **मंझन** की **'मधु मालती'**, **उसमान** की **'चित्रावली'**, **शेखनबी** का **'ज्ञानदीप'**, **नूर मुहम्मद** की **'अनुराग बांसुरी'** और **कासिम शाह** का **'हंस जवाहिर'** – जायसी के 'पद्मावत' के बाद की महत्वपूर्ण कृतियां हैं। इन कृतियों में क्रमशः अवधी का रूप अधिक परिष्कृत होता गया। तत्सम शबदों का प्रयोग और स्थापत्य की सुघड़ता में निरंतर विकास – इन कृतियों का वैशिष्ट्य है। एक सामान्य बात जो सभी प्रेमाख्यानक काव्यों में पायी जाती है, वह है **बोलचाल की भाषा** का प्रयोग। इन कवियों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित **अरबी–फारसी शब्दों का भी बेहिचक प्रयोग** किया है।

साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी को प्रतिष्ठित करने का कार्य राम काव्यधारा के महाकवि **तुलसीदास** के द्वारा हुआ। सूफी कवियों द्वारा प्रयुक्त ठेठ अवधी को पुष्ट शास्त्रीय आयाम देकर उसे एक **क्लासिकल भाषा** के रूप में प्रतिष्ठित करने का ऐतिहासिक कार्य तुलसीदास ने किया। अपनी प्रतिभा एवं पांडित्य से तुलसी ने अवधी को एक अक्षय गौरव

प्रदान किया और 'रामचरित मानस' की रचना के द्वारा भारतीय संस्कृति एवं मूल्य चेतना का ठोस आधार तैयार किया। तुलसीदास की अवधी में **तत्सम शब्दों की बहुलता** है और वह **मधुर, परिष्कृत एवं प्रांजल** है। वीर, रौद्र एवं भयानक रसों के प्रसंग में तुलसीदास ने अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग अवश्य किया है, लेकिन औसतन उनकी भाषा में स्रोत भाषाओं के शब्द बहुत कम हैं। समन्वयात्मक जीवन–दृष्टि का प्रभाव तुलसी के शब्द–चयन पर भी दिखायी देता है। उनकी भाषा में **ब्रज, राजस्थानी एवं भोजपुरी** के शब्दों के साथ **अरबी–फारसी** शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

प्रेमाख्यानक काव्यधारा अधिकांशतः लोकोन्मुख थी, जबकि हिन्दी की राम काव्यधारा में लोकोन्मुखता एवं शास्त्रीयता का विलक्षण संयोग है। इसका प्रभाव इन दोनों काव्यधाराओं के भाषा–विधान पर भी पड़ा है। लोक कथा का आश्रय लेकर विकसित होने वाली प्रेमाख्यानक काव्यधारा की भाषा में जन–बोली का दबाव अधिक है, जबकि तुलसीदास जन और शास्त्र का समन्वय करते हैं। इस समन्वय प्रक्रिया में ही उनकी भाषा अधिक परिष्कृत होती गयी है। दर्शन, जीवन के सरस–मार्मिक प्रसंगों की योजना और भक्ति की तन्मयता ने अवधी को एक अत्यन्त पुष्ट एवं समर्थ भाषा के रूप में विकसित कर दिया है। तुलसी के बाद के राम–काव्य के कवियों ने तुलसी का ही अनुकरण किया है। तुलसी के समकालीन रहीम के 'बरवै रामयण' में अवधी का स्वच्छ और व्यवस्थित रूप दिखाई पड़ता है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी को विकसित और प्रतिष्ठित करने वाली दो काव्यधाराएं हैं – प्रेमाख्यानक एवं राम काव्य–धारा। प्रेमाख्यानक काव्यों की अवधी में तद्भव और देशज शब्दों के अतिरिक्त लोक मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्राचुर्य है जबकि राम काव्धारा की अवधी में तत्सम, अर्द्धतत्सम और परिनिष्ठित शब्दावली की अधिकता है। इस्लामी पृष्ठभूमि से जुड़े होने के कारण प्रेमाख्यानक काव्यों में अरबी–फारसी शब्दों की अधिकता है। अन्य भाषिक प्रवृत्तियों की दृष्टि ने इन दोनों में अरबी–फाररसी शब्दों की अधिकता है। अन्य भाषिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से भी इन दोनों काव्यधाराओं में विशेष अन्तर नहीं है।

–000–

साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रजभाषा का विकास

ब्रजभाषा 10वीं, 11वीं शताब्दी में ही सौरसौनी अपभ्रंश से विकसित हुई। डा0 भण्डारकर के इस कथन से भी इसकी पुष्टि होती है – 'छठी सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश का वही क्षेत्र था जहां आज ब्रजभाषा बोली जाती है।'

ब्रजभाषा के विकास को तीन चरणों में बांटा जा सकता है। प्रथम चरण 10वीं शताब्दी से लेकर 1525 तक, द्वितीय चरण 1525 ई0 से लेकर 1800 ई0 तक, तृतीय चरण 1800 से लेकर अब तक। प्रथम चरण की ब्रजभाषा अपभ्रंश से निकलती हुई भाषा है। इसमें अपभ्रंशत्व कुछ अधिक है। यह अपभ्रंश के रूपों को रगड़–मांजकर अपनी पृथक भाषायी पहचान बनाने में लगी थी। हेमचंद्र के शब्दानुशासन में संगृहीत–दोहों एवं 'देशीनाममाला' में संकलित शब्दों में ब्रजभाषा का प्राथमिक लक्षण ढूंढा जा सकता है। यथा –

सासानल जाल झलक्कियउ महु खण्डिउ माणु।

'झलक्कियउ' से ही ब्रजभाषा का झलक्यो एवं खण्डिउ से ही खण्डयो रूप विकसित हुए हैं। 'देशीनाममाला' के शब्दों में भी ब्रजभाषा का पूर्वाभाव मिलता है। यथा –

उग्गाहिअ > उगाहनो, चोट्टी > चोटी, बिसूरइ > विसुरना, फग्गु > फाग, बाउल्लो > बावरा, चुक्कइ > चुक्यो, अच्छ > आछे।

ब्रजभाषा का प्रारंभिक रूप 'प्राकृत पैङलम', 'पडावश्यक–बलोवबोध' (तरुणप्रभा), 'रणमल्लछंद' (श्रीधर व्यास), 'पृथ्वी राज रासो' आदि में तो मिलता ही है, 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' और 'कीर्तिलता' में भी दिख पड़ता है। जैसे –

नअण झंपिओ (प्रा0 पै0)
उर उप्पर थरहरयो (रासो)
हौं करओ (उ0 व्य0 प्र0)

सिद्धों और संतों की वाणियों में भी ब्रजभाषा का बीजरूप सुरक्षित है। गोरखनाथ की वाणी – 'गोरखनाथ गारुड़ी पवन वेगि ल्यावै' (मंतरिया) एवं मत्स्येन्द्र नाथ – 'परवेस उडिसी आय लीयोवीसराय।' (जीवात्मा) गोरखनाथ की उक्ति में एकारांत एवं मत्स्येन्द्र नाथ की उक्ति में ओकारांत की प्रवृत्ति ब्रजभाषा की ही प्रारंभिक प्रवृत्ति है।

13वीं शताब्दी तक ब्रजभाषा का स्वरूप स्थिर नहीं हुआ था, इसलिए ब्रजभाषा में कोई रचना नहीं मिलती है। 14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रजभाषा अपभ्रंश से छिटककर अपना अलग रूप निर्धारित कर चुकी थी। 1354 में ब्रजभाषा में लिखी गई पहली रचना है, **सुधीर अग्रवाल** कविकृत **'प्रद्युम्नचरित'**। ब्रजभाषा के जितने भी भेदक अभिलक्षण हैं वे इनकी भाषा में मिलते हैं।

दीन्हीं दृष्टि मैं रचयो पुराण।
हीन बुद्धि हौं कियो बखाण।।

'दीन्हीं' क्रियारूप है, 'मैं' सर्वनाम रूप और 'रच्यौ' एवं कियो में ओकारांतता ब्रजभाषा के गुण हैं।

विष्णुदास ने 15वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ब्रजभाषा में कई रचनाएं कीं। 'स्वर्गारोहन', रुक्मिणीमंगल, महाभारत कथा, **सनेहलीला**। विष्णुदास की ब्रजभाषा में स्पष्टता, कोमलता और मार्दव (मिठास) है। 'रुक्मिणी चरम सिरावै पी कै, पूजी मन की आस'। **नारायणदास** की 'छिताई वार्ता', **माणिक दास** की 'बैताल पचीसी', **मेघनाथ** की गीताभाषा, **चतुरमल** की नेमेश्वर गीत, **ठकुरसी** की 'पंचेन्द्रियबेलि' जैसी रचनाएं प्रथम चरण की ब्रजभाषा के ही नमूने पेश करती है। इस चरण की ब्रजभाषा के कुछ महत्वपूर्ण अभिलक्षण हैं :

1. प्रारम्भिक चरण की ब्रजभाषा में अनुनासिकता की प्रवृत्ति मिलती है। जैसे – कहँ, महँ, अंधार आदि।

2. ण के प्रयोग को लेकर अनिश्चितता है। कहीं तो यह ट वर्गीय ण मिलता है जैसे – कवण, लवण और कहीं तत्सम् शब्दों में भी नहीं मिलता है। जैसे – गनपति, पानि आदि।

3. अपभ्रंश की (हि) विभक्ति ब्रजभाषा में (हि) रूप में विकसित है।

4. अपभ्रंश के केरउ परसर्ग से ही ब्रजभाषा के का के की मज्झे > माँझ, मज्झहे > माँहि, उप्परि > पै परसर्ग विकसित हुए। इनके अलावा ब्रजभाषा में नै, कहुँ, कूँ, सौं, तैं, ते मँहि जैसे परसर्ग भी प्रचलित हो गये थे।

5. अपभ्रंश के हउँ > हौं, मइँ > मैं, ओई > वो, तव > तू जैसे सर्वनाम रूप का विकास हुआ। इसके अलावा ब्रजभाषा के प्रा० चरण में हउँ, मँपि, ताको, कौण, आपणौ जैसे सर्वनाम रूप भी प्रचलित थे।

6. अपभ्रंश के दिण्णी > दीन्हीं, जाणिउँ > जान्यौ, गोवइ > गोवै, चुकई > चुक्यो जैसे क्रियारूप निष्पन्न हुआ।

द्वितीय चरण की ब्रजभाषा

द्वितीय चरण की ब्रजभाषा 16वीं शताब्दी एवं उसके बाद की भाषा है। इस समय ब्रजभाषा अपने पूरे सौष्ठव (निखार) पर थी। गौणीय, वैष्णव और पुष्टि मार्ग का मथुरा में केन्द्र बनते ही ब्रजभाषा कृष्णभक्ति साहित्य की आधार भाषा हो गई। सूरदास जी ने इस ब्रजभाषा में विभिन्न भावों एवं रसों में साहित्य रचकर इसे बहुमुखी अभिव्यंजना से लैस किया। उन्होंने विनय के पद, वात्सल्य, श्रृंगार एवं इतिवृत्तात्मक शैली के पद रचकर ब्रजभाषा के सामर्थ्य से परिचय कराया। सूर की ब्रजभाषा काव्य सौन्दर्य से सजी हुई ब्रजभाषा है। उनकी भाषा सौन्दर्यतत्वात्मक भावना जाग्रत करती है। वे जब रूप सौन्दर्य या शोभावर्णन करते हैं तो खुलकर तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं क्योंकि अलंकार विधान की परिपाटी तत्सम शब्दों के सहारे ही विकसित होती चली आ रही थी जैसे –

सोभा कहत कहै नहिं आवै सजल
मेघ घनश्याम सुभग वपु तड़ित वसन वनमाल।

सूरदास जी जब कृष्ण की बाललीला और छेड़छाड़ लीलाओं का वर्णन करते हैं तो तद्भव शब्दों पर उनकी निर्भरता बढ़ जाती है। वे भाषा में बोलचाल के ठेठ शब्दों को उठाते हैं। जैसे –

'जशोदा हरि पालनै झुलावै, हलरावै, म्लहावै, दुलरावै। जोई, सोई से ही कुछ गावै, मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुलावै।'

सूरदास के समय ही ब्रजभाषा मानक साहित्यिक भाषा बन गई। उनके बाद सभी कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रजभाषा को ही साहित्यिक भाषा के रूप में अपनाया। रहीम, रसखान की ब्रजभाषा भी सरल, सुबोध भाषा है जैसे –

'जो दिन तैं निरख्यौ नंदनंदन कानि तजि घर बंधन छूटयौ।' (रसखान)

कृपाराम की 'हिततरंगिनी' की भाषा भी ब्रजभाषा ही है। रीतिकाव्य में केशवदास, भिखारीदास, चिन्तामणि, मतिराम, देव, पदमाकर आदि ने इस भाषा को काव्यशास्त्रीय विवेचन की भाषा के रूप में ढाला। बिहारी, मतिराम, घनानंद आदि ने इसे अर्थ चमत्कार और स्वच्छंद प्रेम भाव व्यंजना की भाषा के रूप में विकसित किया। बिहारी की भाषा प्रौढ़ ब्रजभाषा है। उसमें ब्रजभाषा के सभी महत्वपूर्ण अभिलक्षण मौजूद हैं। इबो प्रत्यय लगकर संज्ञार्थक क्रिया बनाया है।

देखत बनै न देखिबो अनदेखे अकुलाहि।
इन दुखिया अंखियान को सुख सिरज्यौई नाहिं।।

घनानंद, आलम बोधा ने दरबार से हटकर इस भाषा को प्रेम की पीर की भाषा के रूप में ढाला। यह भाषा हृदय पर सीधी चोट करती है –

तुम कौन धौ पाटी पढे हो लला
मन लेहुँ पे देहुँ छँटाक नहीं।

आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं उनके मंडल के रचनाकारों ने ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा बनाए रखने के लिए काफी संघर्ष किया। द्विवेदी युग में जगन्नाथ दास रत्नाकर और सत्यनारायण कवि रत्नाकर ने भी रचना के जरिये ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के आसन पर ब्रजभाषा को बनाए रखने के लिए प्रयत्न किए लेकिन यह ब्रजभाषा खड़ी बोली के साहित्यिक हमले के सामने टिक नहीं सकी।

व्याकरणिक विशेषताएं

1. ब्रजभाषा में 12 स्वर ध्वनियां हैं – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऐ, औ। ब्रजभाषा में ऋ स्वर भी पाया जाता है लेकिन इसका उच्चारण हिन्दी की रि की तरह होता है।

2. ब्रजभाषा में ञ् ध्वनि है लेकिन इसका उच्चारण यँ की तरह होता है।

3. ट वर्गीय ण ध्वनि उँ की तरह उच्चरित होती है।

4. ब्रजभाषा में शब्द के मध्य एवं अन्त में आये हुए ह का लोप हो जाता है। जैसे– साहूकार > साहकार, बारह > बारा, बादशाह > बारसा, बहू > बऊ।

5. ब्रजभाषा ओकार या औकार प्रधान भाषा है। मानक हिन्दी का आकारान्त शब्द यहां ओकारांत या औकरान्त हो जाता है। यह प्रवृत्ति संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया सब में मिलती है। जैसे छोरो, गोरो, साँवरों, छोटौ, बड़ौ, मेरो, तेरो, जाऊँगा।

6. तत्सम आकारान्त शब्द और नाते रिश्ते के आकारांत पुल्लिंग शब्दों (काका, चाचा, बाबा, दादा) आदि में ओकारान्तता या औकरान्तता की प्रवृत्ति नहीं मिलती है।

7. ब्रजभाषा में मानक हिन्दी का एकार ऐकार में बदल जाता है। यहां खड़ी बोली का ने में – नैं मैं की तरह सुनाई पड़ते हैं।

8. ब्रजभाषा में न और ल में अभेद की प्रवृत्ति मिलती है। जैसे –

न > ल = नम्बरदार > लम्बरदार

ल > न = बाल्टी > बान्टी

फालना > फान्सा

9. श, ष, स के बदले स मिलता है। जैसे – विशेष > बिसेस

10. ल और ड ध्वनियां र में बदल जाती हैं जैसे – दुबले > दुबरे, रावल > रावर, बीड़ा > बीरा, झगड़ा > झगरा।

11. व्यंजन संयोग (संयुक्ताक्षर) में द्वित्व की प्रवृति मिलती है। जैसे – द्वादशी > द्वास्सी, अर्जी > अज्जी, खर्च > खच्चु।

12. ब्रजभाषा में विशेषण मानक हिन्दी की तरह ही बनते हैं। मतलब, विशेष्य के अनुसार विशेषण का लिंग। निर्धारित होता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि यहां आकारान्त विशेषण ओकारांत हो जाता है। जैसे– कारो आदमी, नीकी बात।

13. ब्रजभाषा का सबसे उल्लेखनीय सर्वनाम है हौं। यह मै के लिए आता है। इसी तरह उसका **तीर्यक** रूप एकवचन अन्यपुरुष में विस और बहुवचन में विन का व्यवहार उल्लेखनीय है।

14. ब्रजभाषा में वर्तमानकाल की सहायक क्रियाएं हैं –

हौं – हैं (हौं जा हौ)

हैं – हौ उल्लेखनीय है हूँ के लिए हौं हो के लिए हौं
है – हैं का प्रयोग होता है।

भूतकाल में हुतौ, हुती, हुते, हुतै, रूप भी चलते हैं। साथ ही नये रहे वाले रूप भी चलते हैं।

15. ब्रजभाषा में वर्तमानकालिक कृदन्त रूप त, तु (त, आ, ना) प्रत्यय के योग से बनते हैं। जैसे – भारत, देखत, अथवा भारतु, देखतु।

ब्रजभाषा में भूतकालिक कृदन्त रू यौ प्रत्यांत है। जैसे – मारयौ, देख्यौ।

ब्रजभाषा में संज्ञार्थक क्रिया के रूप न, नौ अथवा इबो प्रत्यय के योग से बनते हैं। जैसे – देखन, देखनौ देखिबो।

16. ब्रजभाषा में प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया रूप आ प्रत्यय के योग से द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया रूप बा प्रत्यय लगाकर बनते हैं। जैसे – देखा, देखबा।

17. ब्रजभाषा में कई अव्यय प्रयुक्त होते हैं – अजौ पुणी बहोरि (परसर्ग) सूरदास की ब्रजभाषा में न परसर्ग नहीं मिलता है।

काव्यभाषा व्रजभाषा

सूरपूर्व युग

फुटकर उदाहरण – दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक भारतीय भाषाओं की क्या स्थिति थी, इस विषय पर जो साहित्य–सामग्री थी, वह मुसलमानी आक्रमणों के कारण नष्ट हो गई। इस अंधकार युग में जो थोड़े–से ग्रन्थ उपबन्ध हुए हैं, उन्हीं के आधार पर भाषा के अंशों को जोड़–जोड़कर एक कलेवर खड़ा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। बताया जाता है कि आरम्भिक काल में व्रजभाषा के दो रूप थे – एक वह जो प्राकृतपैंगलम, रणमल छंद रासो ग्रंथों और कुछ पिंगल कृतियों में मिलता है और दूसरा वह जो उक्ति रचनाओं – उक्तिव्यक्ति प्रकरण, बालावबोध उक्ति रत्नाकर आदि – में सुरक्षित है। प्राकृपैंगलम छंदशास्त्र का ग्रन्थ है जिसमें छंदों के उदाहरण–स्वरूप भिन्न–भिन्न कालों और भाषाओं की रचनाओं के नमूने दिए गए हैं। प्राचीन व्रजभाषा के रूप देखें –

1. अक्खर, अग्गे, अग्गि, अज्जु आदि में द्वित्व व्यंजन, जो बाद में आखर, आगे, आग, आजु में सरल हो गया।

2. हम्मारो, आइ, घरु, कहियो (बाद में कह्यो) , कह (बाद में कहूँ, आवहि, करहि)।

संभुहि सउँ भण भिंग गण।
नअण झँपिओ।
पफुल्लिअ कुंद उगो सहि चंद।
गई मवित्तो का हमारो।
सीसे गंगा जासु।

पृथ्वीराज रासो के प्रामाणिक अंशों की भाषा भी व्रज बताई जाती है, राजस्थानी नहीं आचार्य हेमचंद्र के 'प्राकृत व्याकरण' में उद्धृत दोहों में भी पुरानी व्रजभाषा है। निम्नलिखित शब्दों और पदों से यह बात स्पष्ट हो जाती है –

अइसो, एउं, एत्तुलो (इतना), ओक्खल, काहारो (कहार), कुम्पल (कोंपल), कोल्हुओ (कोल्हू), खोडि (खोरि), गड्डो (गड्ढा), घट्टो (घाट), छइल्लो (छैला), छलियो (छलिया), तिरिच्छी (तिरछी), दोरो (डोरा), बप्पो (बाबा), बाउल्लो (बावला), विहाण (बिहान), सलोणी (सलोनी)।

IAS/PCS

उक्तिव्यक्तिप्रकरण में व्रज के कई प्रभाव दिखाई देते हैं, जैसे –

सूऔ माणुस जेउं बोलइ। ब्रह्मण शिष्य पाहिं थोथउ लिखवाइ। कुंभार हांडो घउइ।

उक्ति रत्नाकर में भी देशी क्रियाएं, क्रियाविशेषण, सर्वनाम और क्रियारूप मिलते हैं जिनसे व्रजभाषा की प्रगति की दिशा स्पष्ट होती है।

गोरखनाथ के गुरु मच्छेन्दरनाथ की वाणी में कई पद व्रजभाषा में हैं। जैसे –

पखेरू ऊडिसी आय लीयो बीसराम।
ज्यौं ज्यौं नर स्वारथ करै कोई न सजायौ काम।।
जोगी सोई जाणिये जग तैं रहे उदास।
तत निरन्जण पाइयै कहै मछन्दरनाथ।।

इसी प्रकार सन्तों की वाणियों में भी व्रजभाषा का व्यापक व्यवहार हुआ है।

स्वतंत्र साहित्य – चौदरहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से व्रजभाषा में निरन्तर और स्वतंत्र साहित्य मिलने लगता है। आज तक जो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं, उनमें सबसे पुराना सुधीर अग्रवाल का 'प्रद्युम्न चरित' (सन् 1354 ई0) है। माँ (रुक्मणि) के विलाप की भाषा देखिए –

की मइं पुरिष बिछोही नारि। की दव घाली वणह मझारि।
की मइं लोक तेल–घृत हरयऊं। पुत्त संताप कवण गुण परयउँ।।

अनेक घटनाओं का वर्णन विशद और प्रभावपूर्ण बन पाया है।

जाखू मणयार का 'हरिचंदपुराण' राजा हरिश्चन्द्र की कथा पर आधारित है। भाषा विकसित होती हुई व्रजभाषा है जो लोकभाषा के अधिक निकट है, सहज और सरल भी है, स्वाभाविक भी। इसमें भी एक माँ (शैव्या) का विलाप बहुत मार्मिक और हृदयस्पर्शी है –

विप्र पूँछि वर भीतर आइ। रानी अकली परी बिलखाई।

'सुत सुत' कहइ वयण उच्चरई। नयण नीर जिमि पाउस झरई।

इसके बाद उस युग के सर्वश्रेष्ठ कवि विष्णुदास का नाम आता है। इनकी चार रचनाएं प्रकाश में आई हैं – महाभारत कथा, स्वर्गारोहण, रुक्मिणि मंगल और सनेह लीला। सनेह लीला में गोपी–उद्धव प्रसंग है। रुक्मणि मंगल के इस पद की भाषा देखिए –

गोहन गहलन करत विलास।
कनक मन्दिर में केलि करत हैं और कोउ नाहिं पास।
रुक्मिनी चरन सिरायै पी के पूजी मन की आस।
जो चाहो सो अंबे पावौं हरि पति देवकि सास।
तुम बिनु और न कोउ मेरो, धरणि पताल अकास।
निसदिन सुमिरन करत तिहारो सब पूरन परकास।
घटघट व्यापक अन्तरजामी त्रिभुवन स्वामी सब सुखरास।
विष्णुदास रुकमन अपनाइ जनम जनम का दास।

लगता है कि बालक सूरदास कविता लिखने का अभ्यास कर रहे हैं। बहुत सुन्दर काव्यभाषा है। यह मानक, परिनिष्ठित, भावानुकूल, सहज और सुष्ठु भाषा है। व्रजभाषा काव्यभाषा के विकास में विष्णुदास का योगदान उल्लेखनीय है। लक्षणसेन–पद्मावती कथा के रचयिता दामोदर कवि की भाषा राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है। चतुर्भुजदास की 'मधुमालती कथा' भी काव्यभाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भाषा निखरी हुई और ओजपूर्ण है।

नारायणदास की 'छिताई वार्ता' पूर्णतः व्रजभाषा में है। काव्यभाषा के विकास में इसका भी महत्वपूर्ण स्थान है।

गुरुग्रंथ साहब के कवियों की व्रजभाषा सिखों के पांचवें गुरु अर्जनदेव ने अपनी वाणी और अपने से पूर्व चार गुरुओं – नानक देव, अंग, रामदास और अमरदास – के अतिरिक्त नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना, बेनी, रामानन्द, धन्ना, पीपा, सेन, रैदास आदि भक्तों की वाणियों का संग्रह किया, व्रजभाषा का तत्कालीन रूप मिलता है।

गुरु नानक देव की भाषा के दो रूप हैं – कुछ पद ऐसे हैं जिनमें पंजाबी, राजस्थानी आदि भाषाएं व्रजभाषा के साथ मिल गई हैं और कुछ में शुद्ध व्रजभाषा है। व्रजभाषा के पद प्रभावशाली और सुव्यवस्थित शैली में रचे गए हैं। नमूना –

सुणि मन भूलै बावरे गुर की चरणी लागु।
हरि जपि नामु धिआई तू जमु डरपै दुख भागु।
दूखु घणे दोहागणी किउँ थिरु रहै सुहागु।

पंजाबी मिश्रित व्रजभाषा का नमूना गुरु अर्जनदेव की वाणी से लिया जा रहा है–

सम किछु घर महि बाहरि नाही। बाहरि डोलै सो भरमि भुलाही।
गुर परसादी जिनी अंतरि पाइया। सो अंतरि बाहरि सुहेला जीउ।।
झिमि झिमि अंम्रित धारा। मनु पीवै सुणि सबुद बीचारा।
अननद विनांद करै दिन राती। सदा सदा हरिकेला जीउ।।

भक्त कवियों में नामदेव की रचनाएं भावपूर्ण, सहज और विकासशील भाषा में प्राप्त हैं। उसमें मराठी का पुट स्वाभाविक है –

ईमै बीठलु ऊमैं बीठलु, बीठलु बिन संसार नहीं।
थान थनंतरि नामा प्रणवै, पूरि रहिउ तूँ सरब मही।।

त्रिलोक, सधना, रामानंद और कबीर की वाणी में व्रजभाषा के अंश प्राप्त होते है। जिन पर अपने युग की मोहर स्पष्ट है। रैदास की भाषा आदर्श के अधिक निकट है, उसमें ओज भी है, कला भी। नमूना –

माधो भरम कैसेहु न बिलाई। ताते द्वैत दरसै आई।।
कनक कुंडल सूत पट जुदा, रजु भुअंग भ्रम जैसा।।
जल तरंग पाइन प्रतिमा ज्यों, ब्रह्म जीव इति तैसा।।

सूरपूर्व काव्यभाषा के सामान्य लक्षण

(वर्ण) छंद में वर्णों की गणना करने पर लगता है कि अक्षर के अन्त में अ का उच्चारण होता था, जैसे – संस्कृत में होता है। यह अ प्रत्येक व्यंजन के पूरे रूप में निहित है। बाद की व्रजभाषा में यह अ मूक हो गया। संस्कृत पालि आदि में व्यंजन में अनुनासिकता होती है, इस की व्रजभाषा में स्वरों में भी अनुनासिकता आ गई थी, इसके लिए चंद्रबिंदु का प्रयोग आवश्यक होने लगा, जैसे – कहँ, महँ, अँधार, उपासहिं, करहिं। बहुत–से शब्दों में ण पाया जाता है, जैसे – वयण, नयण, जाणिये, निरंजण, गण, सुणि, कषण। बाद की व्रजभाषा में ण नहीं है। कुछ शब्दों में ण का न कर देने की प्रवृत्ति है, जैसे – गनपति, सरन। ष लिखा तो गया है, पर इसका उच्चारण ख होता था। ऐ औ का बाहुल्य व्रजभाषा की विशेषता है, परन्तु इस युग में ऐसे प्रयोग तीन प्रकार के थे – एक अवहट्ट की तरह के, जैसे चाल्यउ, करउ, धरइ, चिह्नइ, दूसरे ए ओ वाले, जैसे गयो, मिल्यो, ज्यों, और तीसरे ऐ औ। हत्थ, सज्जहि, छइल्लो, बप्पो आदि शब्दों में व्यंजन–द्वित्व अपभ्रंश–अवहट्ट के अवशेष–स्वरूप चल रहा था।

(व्याकरण) कर्ता के साथ 'ने' का प्रयोग मिलने लगता है, पर बहुत कम। शेष परसर्गों में कुछ स्थिरता आ गई है – सम, सउँ, तैं, ते, लागि, को के की, माँझि। माँहि, कहुँ, कौं, कूँ। हिं से भिन्न–भिन्न कारकों का अर्थ लिया जाता रहा है। बिना परसर्ग के प्रयोग भी मिल जाते हैं।

सर्वनामों में हउँ, हौं, मउँ, मैं, मोहि, मेरो, हमारो
तूँ, तुम, तुव, तेरो, तुम्हारो, तिहारो
सो, वह, तेइ, तेउ, वेवै, कोउ, कोई जो
को, कवण, कौण, आपणौ

इनमें कुछ विकसित दशा में आ गए हैं, कुछ विकासमान हैं।

क्रिया की काल–रचना स्पष्ट है – करत, जात (वर्तमान), कियो या कियौ, गयो गयौ (भूतकाल), करहि, जाहिं (भविष्यत् काल)। भविष्यत् काल का ग–रूप अभी खुलकर नहीं आया। सहायक क्रिया में ह्वै, है, ह्वै, हैं, है, हैं, भयो, भये, भई विकास की दिशा का संकेत करते हैं।

पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त तक का युग व्रजभाषा का निर्माण काल कहा जाता है।

भक्तिकाल

व्रजभाषा के साहित्यिक प्रचार–प्रसार का कृष्णभक्ति आंदोलन के प्रचार–प्रसार से गहरा सम्बन्ध है। डा0 धीरेन्द्र वर्मा ने ठीक ही कहा है कि जिस समय श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य को व्रज जाकर गोकुल तथा गोवर्धन को अपना केन्द्र बनाने की प्रेरणा हुई, उसी दिन से व्रज की प्रादेशिक बोली के भाग्य पलटे। सन् 1499 में गोवर्धन में श्रीनाथ जी के विशाल मन्दिर की नींव रखी गई। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना की। सूरदास इनमें प्रमुख थे। अष्टछाप के अन्य कवि थे – नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास, कुंभनदास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी। इनके अलावा अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने भी व्रजभाषा में अपना साहित्य लिखा। निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट, हरिव्यास देव और परशुराम देव, चैतन्य सम्प्रदाय के माधवदास और श्री रामराय, राधावल्लभी सम्प्रदाय के हितहरिवंश, हरिराम व्यास और ध्रुवदास के नाम उल्लेखनीय हैं। मीरा और रसखान के अलावा बहुत से कवि ऐसे हुए हैं जिनमें किसी मतवाद का आग्रह नहीं है। कृष्णभक्त कवियों की संख्या इतनी अधिक है कि संतों, प्रेममार्गी सूफियों और रामभक्त कवियों को मिलाकर भी इतनी नहीं है।

सिद्धान्तों में न्यूनाधिक अन्तर रखते हुए भी सभी कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण और व्रजभूमि के सौन्दर्य और उनके प्रति प्रेम का वर्णन, कृष्ण के राग और प्रकृति की शोभा का चित्रण किया है। मीरा का स्थान इन सबसे अलग है। उसने कृष्णलीला की अपेक्षा कृष्ण के प्रेममय स्वरूप का वर्णन किया है। वे राधा को बीच में नहीं लाईं, स्वयं राधा–रूप हो गईं।

तत्कालीन कृष्णभक्ति काव्य एकमात्र व्रजभाषा में लिखा गया है। जिस प्रकार राम की जन्मभूमि की अवधी भाषा रामभक्ति काव्य के लिए उपयुक्त हुई है, उसी प्रकार कृष्ण की लीलाभूमि की भाषा कृष्णभूमि की भाषा कृष्णचरित की व्याख्या के लिए समर्थ हुई है। सारे कृष्ण साहित्य में एक ही भाषा के प्रयोग के कारण उसका भली–भांति परिष्कार और परिमार्जन हो सकता है। कृष्णकाव्य में दो रस प्रधान हैं – वात्सल्य और शृंगार। दोनों कोमल। इससे भाषा में सरसता, लालित्य और माधुर्य भर गया है।

इस काल के कवियों की रचनाओं का एक और लक्षण है उनका संगीत। प्रायः भक्तों ने पद ही लिखे हैं जिनको वे मूर्ति के आगे गाते थे। सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवियों के पद प्रसिद्ध हैं, उनके साथ–साथ राग–रागिनियों का संकेत भी किया गया है। मीरा के गीत

आज भी घर–घर में गाये जाते हैं। रसखान के संगीत का प्रवाह भी अनूठा है। काव्यभाषा में संगीतात्मकता आ जाने से इसमें गौरव और प्रभावप्रवणता की वृद्धि हुई है।

कृष्णकाव्य की व्रजभाषा की यह अन्यतम विशेषता है कि इसमें भावों की अभिव्यक्ति सीधे और स्पष्ट रूप से हुई है। अर्थ को छिपाने अथवा उक्ति में कृत्रिमता लाने का प्रयास नहीं किया गया जैसा कि परवर्ती काल में हो गया। रसखान को ही लें। चाहे उनके समय में कविता को अलंकृत करने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी, फिर भी वे कृत्रिम अलंकारों पर नहीं रीझे। अलंकारों के बिना ही इन कवियों के चित्र सजीव और सुन्दर हैं। जहां कहीं अलंकार आए हैं, वे स्वाभाविकता को बढ़ाते हैं। उपमा, रूपक और दृष्टान्त का उपयोग भावों को अधिक सरल बनाने में किया गया है।

सूरदास और नन्ददास की भाषा उच्च कोटि की है। सूरदास की काव्यभाषा विषय–वस्तु और भाव के अनुकूल नये–नये रूपों में दिखाई देती है। अभिव्यक्ति की क्षमता पर उनका पूरा अधिकार है। वांछित शब्द, पदबंध और अर्थगर्भित वाक्य उनकी इच्छा के अनुरूप अपने–आप निकलते आते हैं। सूरसागर के वे अंश जिनमें भागवत पुराण की कथाएं हैं शिथिल और नीरस हैं। बालकृष्ण के कर्णच्छेदन, अन्नप्राशन आदि के वर्णन भी कवि के व्यक्तित्व से मेल नहीं खाते। गेय पदों में कुछ प्रसंगों को भाषा प्रायः परिमार्जित है। घटना–प्रधान होने के कारण यह भाषा तद्भव–प्रधान, स्पष्ट और प्रवाहमय है। संवादों में नाटकीय और व्यंजक शैली का निर्वाह हुआ है। बालक्रीड़ाओं के वर्णन में व्यावहारिक शैली का प्रयोग है, कहीं–कहीं आलंकारिकता अधिक हो गई है। भाषा प्रौढ़ है, भाषा और शैली की उत्कृष्टता रूप–सौन्दर्य सम्बन्धी पदों में मिलती है। उनमें सुसंस्कृत और साहित्यिक रूप के दर्शन होते हैं। दैन्य, वात्सल्य और शृंगारी भावों के चित्रण की भाषा अधिक पुष्ट है। ऐसे पदों की शैली में गम्भीरता, स्पष्टता ओर संयम है। इनमें तत्सम और समासयुक्त पदावली का प्रयोग कुछ अधिक हुआ है। कवि की अत्यन्त प्रौढ़ मार्मिक और व्यंजक शैली भ्रमरगीत में है। दृष्टिकूटों में कठिन–क्लिष्ट अलंकृत काव्यभाषा है। अवसरानुसार अरबी, फारसी, अवधी, राजस्थानी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जिससे व्रजभाषा समृद्ध हुई है। विरह–वर्णन का एक उदाहरण देना आवश्यक जान पड़ता है। राधा की प्रेम–विवशता उसी के मुख से कैसी सरल और आत्मीय शैली में प्रकट की गई है।

मन हरिलीन्हौ कुँवर कन्हाई।
तबहीं तैं मैं भई दिवानी, कहा करौ री माई।
कुटिल अलक भीतर अरुझानी, अब निरवारि न जाई।
नैन कटाच्छ चारु अवलोकनि, मो तन गए बसाई।

इस पद में तत्सम ओर तद्भव शब्दावली का सन्तुलन देखिए। सूर का शब्दकोश असीम और अर्थ–सम्पदा अपरिमित है। उनके काव्य में शब्द और अर्थ का अद्भुत सामंजस्य पाया जाता है।

सूरदास ने छंदों का चयन भावों के आधार पर किया है।

सूरसागर की व्याकरणिक विशेषताएं –

सर्वनाम – हौं, मैं, मो कौ, मो सउँ, मेरौ, हमारौ, हम, हमैं
तू, तैं, तुम तेरौ, तिहारौ, तुम्हारौं, तुम्हैं, आपु
वह, वे, वाकी, वामैं, बाकौ (स्त्रीलिंग), उन
यह, ए, या, याकौ, यामैं, इन
जो, जा कौ, जिहिं, जे
सौ, सु, ता, तिन, तिहि
को, कौन, कोउ, काहु का, कहा, किन।

संज्ञा – सर्वनाम के परसर्ग – नैं, कौं, को, कौ, सौं, तैं, करि, लौं, धौं, को, के की, केरा, मैं, माहि, पैं, पर।

परसर्ग रहित और सविभक्तिक रूप भी मिलते हैं।

क्रिया – (वर्तमान) त–रूप (करत, करति), बंदौ, बोलैं, (भूतकाल) कियौ, कीन्हौ, चलौ (भविष्यत्) करैगो, करिहै (ग–रूप एवं ह–रूप)।

सहायक क्रिया – (वर्तमान) है हैं हौं हौ, (भूतकाल) हुतौ, हुती, हुते, ता, ते, तें।

अव्यय – फिरि, पुनि, कित, बिनु, नाईं, जहँ, तहँ।

नंददास जड़िया, और कवि गढ़िया। इनकी भाषा अलंकारबहुल और चमत्कारपूर्ण है। परन्तु उसके प्रवाह और प्रसादगुण में कोई कमी नहीं है। शब्द चयन में इनके जोड़ के कवि कम हुए हैं। संस्कृत शब्दों का प्राधान्य है। इनकी अभिव्यक्ति मनोहारी और मधुर है जिसमें

ओज, गम्भीरता, विशदता आदि अनेक गुण हैं। रसों में शृंगार रस की प्रधानता है। अनुप्रासों और तद्भव शब्दों का प्रयोग भी सुन्दर हुआ है। प्रकृति–चित्रण की अपेक्षा इन्होंने मानव हृदय का विश्लेषण अधिक सफलतापूर्वक किया है। इनकी संस्कृत–प्रधान शैली का एक नमूना –

ऊधव को उपदेश, सुनो ब्रजनागरी।
रूप सील लावन्य, सब गुन आगरी।।
प्रेम सुधा रस रूपिनी, उपजावत सुख पुंज।
सुन्दर श्याम विलासिनी, नव वृन्दावन कुंज।।
सुनो ब्रजनागरी।।

कृष्णदास की काव्यभाषा सूरदास और नन्ददास के समान तो नहीं है, परन्तु उसमें भावपूर्णता और गम्भीरता अवश्य है। परमानन्ददास की भाषा सरल, सरस और भावपूर्ण है। पदों के लालित्य और माधुर्य के कारण इन्हें सफल कवि माना गया है। चतुर्भुजदास के कीर्तन–पद बहुत मधुर और संगीतमय बन पड़े हैं। इनकी वर्णन शैली रोचक है।

हितहरिवंश संस्कृत–पंडित थे। आपकी भाषा तत्सम–प्रधान है, जिसका विशेष गुण है मधुरता। इसी कारण से आप श्रीकृष्ण की बाँसुरी के अवतार माने गए हैं। इनकी भाषा का एक उदाहरण –

आजु बन नीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुमग यमुनातट मोहन बेनु बजायो।
कल कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो।
जुवतिन मंडल मध्य श्यामधन सारंग राग जमायो।

गदाधर भट्ट चैतन्य महाप्रभु के परम कृपापात्र थे। वे भी संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। उनकी भाषा में विद्वत्ता की छाप स्पष्ट है। पद–विन्यास का सौंदर्य और भावगांभीर्य उनके पदों के विशिष्ट गुण हैं।

मीराँबाई ने भक्ति की तल्लीनता में न तो भाषा की सजावट की चिंता की और न ही छंदों के गठन का प्रयत्न किया। उनकी भाषा में एकरूपता नहीं, स्वरूप व्रजभाषा का है और उसमें राजस्थानी का पुट दिया है जो स्वाभाविक है।

रसखान कृष्णभक्त मुसलमान थे। कृष्ण और कृष्णभूमि के प्रति उनकी श्रद्धा अपार और अनुपम थी। इनके सवैये बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा का प्रवाह अनूठा है। भाषा सरल, सरस और शुद्ध व्रजभाषा है। अलंकारों का उन्होंने बहुत प्रयोग नहीं किया। जो अलंकार स्वाभाविक ढंग से आ गए हैं उनसे भाव स्पष्ट हुए हैं। उनकी चित्रात्मक शैली सुन्दर है।

तुलसीदास कृष्णभक्त तो नहीं थे, परन्तु उनकी 'विनयपत्रिका' काव्यभाषा का उत्तम उदाहरण है। इसकी संरचना समास शैली की है, जिसमें मितकथन की विशेषता है। संस्कृत शब्दों का बाहुल्य विषय और भाव के अनुरूप है। यह भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और रसात्मक है।

भक्तिकाल व्रजभाषा को प्रौढ़ काल कहा जा सकता है।

रीतिकाल

हिन्दी साहित्य का यह युग मुख्यतः रसालंकारप्रिय कवियों का युग था। इन कवियों के दो वर्ग थे – (1) रीतिबद्ध कवि, जैसे – देव, बिहारी, भिखारी दास, सेनापति, मतिराम और पद्माकर, और (2) रीतिमुक्त कवि, जैसे – घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि। बहुत से कवि अपने ग्रन्थों में पहले रस अथवा अलंकार का लक्षण दोहा में कह देते हैं और फिर कवित्त या सवैया में उदाहरण बनाते हैं। परन्तु उनका उद्देश्य लक्षण–शासन लिखने का कभी नहीं था। उन्होंने अपनी सारी प्रतिभा और काव्यशक्ति उदाहरण देने में लगा दी है – रीतिमुक्त कवियों ने लक्षण दिये ही नहीं।

इस युग के काव्य का प्रधान रस शृंगार है। वैसे तो सब रसों के उदाहरण देने की चेष्टा की गई है, परन्तु शृंगार को रसराज मानकर और इसकी व्यापक प्रवृत्ति से प्रभावित होकर प्रायः सभी ने शृंगाररस का वर्णन ही विस्तार से किया है। काव्यकला में अलंकार सजाए जाने लगे। भाषा भी शृंगाररसोचित, श्लेष और यमक से बोझिल, और धीरे–धीरे कृत्रिम और जड़ होने लगी। कविता जीवन की संदेश–वाहिनी न होकर, भाषा–सौंदर्य, अलंकार–योजना और मनोरंजन की परिधि में बंद हो गई। उनका मन्तव्य था कि 'कविता बनिता रसभरी, सुन्दर होइ सु लाख, बिन भूषन नहि भूषहीं यही जगत की साख'। बिहारी के एक–एक दोहे में कई अलंकार हैं। इससे अर्थ में कई जगह बाधा पड़ती है। अत्युक्ति को तो पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया गया है।

इस युग के बहुत–से कवि व्रजभूमि से पूर्व के प्रान्तों के रहने वाले थे। अपनी–अपनी मातृभाषा का प्रभाव उनकी रचनाओं में मिलता है और यह प्रभाव शब्दकोश तक ही सीमित नहीं, क्रियाओं के रूप और वाक्य–गठन तक इससे प्रभावित हुए। परिणामतः भाषा अस्थिर और अव्यवस्थित हो गई। कोई भाषा जब साहित्यिक गौरव प्राप्त कर लेती है तो वह अपनी क्षेत्रीय सीमा से बाहर फैलने पर विकृत होने लगती है। वह युग प्रेस और आकाशवाणी का नहीं था कि इतने विशाल क्षेत्र में एकरूपता बनाये रखने में समर्थ होता। फारसी के अतिप्रभाव ने भी व्रजभाषा को दूषित किया। इतना विस्तृत आधार पा लेने पर यह भाषा अपनी प्रकृति को खों बैठी।

व्रज काव्यभाषा की यात्रा में जिन प्रमुख कवियों ने अपना–अपना योगदान जिस रूप में दिया, उनका उल्लेख कर देना आवश्यक है।

चमत्कारी भाषा के पहले कवि **केशवदास** थे जिन्होंने भक्ति काल में ही अलंकारी धारा को प्रवाहित किया। उन्होंने कई शैलियों में कई प्रकार की रचनाएं की हैं। उनकी भाषा शास्त्रीय और पांडित्यपूर्ण है। संवादों और वर्णनों में उनकी भाषा सामर्थ्यवान है। उनका शब्दकौशल, चमत्कार–चातुर्य और वाग्वैचित्र्य प्रसिद्ध है। लगता है कि आरम्भ में सूरदास आदि भाषा–सौष्ठव से इतने आतंकित थे कि उन्हें इस काव्यभाषा को अपनाने में डर लग रहा था। उन्होंने लिखा है –

भाखा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाखा कवि भो मंदमति तेहि कुल केसवदास।।

बाद में उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण हो गई।

बिहारी इस काल के प्रतिनिधि कवि हैं। उनके दोहे फारसी के दरबारी कवियों के शेरों के मुकाबले में सटीक और पैने रहे हैं। उनकी कला में सूक्ष्मता है। शब्दों का चयन करने में वे कुशल हैं, परन्तु उनको प्रायः तोड़–मरोड़ देते हैं, कभी–कभी उनका अर्थ बदल देते हैं। वे प्रायः वाक्यक्रम भी उलट–पुलट देते हैं। उनकी भाव–व्यंजना उत्कृष्ट है, परन्तु कहीं–कहीं दुरूह है और श्लेष के कारण बोझिल ओर क्लिष्ट है। कुछ दोहे सुन्दर और स्पष्ट हैं। परन्तु अत्युक्ति के कारण उनमें भी सहजता नहीं है। उदाहरण –

औंधाई सीसी सुलखि, बिरह बरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छीटो छुयो न जात।।

भूषन भार सँभारहिं, क्यों यह तनु सुकुमार।
सूधो पाँय न परत महि, सोभा ही के भार।।

देव की भाषा भी चमत्कारपूर्ण और अलंकृत है, परन्तु है परिनिष्ठित, लययुक्त, कोमल और सरस। इसमें अव्यवस्था नहीं है। उनकी उक्तियां और उपमाएं सर्वथा मौलिक हैं। परन्तु उनकी शैली में कोई नवीनता नहीं है।

मतिराम बड़े सरस और विद्वान् कवि हैं। उनकी काव्यभाषा भावभंगिमाओं का सर्वांगीण चित्रण करने में पूर्णतया समर्थ है। उसमें लचक भी है और अर्थव्यंजकता भी। शब्दों के प्रयोग में वे बहुत संयत और सावधान हैं। उदाहरण –

आपने हाथ सों देत महावर आपहिं बार शृंगारत नीके।
आप नहीं पहिरावत आनि के हार सँवार के मौलसरी के।।
हौं सखि लाजन जात गड़ी मतिराम स्वभाव कहा–कहौं पी के।
लोग मिलैं घर घेरे कहैं अबहीं ते ये चेरे भए दुलही के।।

सेनापति अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि अलंकारों से सज्जित भाषा का प्रयोग करते हैं। उनकी रचना में तत्सम शब्द अपेक्षाकृत कम हैं। **भिखारीदास** की भाषा में अनेक मिश्रण हैं – अवधी, खड़ी बोली, फारसी परन्तु यह भाषा है सरल और संयत।

श्रीपति की व्रजभाषा में व्यर्थ का शब्दाडंबर और वाग्जाल नहीं है। अनुप्रास आए तो हैं पर इनसे अर्थ में बाधा नहीं पड़ती। वाक्यविन्यास मधुर, ओजपूर्ण और प्रसादगुणसंपन्न है। शब्दों का चयन और प्रयोग भावानुकूल है। एक ही भाव को अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करने में वे कुशल हैं। उनकी काव्यभाषा के गुण हैं मधुरता, गम्भीरता और चमत्कारकता। हाँ, कहीं–कहीं व्याकरण की अशुद्धियां अवश्य हैं। यत्र–तत्र अश्लीलता बहुत खटकती है।

बेनी और रसलीन की भाषा वैसी ही चमत्कारपूर्ण और अलंकृत है, जैसी इस युग के प्रायः कवियों की। संत कवि हित वृंदावन के वैराग्य के पदों की भाषा का अपना सौष्ठव है। **दीनदयाल गिरि** की भाषा स्वाभाविक, मधुर और सुलझी हुई है। **बोधा** रीति–अलंकार की कैद में नहीं पड़े। उनकी भाषा चलती हुई और मुहावरेदार है। इसमें पूर्वी भाषाओं और फारसी का प्रभाव स्पष्ट है।

परवर्ती शृंगारी कवियों में **पद्माकर** सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं – इन्हें 'कविराज शिरोमणि' की पदवी प्राप्त थी। उनकी रचना–शैली अपने ढंग की एक है। भाषा बड़ी सरस, शुद्ध परिनिष्ठित और सुगठित है। शृंगार रस हो, वीर हो और शांत रस, भाषा भावादि के अनुकूल रही है। कहीं–कहीं आपने सानुप्रासिक शैली को प्रधानता दी है और कहीं–कहीं व्यर्थ के शब्द भी रख दिये हैं, परन्तु ऐसे स्थल अरुचिकर नहीं होने पाये। नमूना –

जाहिरैं जागत सी जमुना जब बूड़ै उमहै वह बेनी।
त्यों पदमाकर हीर के द्वारन गंग तरंगन सी सुख देनी।
पायन के रंग सो रंगि जात सी भांति ही भांति सरस्वती सेनी।
पैरे जहाँ ई जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होते त्रिवेनी।।

घनानंद उन शृंगारी कवियों में हैं जिन्होंने काव्यभाषा को ह्रासशील होने से बचाने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने व्रजभाषा के स्निग्ध और स्वाभाविक प्रवाह को अच्छी तरह पहचाना। अपने कवित्तों में उन्होंने इसके व्यंजक और परिनिष्ठित रूप को पुनः स्थापित किया।

उनके प्रयोग मधुर, रसीले और साहित्यिक बन पड़े हैं। भाषा पर उनका पूरा–पूरा अधिकार दिखाई देता है। रीति के बंधन से मुक्त रहने के कारण उनकी अभिव्यक्ति स्वतंत्र और प्रांजल है वे स्वच्छंद भावाकृति के कवि हैं। मितकथन उनका अन्यतम गुण है। उनकी कल्पनाएं नई हैं। बिंब नये हैं, और भाषा में भी नवीनता है। उदाहरण –

अति सूधौ सनेह को मारग है, जहाँ नेकों सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकै कपटी जो निसांक नहीं।।
घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तैं दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन धौ पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

'मन' में श्लेष दर्शनीय है।

अन्त में उन कवियों का उल्लेख करना है जिन्होंने इस बात की प्रवृत्ति से अलग होकर लिखा। इनमें मान, लाल, सूदन, श्रीधर और चन्द्रशेखर और विशेषतः भूषण उल्लेखनीय हैं। लाल कवि की भाषा में व्रजभाषा, बुंदेली और अवधी तीनों का सम्मिश्रण है। मान कवि की भाषा राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है जिसमें कर्कशता नहीं है। श्रीधर के वर्णन प्रबल और सजीव हैं, परन्तु भाषा साधारण है। चन्द्रशेखर, सूदन और भूषण की भाषा साहित्यिक और

ओजपूर्ण है। भूषण वीर रस के अत्यन्त सफल कवि हैं। परन्तु काव्यभाषा की दृष्टि से उसमें शुद्ध व्रजभाषापन की कमी है। उसममें अपभ्रंश, राजस्थानी, बुंदेलखंडी और खड़ी बोली के अतिरिक्त अरबी–फारसी के विकृत शब्द भी आते हैं। वीररस के उद्रेक के लिए यह भाषा उपयुक्त जान पड़ती है। निम्नलिखित चार पंक्तियां पढ़िए :

मारि करि पातसाही खाकसाही कीन्हीं जिन।
जेर कीन्हों जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिसि गई सेखी किसि गई सूरताई सब।
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग सारे की।

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि रीति काल का अन्त होते–होते व्रजभाषा रूढ़ एकरूप, एकरस, जड़ीभूत हो गई है। वास्तव में व्रजभाषा व्रजभाषा ही नहीं रह गई। विषय (शृंगार) की संकीर्णता के कारण भाषा की व्यापकता और सामर्थ्य समाप्त हो गई। आधुनिक युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जगन्नाथदास रत्नाकर ने सूर और बिहारी की भाषा मे राागंजरय स्थापित करके उसका पुनरुद्धार करने का प्रयत्न किया, परन्तु खड़ी बोली की होड़ में व्रजभाषा हार गई।

—000—

खड़ी बोली हिन्दी का प्रारम्भिक रूप

दिल्ली तथा मेरठ के आसपास के क्षेत्र में व्यवहृत बोली को आमतौर पर **खड़ी बोली हिन्दी** के नाम से जाना जाता है। पश्चिमी हिन्दी की यह एक प्रमुख उपबोली है जो कि आधुनिक हिन्दी तथा उर्दू का मूलाधार है। हिन्दुस्तानी, हिन्दवी, हिन्दुई, रेख्ता, दक्खिनी, गूजरी एवं कौरवी आदि अन्य पर्यायों में इसके क्रमिक विकास को देखा जा सकता है। इसके प्रारम्भिक स्वरूप को लेकर **डा0 सुनीति कुमार चाटुर्ज्या** का यह विचार अत्यन्त प्रासंगिक है–

"इस रूप को हम खड़ी बोली का वह रूप कह सकते हैं, जिसकी शब्दावली में उर्दू तथा नागरी हिन्दी दोनों की शब्दावलियों का सुष्ठु समन्वय रखा गया। इसे हम हर रोज के प्रत्यक्ष जीवन के व्यवहार की हिन्दी कह सकते हैं।"

हिन्दी भाषा के इस आधुनिक स्वरूप का इसके नामकरण के संदर्भ में सर्वप्रथम प्रयोग लल्लूलालजी ने अपने ग्रंथ 'प्रेमसागर' की भूमिका में किया है। इस संदर्भ को उद्घाटित करने वाला वह उद्धरण दृष्टव्य है :

"श्रीयुत गुनगाहक गुनियान सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् 1860 में श्री लल्लूलालजी कवि ब्रह्मण गुजराती सहस्त्र अवदीन आगरे वाले नें विस का सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह नाम 'प्रेमसागर' धरा।"

खड़ी बोली का आधुनिक विकास ब्रज भाषा के समानान्तर है। इसकी प्रमुख विशिष्टता के तौर पर **वियोगात्मकता** को रखा जा सकता है जिसके लिए **परसर्गों का प्रयोग, विभक्तियों का क्रमशः त्याग, क्षतिपूरक दीर्घीकरण तथा तत्सम शब्दों का प्रयोग** उत्तरदायी कारक हैं। आज खड़ी बोली हिन्दी एक परिनिष्ठित भाषा है, साहित्य की भाषा है, इसका मानक व्याकरण तथा मानक लिपि है। यह राजभाषा है तथा राष्ट्र भाषा के रूप में इसका विकास जारी है। इसे संपर्क भाषा के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है। यह एक सामान्य अवधारणा है कि भाषा एक सतत् विकास मान प्रक्रिया है। यह अचानक प्रकट होने वाला अवतार नहीं है। भाषा का अपना एक पृथक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक द्वंद्वात्मक विकास होता है। खड़ी बोली हिन्दी भी इसी तरह के विकास का है। इसके प्रारम्भिक विकास को समय के विभिन्न खण्डों में निम्नवत देखा जा सकता है –

"शौर सेनी अपभ्रंश से उसकी उत्पत्ति का तात्कालिक संबंध है। स्पष्ट नाम के साथ खड़ी बोली का अस्तित्व क्रियान्वयन में तो बाद में आया जबकि इसके पावने शौरसेनी प्रसूत अन्य बोलियों के साथ ही आ गए थे। बेनामी सम्पत्ति की भांति यह जैन आचार्यों, सिद्धों, नाथपंथियों, चारणों आदि की अभिव्यक्ति सम्पदा के रूप में प्रयुक्त हुई। तदन्तर यह संत वाणी के रूप में मुखरित हुई तथा परवर्ती सूफियों की भाषा में अपना प्रयोग मिलाया तथा रीतिकाल की रचनाओं में भी ब्रजभाषा के साथ चमकती–गमकती रही थी। जब ब्रजभाषा आधुनिक अभिव्यक्ति से चूकने लगी तो आधुनिक गद्य के साथ इसका प्रसार प्रारम्भ हुआ। इसने काव्य भाषा की चुनौती को स्वीकारा एवं 20वीं शती में स्वयं को हर विधा के माध्यम के रूप में स्थापित कर लिया। इस बीच उर्दू के शासकीय वर्चस्व तथा संस्कृत के पुनरूत्थानवादी मोह को भी इसने तोड़ा।"

खड़ी बोली हिन्दी के संवेदनात्मक विकास को लेकर श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है :

"हिन्दी के आरम्भिक काल में पश्चिम से जैन तथा रासो काव्य का रूप उभरा तथा पूर्व से सिद्धों के गीतों तथा बाद में विद्यापति के पदों का, नाथसंत समूचे उत्तर भारत में फैले हुए थे। हिन्दी संवेदना के विकास का इस भाषिक एवं जनपदीय विस्तार तथा वैविध्य से घनिष्ठ संबंध है।"

इस तरह स्थापित हिन्दी के खड़ी बोली रूप का निम्नवत ऐतिहासिक विकास देखा जा सकता है जो निम्न परिप्रेक्ष्य में होगा :

1. बोली के रूप में
2. व्याकरणिक रूप में
3. विधाओं के लिए माध्यम के रूप में
4. साहित्यिक भाषा के रूप में
5. मानक होते जाते स्वरूप के रूप में

इनका समग्रता के साथ ही वर्णन किया जाएगा जो कि निम्नवत है :

सिद्ध–नाथ साहित्य तथा खड़ी बोली हिन्दी

किसी भाषा में-बिगाड़ के चिन्ह किसी नयी भाषा के विकास के प्रतीक भी माने गए हैं। प्राकृत में बिगाड़ अपभ्रंश के नाम से सामने हैं और परवर्ती अपभ्रंश में जो बिगाड़ दिखता है

वह हिन्दी की तमाम बोलियों का विकास कहा जा सकता है। इस शीर्षक के तहत हम 700 ई0 से 1200 ई0 तक का समय लेंगे –

सिद्ध तथा नाथ दो पंथ जो कि यौगिक क्रियाओं तथा अन्य साधना पद्धतियों का प्रचार करते थे और उसके प्रचार हेतु उन्होंने जिस साहित्य की रचना की वह मध्य क्षेत्र में रचा गया जिसकी केन्द्रीय भाषा हिन्दी मानी जाती है। सिद्ध पंथ के संस्थापक सरहपा तथा नाथपंथ के मत्स्येन्द्र नाथ थे। इन संतों (सिद्ध तथा नाथ) का कार्यकाल 800 से 1200 तक माना जाता है। इनकी भाषा मुख्यतः अपभ्रंश तथा अवहट्ठ ही है जिसमें हमें खड़ी बोली हिन्दी का स्वरूप खोजना है। इसे खड़ी बोली के आदि काल के नाम से भी जाना जाता है जिसमें अपभ्रंश ग्रंथकारों, नाथों सिद्धों, वीरकाव्य के रचयिता चारण भाटों के साहित्य का शुमार किया जाता है। भाषा की दृष्टि से यह काल अपभ्रंश का अन्तिम चरण माना जाता है। इस समय तक अपभ्रंश साहित्यिक भाषा के रूप में परिनिष्ठित होकर रूढ हो चली थी तथा बोलचाल की भाषा के रूप में हिन्दी की अन्य बोलियों के साथ खड़ी बोली भी प्रचलित हो रही थी। इस युग में रचित अपभ्रंश साहित्य में खड़ी बोली के रूप की पहचान आसानी से की जा सकती है। इस काल की भाषिक स्थिति के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि –

"10वीं से 14वीं शताब्दी का काल भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश का ही विकास है। इसे ही कुछ लोग अपभ्रंश का विकास कहते हैं तथा कुछ लोग पुरानी हिन्दी 12वीं शती तक निश्चिंत तौर पर अपभ्रंश भाषा ही पुरानी हिन्दी का काम करती रही यद्यपि उसमें नए तत्सम् शब्दों का प्रयोग या आगमन प्रारम्भ हो गया था।"

इस काल की भाषा को गुलेरीजी ने पुरानी हिन्दी ही माना है। राहुल सांकृत्यायन ने तो हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाओं के रूप में परवर्ती अपभ्रंश की रचनाओं को स्वीकारा है। श्री रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दी भाषा के आदिकाल में अपभ्रंश की रचनाओं को शामिल किया है। हिन्दी प्रथम कवि विवाद में जो नाम उभर कर आते हैं उसमें भी इस भाषा के कवियों की उपस्थिति है। डा0 नगेन्द्र ने सरहपा को हिन्दी का प्रथम कवि माना है जो कि सिद्धसन्त थे। उनकी भाषा का एक नमूना देखिए :

"पण्डिअ सहलसंत बक्खाणइ, देहहि रूद्ध बसन्त न जाणइ
अमणामामण ण तेन विखण्डिअ, तोवि णिलज्ज भणइ हउं पण्डिअ।।"

इनके द्वारा व्यवहृत दोहा तथा पदों की शैली हिन्दी में काफी समय तक रही तथा उपर्युक्त वर्णित दोहा हिन्दी मुक्तक काव्य का हिन्दी प्रथम छंद रहा है। किन्तु परवर्ती अपभ्रंश को खड़ी बोली हिन्दी का प्रारम्भिक रूप स्वीकार करने में तमाम बाधाएं भी हैं। बंगला भाषी वर्ग इसे प्रारम्भिक बंगला मानता है तथा पश्चिमी अपभ्रंश को 'जूनी गुजराती' भी कहा गया है– किन्तु परवर्ती अपभ्रंश के जिन ग्रंथों में प्रारम्भिक खड़ी बोली के निक्षेप खोजे जाते हैं वे इस तरह के बाधात्मक प्रतिवादों को निर्मूल साबित कर देते हैं। ये ग्रंथ हैं, हेमचन्द्र सूरि का 'प्राकृत पैंगलम्', ढोलामररू रा दूहा, कीर्तिलता। इसके अलावा स्वयंभू, पुष्यदंत, जोइंदू, राम सिंह आदि के साहित्य में तथा जैकोबी एवं पिशेल के संकलन कार्यों में खड़ी बोली हिन्दी स्पष्टतः झांकती सी दिखती है। अपभ्रंश में खड़ी बोली की स्थिति को एक और तथ्य से सिद्ध माना जाता है और वह यह है कि अपभ्रंश मध्य देश की काव्यभाषा ठीक उसी तरह रही है जैसे कि ब्रज, अवधी आदि और इस मध्य देश की केन्द्रीय भाषा हिन्दी को ही माना जाता रहा है। अतएव इस नाते अपभ्रंश भी हिन्दी के खड़ी बोली प्रारूप को स्वयं में समाहित किए हुए हैं। हेमचन्द्र के व्याकरण में वर्णित नागर अपभ्रंश जिसका कि आधार शौरसेनी प्राकृत है को खड़ी बोली हिन्दी का उद्विकास स्थल मानने के आड़े एक तर्क यह भी आता है कि "ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली प्रत्यक्षतः शौरसेनी प्राकृतजन्य हैं न कि नागर अपभ्रंश जन्य।" किन्तु इस तर्क के आड़े अपभ्रंश के वह काव्य रूप हैं जो कि हिन्दी में ज्यों का त्यों सुरक्षित हैं। मसलन दोहाबंध, पद्धड़ियाबंध, गेय पदबंध तथा छप्पय, कुण्डलियां आदि। इससे यह साफ तौर पर जाहिर होता है कि भले ही गुलेरीजी के अनुसार परिनिष्ठित अपभ्रंश को 'प्रारम्भिक हिन्दी' न माना जाय (जिसके लिए उनका तर्क है कि "जिस प्रकार नानक से लेकर दक्षिण के हरिदासों तक कि भाषा को बृज कहा गया है उसी प्रकार अपभ्रंश को भी पुरानी हिन्दी कहना अनुचित नहीं है चाहे कवि के देश कालानुसार इसमें प्रादेशिकता का पुट क्यों न हो) क्योंकि इसमें तमाम भाषाशास्त्रीय अड़चनें हैं, परन्तु इतना जरूर मानना होगा कि जहां तक परम्परा का प्रश्न है हिन्दी के साहित्यिक रूपों को परवर्ती अपभ्रंश में क्रमशः विकसित होते देखा जा सकता है। अपनी उपर्युक्त अवधारणा को पुष्ट करने के लिए यदि हेमचन्द्राचार्य के द्वारा किए गए परिनिष्ठित तथा ग्राम्य अपभ्रंश के विभाजन को पेश करते हुए दिखाया जाए कि ग्राम्य प्रकार की अपभ्रंश जिसमें रासक, डोम्बिका आदि श्रेणी के लोक प्रचलित गेय काव्य लिखे जाते थे, वह परिनिष्ठित अपभ्रंश से अधिक उन्नत बतायी जाती है और इसी में बौद्धों के पद, दोहे प्राकृत पैंगलम, संदेश रासक आदि रचनाएं लिखी गयी तथा इन्हीं से आधुनिक देशी भाषाओं का रूप विकसित हुआ है। इसकी भाषा शैली, स्थापना पद्धति, छंद आदि ज्यों का त्यों हिन्दी

में आ गए हैं। तो क्या यह सिद्ध नहीं करता कि यह सब कुछ हिन्दी के खड़ी बोली रूप का ही विकास है। इस विकास को दर्शाने के लिए समकालीन जैन ग्रंथों के उन जैनेतर प्रसंगों को भी साथ में लिया जा सकता है जहां पर कि 'कड़वक बद्धशैली' का प्रयोग है (स्वयंभू का पउमचरिउ), "धनपाल की 'भविष्यदत्त कथा' आदि में खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप साफ दिखता है।

इस प्रकार से अपभ्रंश के परवर्ती स्वरूप में खड़ी बोली हिन्दी के प्रारम्भिक स्वरूप की स्थापना के बाद हम नाथ सिद्ध साहित्य के जरिए भी इसे सिद्ध कर सकते हैं।

9वीं से 14वीं शती के मध्य नाथ तथा सिद्ध संत एवं योगी पूरे उत्तर भारत में फैले थे तथा पूरे देश में घूम-घूम कर अपने साहित्य का प्रचार करते थे। इनकी भाषा में खड़ी बोली हिन्दी के प्रचुर साक्ष्य मिलते हैं। इनके द्वारा प्रवर्तित 'सैंधा भाषा' जो कि अन्तः साधनात्मक अनुभूतियों को संकेतित करने वाली प्रतीक भाषा थी तथा प्रतीकार्थ खुलने पर ही समझ आती थी, में खड़ी बोली का पर्याप्त रूप मिलता है। यही शैली सिद्धों के यहां भी पायी जाती है। भाषा के स्तर पर ऐसा बदलाव क्यों हो रहा था इसके पर्याप्त कारण उस देश काल में ही पाए जाते है। यह भ्रमणशील संत अपनी रचनाएं सर्वत्र सुनाते थे। इसी क्रम में ये मुसलमानों को भी अपनी रचनाएं सुनाते थे। उनके लिए यह बोधगम्य रहे इसके लिए यह दिल्ली के आसपास में प्रचलित बोली का समावेश भी अपना भाषा में करते थे। परिणामतः इन्होंने परम्परागत साहित्य की भाषा या ब्रजभाषा (जिसका ढांचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था) से अलग सधुक्कड़ी भाषा का विकास तथा व्यवहार किया जिसका ढांचा कुछ-कुछ खड़ी बोली लिए राजस्थानी का था। परिणामतः इस देश भाषा में पूजा, तीर्थाटन के साथ-साथ हज तथा नमाज जैसे शब्द भी मिलते हैं। संस्कृत भाषा के साथ-साथ लोक भाषा के प्रयोग का एक सुन्दर उदाहरण यहां दृष्टव्य है :

"जहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाहि पवेस।
तहि बट चित्त बिसास करू, सरहे कहिय उवेस।।

इनकी भाषा में खड़ी बोली को चिह्नांकित करने वाले अन्य उदाहरण निम्नवत हैं:

1. सहजशील का धरे शरीर, सो गिरही गंगा का नीर।

2. हबिका न बोलिबा, ढबकि न चलिबा, धीरे-धीरे धरिबा पावम्। गरब न करिबा सहजै रहिबा भणन्त गोरख रावम्।

3. नौलखि पातर आगे नांचे पीछे सहज अखाड़ा। ऐसे मन लै योगी षेलै तब अंतरि बसै भण्डारा।

4. हँसिबा षेलिबा रहिबा संग, काम क्रोध ना करिबा संग।
हँसिबा षेलिबा गाइबा गीत, दिढ़ करि रखिब अपना चीत।।
हँसिबा षेलिबा धरिबा ध्यान, अहि विधि कथिबा ब्रह्म गियान।
हँसे षेले न करे मन भंग, ते निहचल सदा नाथ के संग।।

इन उपर्युक्त पंक्तियों की भाषा तथा निर्माण में खड़ी बोली हिन्दी की उपस्थिति को साफ तौर पर महसूस किया जा सकता है।

दोहा, पद्वड़िय बंध का प्राचीन रूप यहां साफ तौर पर दृष्टव्य है। यही वह शैली है, जिसका भाषा, स्वरूप तथा कथ्य के स्तर पर प्रसार संतकाव्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस तरह से धुर हिन्दी प्रदेश में जिस किसी भी भाषायी संदर्भ को लिया जाएगा वहां पर निश्चय ही आगे–पीछे की भाषाएं अपनी मध्यवर्ती भाषा में दिखेंगी ही। सिद्धों की उपर्युक्त उद्धृत रचनाओं की भाषा देश भाषा मिश्रित अपभ्रंश अर्थात पुरानी हिन्दी की काव्यभाषा है यह एक सत्यापित तथ्य है। उन्होंने भरसक उसे सर्वमान्य काव्यभाषा के रूप में लिखा है जो उस समय गुजरात, राजपुताना, बृजमण्डल से लेकर बिहार तक में लिखने पढ़ने की शिष्ट भाषा थी, पर मगध में रहने के कारण उसमें स्थानीय पूरबी प्रयोग मिलते हैं (भइले, बूड़िलि)। पुरानी हिन्दी की काव्य भाषा का ढांचा शौरसेनी प्रसूत अपभ्रंश अर्थात ब्रज एवं खड़ी बोली का था वही ढांचा निम्न सिद्ध–नाथ प्रयोगों में देखा जा सकता है।

जो, सो, मारिआ, पइठो, जाअकिज्जइ, करंत, जाब, ताब, मइअ, कोइ।

ओर यही प्रयोग शौरसेनी प्रसूत पश्चिमी हिन्दी में भी मिलते हैं। अब अगर हम सिद्ध कण्हपा की भाषा ले तो उनकी उपदेश की भाषा तो पुरानी टकसाली हिन्दी है, पर गीतों की भाषा पुरानी बिहारी या पुरबी लगती है। यह विभेद आगे कबीर की 'साखी' तथा 'रमैनी' में भी देखने को मिलता है। 'साखी' की भाषा तो खड़ी बोली राजस्थानी मिश्रित सामान्य सधुक्कड़ी है पर 'रमैनी' की भाषा कहीं–कही काव्य की ब्रजभाषा तथा पूरबी है। इस क्रम से साफ तौर पर जाहिर होता है कि खड़ी बोली हिन्दी का स्वरूप अपना निर्मित करता हुआ परम्पराओं में बराबर प्रवाहशील था। काव्यरूपों, काव्य विषयों तथा हिन्दी प्रदेश की संवेदना के अतिरिक्त

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी खड़ी बोली का विकास नाथ–सिद्ध साहित्य में निम्नवत दिखाया जा सकता है।

आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी की प्रमुख विशेषता तथा कसौटी 'परसर्गों का उदय' यहां स्पष्टतया देखा जा सकता है जबकि सामासिकता का पूर्ण अभाव नहीं है और न ही विभक्तियां खत्म हुई हैं, जैसे –

– पिंड तै. ब्रह्माण्ड
– मनवा नै
– कहाँ सू
– नग्री मै
– कलि मैं
– हम कौ

इनके अलावा इस काव्य पंक्ति को देखें –

अभिअंतर की त्यागै माया
दुविधा मेटि सहज मे राहै।।

'की' तथा 'मे' दो साफ परसर्ग दिख रहे हैं तथा वियोगात्मकता भी स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त निम्न स्थितियों पर गौर करें –

1. खड़ी बोली हिन्दी के प्रमुख स्वर अपभ्रंश में प्राप्य हैं।

2. वियोगात्मकता की क्रमशः विकसित होती प्रवृत्ति।

3. संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम और क्रिया का रूपान्तर संस्कृत की विभक्तियों से मुक्त होकर परसर्गों और स्वतंत्र शब्दों की सहायता से होने लगा। परिणामतः भाषा के सरलीकरण की प्रक्रिया काफी तेज हो गयी।

4. दो लिंग तथा दो वचन पाए जाते हैं (गोरखनाथ की वाणी में कुछ नपुंसक लिंग के प्रयोग दिखते हैं, पर यह विवादास्पद तथ्य है)

5. खड़ी बोली हिन्दी में प्रचलित सर्वनामों में से कइयों के पूर्व रूप यहां देखने को मिलते हैं, मसलन – अपना, ते, वह, जो, सो, आप, कुछ कोइ, जह, तहि (उस), ऐसे, तांहि, इसके अतिरिक्त 'तुहुँ' से 'तू' सर्वनाम का, 'मइं' से 'मैं' सर्वनाम का, 'कवन' से 'कौन' सर्वनाम

का विकास हुआ है। (तुलसीदास ने तो 'कवन' सर्वनाम का इस्तेमाल किया है – "कवन सोकाज कठिन जग माहि, हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाही")

6. उपर्युक्त तथा अन्य सर्वनामों से सार्वनामिक विशेषणों तथा सार्वनामिक क्रिया विशेषणों के जो रूप, हिन्दी खड़ी बोली में विकसित हुए वे खड़ी बोली के पूर्व रूप कहे जा सकते हैं नाथ सिद्ध साहित्य में, जैसे –

– 'ई' से 'अइस', 'इत्ता', 'इतना' का विकास
– 'ऊ' से 'ओइस', 'उत्ता', 'उतना' का विकास
– 'जो' से 'जइस', 'जित्ता', 'जितना' का विकास

7. संख्यावाचक विशेषण "नौ लखि पातर", सबद एक बूझिया, दहमुह, पंचबिड़ाल, चउशठि घडिए, आदि यहां पर खड़ी बोली की प्राचीन परिवेश में उपस्थिति दर्ज कराते हैं।

8. क्रिया रूपों की स्थिति मूलरूप में तो नहीं मिलती, किन्तु वर्तमान क्रियारूपों की पूर्वस्थिति जरूर मिलती है जिनमें यदि 'आ' जोड़ दिया जाय तो वह खड़ी बोली तुल्य क्रिया रूप हो जाएं, करिबा, रहिबा, गइबा, रखिबा, कथिबा, गारिया, संचरइ, आदि नाथ–रिद्ध साहित्य के ऐसे ही क्रिया रूप हैं, जिनके विकसित रूप खड़ी बोली में मिलते हैं।

9. क्रिया की रचना में कृदन्तीय रूपों के विकास के कारण वर्तमान कालिक कृदन्त 'त' तथा भूतकालिक कृदन्त 'इआ' से खड़ी बोली हिन्दी के काल रूप का स्पष्ट बोध होता है।

10. क्षतिपूरक दीर्घीकरण, अन्त्यस्वर लोप, पंचमाक्षर (ङ्, ञ ण् न् म) की जगह अनुस्वार का प्रयाग, संस्कृत के शब्दों का सरलीकरण। कई एक महाप्राणध्वनियों के स्थान पर 'ह' कर देने की प्रवृत्ति, निरर्थक हो चुके शब्दों की जगह तत्सम् शब्द लाने की प्रवृति ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो इस साहित्य में खड़ी बोली हिन्दी की सशक्त उपंरिथति दर्ज कराती हैं।

11. खड़ी बोली एक आकारान्त प्रधान भाषा है तथा यह प्रवृत्ति इस काल की भाषा में भी दिखती है।

12. शब्द भण्डार की दृष्टि से अपभ्रंश तथा अवहट्ठ के तमाम शब्द खड़ी बोली के तुल्य थे तथा वह आज भी खड़ी बोली में प्रचलित हैं, जैसे –

- अटारी, आस, गंदा, ओझा, गुंडा, जनेउ, झूठा
- नाच, देहली, डर, भीतर, बाहर, सहज, शील
- भण्डारा, डाल, अँतड़ी, ओखल, कुम्हार, थू, छी–छी
- कुल्हड़, गगरी, ग्वाला, चौक, चावल, ज्वार, झूठा
- बैल, बाप, व्यास, बेल, भला, दक्षिण, झीना

इन व्याकरणिक स्वरूपों के अतिरिक्त तगाम कथ्यात्मक स्थितियां भी समान हैं जो कि तमाम काव्य रूपों का रूप लेकर खड़ी बोली हिन्दी में प्रचलित रहीं। **इस समय तक खड़ी बोली हिन्दी का स्वरूप इतना ज्यादा मिला–जुला है कि कुछ भी कह पाना मुश्किल है। अभी धर्म तथा साहित्य परस्पर मिले हुए हैं। न ही साहित्य स्वतंत्र है,** न ही भाषा।

रासो साहित्य

आदिकालीन साहित्य के प्रमुख किरदार के रूप में रासो साहित्य की रचनाओं को मान्यता प्राप्त है। इनके स्वरूप को लेकर श्रीरामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास' में लिखा है कि –

"रासो मुख्यतः गाथा तथा रससिक्त साहित्य है तथा यह किसी नायक आदि का वर्णन करते हैं। इनका विधान इतना आधुनिक है कि यह घटना प्रधान कथागीत का प्रबंध तथा रागविहीन बैलेड का आभास देते हैं तथा पद्य एवं गेय दोनों शैलियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक साहित्य के तत्व ऐहिकता में घुले मिले हैं। बीसल में गेय, 'पृथ्वीराज रासो' में गेय शैली का विकास, 'बीसलदेवरासो' के प्रारम्भ में राग केदार का उल्लेख उन्हें अभिनेय न सही पर 'परफार्मिंग आर्ट' तक तो ले ही आता है।"

इस प्रकार यह रस प्रधान काव्य है। इनमें खड़ी बोली हिन्दी के विकास–गान स्वरूप को स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'पृथ्वीराज रासो' को परसर्गों के विकास की दृष्टि से हिन्दी की प्रथम रचना मानने वाला भी एक वर्ग है। 1350 के कबीर द्वारा लिखे गए ग्रंथों में परसर्गों का विकसित होता हुआ स्वरूप स्पष्टतः देखा जा सकता है। अनेक स्थल ऐसे हैं जहां पर कि विभक्तियां समाप्त हो चुकी हैं परन्तु परसर्ग अभी उभरे नहीं हैं। यह भाषा की वयः संधि का स्थल है। ऐसी स्थितियां अर्थ निष्पादन में कठिनाई जरूर पैदा करती हैं, परन्तु साथ ही ऐसी

स्थितियां भी उत्पन्न करती हैं जिनसे व्यक्ति अन्य सटीक विधानों की ओर मुड़ता है। अर्थ की दुहरी संभावना संदर्भ की प्रासंगिकता बनाए रखती है। इस संदर्भ में 'पृथ्वीराज रासो' का एक उदाहरण देखें –

जमनिकपट उच महिल मुख
जनु सरद अंभ ससि कोर

उपर्युक्त पंक्तियों से कपट तथा अंभ के बाद अधिकरण का स्पष्ट अभाव है तथा ससि के बाद संबंध के परसर्ग अनुपस्थित हैं। किन्तु फिर भी वह स्थितियां स्पष्ट देखी जा सकती हैं जिन्होंने खड़ी बोली जैसी भाषा के लिए जमीन तैयार की और परसर्गों के क्रमिक विकास की आवश्यकता क्यों हुई इसका भी पता चलता है (उपर्युक्त पंक्तियों में उत्पन्न अर्थ संशय को दूर करने को लेकर)।

'बीसल देव रासो' में परसर्गों का स्पष्ट प्रयोग मिलता है, जैसे –

गडरि का नंदन, फंदापाट का, बरस बारह की कणि, जमाई नूं, तिण सूं, परदल को।

इसके अतिरिक्त **पृथ्वीराज रासो** से भी कुछ उदाहरण ऐसे दिए जा सकते हैं जहां परसर्गों का स्पष्ट विधान दिखता है, मसलन –

- कदली का पान
- भूदंड ते सरोअ साधइ
- तिन के प्रसंगा
- रिणु कउ सवद
- रवि के रथ
- अंग संउ चंदनु लावइ

"पृथ्वीराज रासो" की भाषा पर लिखते हुए श्री नामवर सिंह ने कहा है कि "परसर्गों की दृष्टि से रासो अपभ्रंश तथा अवहट्ठ दोनों की अपेक्षा समृद्ध है, कर्तृकरण परसर्ग 'नै' अथवा 'ने' को छोड़ कर प्रायः शेष सभी परसर्ग किसी न किसी रूप में यहां मिलते हैं।"

इस प्रकार यहां आधुनिक आर्य भाषा के रूप में हिन्दी के विकास की भाषिक प्रक्रिया पूर्ण सी होती दिखती है तथा संस्कृत की तुलना में हिन्दी एक सरल विश्लिष्ट भाषा के रूप में

उभरकर सामने आती है। सर्वनाम, क्रियारूप, अव्यय, विशेषण आदि का विधान अपने प्रारम्भिक रूप में यहां दृष्टव्य है। इन ग्रंथों के व्याकरण को इस प्रकार देखा जा सकता है :

1. लघु अक्षर को गुरू बनाने के लिए कहीं स्वर का दीर्घीकरण

   जैसे – कमलनु – कमलानु

   – महिलनु – महिलानु

2. गुरू अक्षर को लघु बनाने के लिए ह्रस्वीकरण

   – अपूर्व – अपुव

   – काया – कया

3. व्यंजनादित्व का सरलीकरण

   – अप्पने – अपने

   – चालुक्क – चालुक

4. उद्वृत्त स्वरों का संकोचन

   – नगर – नअर

   – नयर – नेर।

5. व्यंजनदित्व का सरलीकरण व्यापक रूप से –

   – किज्जइ – कीजइ

   – चडिढउ – चढिउ

6. घोषीकरण –

   – अनेक – अनेग

   – चातक – चातग

   – कौतुक – कोतिग

7. व्यंजन विकार की प्रवृत्ति पायी जाती है –

   – क – ह

   – ज़ – ग़

   – ट – र

   – र – ल

8. संज्ञा शब्दों की कारक रचना में निर्विभक्तिक रूप हैं। तथा परसर्गों में 'ने' को छोड़कर अन्य सभी रूप प्राप्य हैं।

9. सर्वनाम –

उत्तम पुरुष	– हूँ, मैं, मों, मोहि, मो, हम
मध्यम पुरुष	– तुम, तै, तोहि
दूरवर्ती निश्चायक	– वह, उह
निकटवर्ती निश्चायक	– इह, यह
संबंधवाचक	– जो, जिन, सो
प्रश्नवाचक	– को, कौन

10. क्रिया पद ब्रजभाषा की तरह हैं।

11. शब्द–समूह की दृष्टि से अरबी, फ़ारसी, तद्भव, तत्सम रूप मिलते हैं।

- संसार, भारती, बागवानी, कालिका, लहू
- वनिता, पावन, अपार, अवतार, चंद
- सागर, पूजा, रानी, मसि, बिहार, गोरी
- भूत, दिन, कमल, गीत, नाटक्क, दिल्ली
- गोकुलदास, तीतर बटेर, पीलवान, हूह (निराला के यहां भी)

उपर्युक्त शब्द वर्तमान की बोलचाल में भी प्रचलित हैं। इन व्याकरणिक रूपों के अतिरिक्त पृथ्वीराज रासो में 'शुक–शुकी संवाद' के प्रारम्भिक रूप मिलते हैं जो कि प्रचलित मध्यकालीन काव्य रूढ़ि हैं। हिन्दी खड़ी बोली के अन्य काव्य रूप–कथा काव्य, अख्यायिका, चरित काव्य के रूप में यहां प्राप्य हैं। नखशिख वर्णन, षडऋतु वर्णन आदि के भी प्रचुर प्रयोग यहां मिलते हैं। 'बीसलदेवरासो' में हिन्दी का प्रथम '12 मासाछंद' मिलता है।

इस प्रकार रासो साहित्य में प्रारम्भिक खड़ी बोली हिन्दी की प्रारम्भिक स्थिति को स्पष्टतः देखा जा सकता है।

विद्यापति

विद्यापति के यहां जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह संधि काल की भाषा है। अवहट्ठ या 'देसिलबयना' के नाम से जिस भाषा का वर्गीकरण किया गया है वह अपभ्रंश के बाद की तथा खडी बोली हिन्दी के प्रारम्भिक स्पष्ट स्वरूप को छूती हुयी भाषा है। इनकी भाषा

को कुछ लोग मैथिलीयुक्त अपभ्रंश मानते हैं। इनके यहां प्राप्त गद्य में तत्सम् शब्दों का भरपूर प्रयोग है। विद्यापति की रचना 'पदावली' में खड़ी बोली हिन्दी का प्रारम्भिक स्वरूप, प्रवृत्ति, विधा आदि सब कुछ मिलता है एक उदाहरण देखिए –

सरस बसंत समय भल पावलि दक्षिन पवन बह धीरे।
सपनहु रूप बचन इक भाषिय मुख से दूरि करू चीरे।।

इस उदाहरण में तत्सम शब्दों तथा विभक्ति लोप के साफ लक्षण मिलते हैं। इनके यहां काव्य की वह समस्त रूढ़ियां मिलती हैं जो आगे आने वाले काव्य में खूब प्रयुक्त हैं, मसलन शुकसंवाद, ऋषी शाप, दिशालोप, परकाया प्रवेश, आकाशवाणी, विरह वेदना, संदेश वाहक कपोत, अतिप्राकृत दृश्य शकुन। इसके अतिरिक्त 'छंद बहुलता' भी देखने को मिलती है। साथ ही डिंगल–पिंगल भाषा का प्रयोग भाषा मोह के त्याग को दर्शाता है। इन की कृति 'कीर्तिलता' में जो भी 'भृंगभृंगीसंवाद' के रूप में लिखी गयी है, विभक्ति अभाव परसर्गों के विकास के लिए जगह बनाता नजर आता है। स्वरों के लिए अनुनासिक चिह्न का प्रयोग खड़ी बोली की याद दिलाता है। पद्धड़िया बंध का प्रयोग उल्लेखनीय है। इनकी एक और पुस्तक 'कीर्तिपताका' है जहां गद्य में संस्कृत मैथिली क्रिया पदों के साथ तथा पद्य में तद्भव शब्दों का प्रचुर प्रयोग है। इनके यहां विभक्ति अभाव, काव्य रूप, वियोगात्मकता आदि खड़ी बोली के साक्ष्य हैं। इनकी भाषा के निम्नांकित व्याकरणिक विवेचनोपरांत खड़ी बोली की स्थिति और स्पष्ट रूप से दिखती है –

इनकी भाषा में तत्सम शब्दों का प्राचुर्य तथा देशी शब्दों का अभाव है। तत्सम शब्दों का आधिक्य खड़ी बोली की एक प्रमुख विशेषता है। फारसी तथा अरबी के शब्दों का भी प्रयोग है। इनका शब्द प्रयोग निम्नवत देखा जा सकता है।

सुरतान (सुल्तान), पातिसाह (बादशाह), तुरूक्कू (तुर्क), साह, सराब, हुकुम, महल, दरिगाह, बाग, कसीदा, रोज़ा, खराब, सदर, तेजी, करीबी, खोजा, तबेला, गंदा, बंदा, घोर, बेगार, बटुआ, भभकी, उपहास, छेद, हजारी, मंदिर, विनय, तुरंग, भोग, दीप, घोल।

स्वरों को अंत में प्रायः दीर्घ कर देने की प्रवृत्ति पायी जाती है ताकि छंद और तुक की सुविधा रहे। यह प्रवृत्ति खड़ी बोली हिन्दी में भी तुकान्तता के लिए पायी जाती है।

– निषेध के लिए 'न' का प्रयोग खड़ी की प्रवृत्ति है।
– शब्दान्त प्रायः 'अ' में होते हैं। 'आ' शब्दांत भी प्रचलित हैं।

– व्यक्तियों को बुलाने के लिए अरे, अबे, बे आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता थाजो कि आज भी प्रचलित है।

– विशेषण प्रयोग में खड़ी बोली रूप देखें –

गंदा, खराब, तेजी, ताजी, हजारी, एक, पंचं, सान, बीस, कोटि, सु (दिन)

– सर्वनाम के विभिन्न रूप निम्नवत हैं –

प्रश्नवाचक – कोइ, का, को, कवन

संबंध सूचक – जे

पुरुष सूचक – ता, ताहि, के, ओ, सो, मोर

– इसके अतिरिक्त 'संदेश रासक', 'प्राकृत पैंगलम्' आदि ग्रंथों में खड़ी बोली हिन्दी का व्याकरणिक रूप दृष्टव्य है। आकार प्रधानता के रूप प्रयोग यहां भी प्राप्त हैं। 'प्राकृत पैंगलम' का एक उदाहरण लें –

– 'हत्थी जूहा सज्जा हूआ।

– पओहर मुहट्ठिआ तहंअ हत्थ एक्को दिआ।

– पुणेवितहं संठिआ तहंअ गंधसज्जा किआ।

– हेमचन्द्र के दोहा कोश में भी खड़ी बोली हिन्दी के प्रमाण हैं –

भल्ला हुआ जो मारिआ बहिणि म्हारा कंतु।

लज्जेजुं न वयंसियहु जह भग्गा घर संतु।।

अमीर खुसरू

खुसरू के यहां खड़ी बोली हिन्दी का एक नया स्वरूप मिलता है। नाथों, सिद्धों तथा अन्य अपभ्रंश, अवहट्ठ साहित्य में जो हिन्दी बेनामी संपत्ति की तरह विद्यमान थी खुसरू के लोक साहित्य में अपनी जगह बनाती नजर आती है। इस भाषाई स्थिति पर स्वयं रामचन्द्र शुक्ल तक आश्चर्यचकित थे। उन्होंने कहा कि – "क्या उस समय तक घिसकर भाषा इतनी चिकनी हो गयी थी जितनी अमीरखुसरू की पहेलियों में मिलती है ?" यह आर्ष वाक्य हिन्दी के खड़ी बोली स्वरूप को काफी हद तक व्याख्यायित करता है। इनके यहां हिन्दवी स्वरूप की खड़ी बोली मिलती है जिसकी स्वीकारोक्ति स्वयं खुसरू ने की है।

"तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब"

खुसरू का हिन्दी कृतित्व मध्यमकालीन हिन्दी की विचारणीय सामग्री है तथा यह भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण किन्तु पाठ की प्रामाणिकता की दृष्टि से अत्यन्त संदिग्ध भी है। खुसरू ने प्रामाणिक काव्य रचना फारसी में तथा लोकशैली की रचनाएं नवोदित हिन्दवी में की। इनके यहां तीन समानान्तर भाषाएं हैं राजदरबारी रंचनाएं फारसी में, गीत, कब्वाली ब्रज में, लोकरंजन के दोहे, मुकरियां, पहेली–दिल्ली मेरठ की चलती खड़ी बोली में। खुसरू की भाषा की तारीफ करते हुए श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा कि –

"खुसरू की भाषा में साहित्य संगीत की जरूरतें प्रायः घुलमिल गयी हैं जो कि धार्मिक उत्तेजना को शमित करके वासनाओं को परिष्कृत करती हैं।"

खुसरू ने भाषा के जिस सम्मिश्रित रूप का विकास किया वह आज भी खड़ी बोली का प्राण है जिसमें प्राचीन सिद्ध–नाथी रहस्यवाद भी मिलता है। एक उदाहरण देखिए –

– गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस
चल खुसरू घर आपने रैन भयी चहुँदेश।

या

– खुसरू दरिया प्रेम का उल्टी वा की धार
जो उबरा वो डूब गया जो डूबा वो पार।

खुसरू की बोली में फारसी के साथ खड़ी बोली का मिला–जुला रूप देखिए –

– जे हाल मिसकी मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाए बतियाँ।
कि ताबे हिज्राँ न दारम ऐ जाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
शबाने हिज्राँ दराज चूं जुल्फ व रोजे वरालत चूँ उम्र को तह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त खुसरू की पहेलियों की घिसकर चिकनी हुई भाषा का नमूना भी देख लें –

– मोसे मोराशृंगार करावे
आगे बैठ कर मान बढ़ावे
व से चिक्कन नही कछु दीसा
का सखिसाजन
नही सखि सीसा

– व्यक्तियों को बुलाने के लिए अरे, अबे, बे आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता थाजो कि आज भी प्रचलित है।

– विशेषण प्रयोग में खड़ी बोली रूप देखें –

गंदा, खराब, तेजी, ताजी, हजारी, एक, पंच, सान, बीस, कोटि, सु (दिन)

– सर्वनाम के विभिन्न रूप निम्नवत हैं –

प्रश्नवाचक – कोइ, का, को, कवन

संबंध सूचक – जे

पुरुष सूचक – ता, ताहि, के, ओ, सो, मोर

– इसके अतिरिक्त 'संदेश रासक', 'प्राकृत पैंगलम्' आदि ग्रंथों में खड़ी बोली हिन्दी का व्याकरणिक रूप दृष्टव्य है। आकार प्रधानता के रूप प्रयोग यहां भी प्राप्त हैं। 'प्राकृत पैंगलम' का एक उदाहरण लें –

– 'हत्थी जूहा सज्जा हूआ।

– पओहर मुहट्ठिआ तहअ हत्थ एक्को दिआ।

– पुणेवितहं संठिआ तहंअ गंधसज्जा किआ।

– हेमचन्द्र के दोहा कोश में भी खड़ी बोली हिन्दी के प्रमाण हैं –

भल्ला हुआ जो मारिआ बहिणि म्हारा कंतु।

लज्जेजुं न वयंसियहु जह भग्गा घर संतु।।

अमीर खुसरू

खुसरू के यहां खड़ी बोली हिन्दी का एक नया स्वरूप मिलता है। नाथों, सिद्धों तथा अन्य अपभ्रंश, अवहट्ठ साहित्य में जो हिन्दी बेनामी संपत्ति की तरह विद्यमान थी खुसरू के लोक साहित्य में अपनी जगह बनाती नजर आती है। इस भाषाई स्थिति पर स्वयं रामचन्द्र शुक्ल तक आश्चर्यचकित थे। उन्होंने कहा कि – "क्या उस समय तक घिसकर भाषा इतनी चिकनी हो गयी थी जितनी अमीरखुसरू की पहेलियों में मिलती है ?" यह आर्ष वाक्य हिन्दी के खड़ी बोली स्वरूप को काफी हद तक व्याख्यायित करता है। इनके यहां हिन्दवी स्वरूप की खड़ी बोली मिलती है जिसकी स्वीकारोक्ति स्वयं खुसरू ने की है।

"तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब"

खुसरू का हिन्दी कृतित्व मध्यमकालीन हिन्दी की विचारणीय सामग्री है तथा यह भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण किन्तु पाठ की प्रामाणिकता की दृष्टि से अत्यन्त संदिग्ध भी है। खुसरू ने प्रामाणिक काव्य रचना फारसी में तथा लोकशैली की रचनाएं नवोदित हिन्दवी में की। इनके यहां तीन समानान्तर भाषाएं हैं राजदरबारी रचनाएं फारसी में, गीत, कब्वाली ब्रज में, लोकरंजन के दोहे, मुकरियां, पहेली–दिल्ली मेरठ की चलती खड़ी बोली में। खुसरू की भाषा की तारीफ करते हुए श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा कि –

"खुसरू की भाषा में साहित्य संगीत की जरूरतें प्रायः घुलमिल गयी हैं जो कि धार्मिक उत्तेजना को शमित करके वासनाओं को परिष्कृत करती हैं।"

खुसरू ने भाषा के जिस सम्मिश्रित रूप का विकास किया वह आज भी खड़ी बोली का प्राण है जिसमें प्राचीन सिद्ध–नाथी रहस्यवाद भी मिलता है। एक उदाहरण देखिए –

– गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस
चल खुसरू घर आपने रैन भयी चहुँदेश।

या

– खुसरू दरिया प्रेम का उल्टी वा की धार
जो उबरा वो डूब गया जो डूबा वो पार।

खुसरू की बोली में फारसी के साथ खड़ी बोली का मिला–जुला रूप देखिए –

– जे हाल मिसकी मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाए बतियाँ।
कि ताबे हिज्राँ न दारम ऐ जाँ न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
शबाने हिज्राँ दराज चूं जुल्फ व रोजे वसलत चूँ उम्र को तह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त खुसरू की पहेलियों की घिसकर चिकनी हुई भाषा का नमूना भी देख लें –

– मोसे मोराशृंगार करावे
आगे बैठ कर मान बढ़ावे
व से चिक्कन नही कछु दीसा
का राखिसाजन
नही संखि सीसा

(या)

एक नार दो को ले बैठी, टेढ़ी होके बिल में पैठी
जिसके बैठे उसे सुहाय, खुसरू उसके बल–बल जाय (पायजामा)

(या)

एक नार ने अचरज किया। साँप मार पिंजड़े में दिया
जों जों साँप ताल को खाए। सूखे ताल साँप मर जाए।(दीपक)

'खलिकबारी' नामक खुसरू की कृति में व्यवहृत खड़ी बोली के कुछ उदाहरण देखिए–

1. दरिया बहर समुन्दर कहए जाकी नाहीं थाह।
2. चाँद बटा राज का ताजी जबान।
3. है जनूब दखिन का ओर। हम शुमाल उत्तर का छोर।

इन दृष्टांतों को देखकर एक बार को तो लगता है कि खड़ी बोली मानो स्थापित हो गयी, लेकिन ऐसा नहीं है। यह भाषा मध्यकालीन मिली–जुली संस्कृति का अच्छा प्रतिनिधित्व करती है, पर भाषाशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसे अभी आगे जाना था। इनकी भाषा का भाषा शास्त्रीय पक्ष निम्नवत है –

1. 'ऋ' तथा 'ष' को छोड़ नव्य भारतीय आर्य भाषा की सभी ध्वनियां प्रयुक्त। 'ऋ' की जगह 'रि' तथा 'ष' की जगह 'स' तथा 'ख' का प्रयोग हुआ है। 'ड़' तथा 'ढ़' ध्वनियों का प्रयोग स्पष्टता के साथ हुआ है। प्रायः शब्द स्वरान्त है। दित्व व्यंजनों का प्रयोग आज के जैसा ही होता था – कुत्ता, ठट्ट, पक्की, अम्मा।

2. रूपरचना की दृष्टि से खड़ी बोली की ही तरह दो लिंग तथा दो वचन ही मिलते हैं। अधिकतर संज्ञाओं का रूप दोनों वचनों में एक ही है। लेकिन उनके तिर्यक रूपों में बहुवचन का निर्देश स्पष्ट रूप से होता है। संज्ञाओं के बहुवचन रूप बनाने के लिए सामान्यतः 'ए', 'एं', 'आं' प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है। 'ए' पुल्लिंग के लिए तथा 'एं' एवं 'आं' स्त्रीलिंग के लिए प्रयुक्त होते थे। सामान्यतः 'अ', 'आ', 'ऊ' और 'ओ' से अन्त होने वाली संज्ञाएँ पुल्लिंग हैं और 'अ' एवं 'ई' से अंत होने वाली स्त्रीलिंग हैं। पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ई' तथा कहीं–कहीं 'नी' प्रत्यय जोड़ा गया है (गढ़ा–गढ़ी, ढ़ोलक–ढ़ोलकी)।

3. कारकीय प्रयोग दो प्रकार के हैं। इनमें एक तो कारक चिन्हों से युक्त हैं तथा दूसरे कारक चिन्हों से रहित जो निम्नवत हैं।

कारक चिन्ह युक्त	कारक चिन्ह रहित
कर्ता कारक – गुनी ने, नार ने	नार उत्तरी, लड़के रखे हैं
कर्म कारक – पी को, हाथी को	छांव देख, लकड़ी खाये
करण कारक – पांव से, सींगो से	आंखो दीठा, छाती लगाये
संप्रदान कारक – मन को, मो को	घर धावे
अपादान कारक – मुंह से, मोरी मे से	तरवरी उतरी
संबंध कारक – राजा की, जल का	खूंटी ऊपर, श्याम बरन नारी
अधिकरण कारक – हाथ में, सेज पर	घर आवे, आंखो आया

4. सर्वनामों के रूप ब्रजभाषा से अधिक प्रभावित हैं, परन्तु खड़ी बोली के सर्वनाम भी मिलते हैं।

व्यक्तिवाचक

प्रथम पुरुष – मैं, मैने, मेरा, मेरी, मेरे, मुझको, हमसे, अपनी

मध्यम पुरुष – तू, तेरे, तोहिं

अन्य पुरुष – वह, उसके, उसको, वा

संबंध वाचक – जो, जिसके, जाके, जासे

संकेत वाचक – इसका, उससे

अनिश्चयवाचक – सबको, कौन, कोय, कोई

5. विशेषण – छोटा, गोल–मटोल, गोरी काली, अनोखी, टेढ़ा, सलेना फीका, रंगीली, हरा, खरा, खोटा, फीका

क्रिया विशेषण – बहुत, थोरी, आगे, पीछे, अति, कैसा

6. खुसरू के यहां प्रयुक्त रूपों (क्रया) में काल, भाव, वचन, लिंग, पुरुष का निर्देश मिलता है। कृदन्त, प्रेरणार्थ, संज्ञार्थ आदि क्रिया रूप भी पृथक–पृथक हैं। **भूतकाल** रूपों में क्रिया के लिए पुरुष का कोई निर्देश नहीं है। आया, दिखाया, भाया, छोड़ा, खड़ी, देखा, खया, उड़ाई, दिया, गई, आये आदि प्रयोगों से भूतकाल रूपों का पता चलता है। भविष्यकाल – गा, गी, गे। खुसरू की हिन्दी में **संभावनार्थ** रूप भी मिलते हैं जो कि कर्ता के वचन तथा पुरुष से प्रभावित होते हैं, जैसे – कहूं, सुनूं, दौडूं, मारूं, उपजे, रहे। **आज्ञार्थक क्रिया रूप** निम्नलिखित हैं – बूझ, देख, पी, सुन, छोड़ो, पूछो, देखो।

7. खड़ी बोली की तरह खुसरू की भाषा में भी संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग अधिक संख्या में हुआ है।

इस प्रकार खुसरू के यहां जो बोलचाल की भाषा मिलती है उसमें खड़ी बोली हिन्दी का स्वरूप काफी साफ दिखता है। यहां पर आकर हिन्दी एक काल की सीमा को पार करके आगे निकलने लगती है।

संत साहित्य

14वीं शती के मध्य से लेकर 17वीं शती के मध्य तक जिस साहित्यिक धारा का विकास मध्य देशतथा अन्य क्षेत्रों में पाया गया उसको भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। इस काल को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निर्गुण तथा सगुण के प्रथग दो भेदों में विभाजित किया गया है।

निर्गुण–
- ज्ञानाश्रयी शाखा
- प्रेमाश्रयी शाखा

सगुण–
- रामभक्ति (रामाश्रयी) शाखा
- कृष्णाश्रयी शाखा

संतकाव्य उपर्युक्त वर्गीकरण की ज्ञानाश्रयी शाखा से ही संबद्ध है। संतमार्गी कवियों का साहित्य उपनिषदिक विचारधारा से काफी प्रभावित है। इसमें प्रतिपादित ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, निर्गुण आदि के विचार इनके यहां भी मिलते हैं। ज्ञान तथा निराकार रूप की उपासना इनका मूल तत्व है। वे मानते हैं कि जीव विशुद्ध ब्रह्म तत्व है तथा ब्रह्म से जीव का एकाकार ही मुक्ति है। इनके यहां समाज से पलायन करने या उससे अलग होने का समर्थन नहीं किया गया है वरन् समाज में रहकर उसकी कुरीतियों को मिटाते हुए आत्मरूप पाने की वकालत की गयी है।

नाथ पंथ, मुस्लिम एकेश्वरवाद बौद्धों के दर्शन, वज्रयानियों की तान्त्रिक साधना, सिद्धों की गूढ़ोक्तियाँ, उलटबाँसियां, योग आदि के तत्व इनके यहां मिलते हैं। इनके यहां व्यापक

प्रभाव है। साथ ही मूर्ति पूजा तथा अन्य कर्म काण्ड का निषेध करते हैं। रामानन्द, कबीर, रैदास, नानक, जम्भनाथ, हरिदास निरंजनी, सींगा, लालदास, दादूदयाल, मलूकदास, बाबालाल, रज्जब, पीपा, धन्ना, सेन, अंगद, अमरदास आदि प्रमुख संत हैं।

संत कवि सामान्यतः समाज के निम्न वर्ग से थे। उन्हें कभी सामान्य नागरिकों का सा दर्जा समाज ने नहीं दिया। वह साधन विहीन समाज में उत्पन्न हुए तथा साहित्य, भाषा, व्याकरण आदि के अनुशीलन से वंचित रहे। अतएव उनकी काव्य भाषा में परिष्कार, परिमार्जन, परिनिष्ठता, साहित्यिकता का वैसा प्राबल्य नही है जैसा कि अन्य धाराओं में मिलता हैं इनकी भाषा आदर्श सहजता तथा सरलता की ओर उन्मुख है जैसा कि इनकी कविता से भी स्पष्ट दिखता है।

सकल कवित का अर्थ है, सकल बात की बात
दरिया सुमिरन राम का, कर लीजे दिन रात।।

संतकवियों का लक्ष्य काव्य रचना नहीं था वह तो जनहित में सत्य का निरूपण तथा विवेचन एवं उसका प्रसार कर रहे थे। भावों के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों की योजना तो की है पर साध्य काव्य सौष्ठव कभी नहीं रहा है। इनकी कविता में प्राप्त भाषा का रूप स्थिर नहीं है। इनके यहां भाषा निरन्तर निर्माण की अवस्था में मिलती है जिसमें विभिन्न प्रदेशों की शब्दावली का सम्मिश्रण है। लेकिन भाषा का जो सहज, अकृत्रिम, सरल रूप यहां मिलता है वह अन्यत्र नहीं है। इनकी साखियों तथा सबद व पदों में सशक्त अभिव्यंजना, गंभीर रहस्यात्मक उक्तियां, प्रभावशाली प्रतीक भाषा का स्वाभाविक प्रवाह देखने को मिलता है। इनका काव्य जन काव्य है तथा इनकी भाषा जन भाषा। प्राचीन समय से चला आ रहा खड़ी बोली का कथ्य यहां परिपूर्ण परिपक्व रूप में मिलता है। खड़ी बोली के खड़ेपन को तो मानो इनकी ही अक्खड़ता ने बनाया है। तमाम साधनात्मक शब्द अपने पूरे समाज बोध के साथ खड़ी बोली में आज भी प्रचलित हैं। वाणी या भाषा के डिक्टेटर कहे जाने वाले कबीर के यहां भाषा जैसी ताकतवर चीज लौण्डी की तरह उनके आगे पीछे घूमती नजर आती है, 'पंचमेल खिचड़ी' का रूप अद्भुत है 'इस पूरे साहित्य में भाषा एक माध्यम मात्र है। खड़ी बोली का अहं, आत्म विश्वास तथा किसी भी भाव को व्यक्त कर पाने का सामर्थ्य यहीं से बनता है।

प्रत्येक कवि के साथ भाषा एक नए तेवर में है। खड़ी बोली के समस्त काव्य रूप यहां पर मिलते हैं। कबीर की भाषा का एक नमूना इस तरह लिया जा सकता है :

मोको कहाँ ढूंढे बंदे, मै तो तेरे पास में
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में

× × ×

बागों ना जा रे ना जा, तेरी काया में गुलजार
सहस–कँवल पर बैठके तू देखे रूप अपार

× × ×

मोरे साहब की ऊँची अटरिया
चढ़त में जियरा काँपे

× ×

देख वोजूद में अजब बिसराम है
होय मौजूद तो सही पावे

× ×

पाँच की प्यास देख पूरी भई

× ×

दया जगदेव की सहज आई

इन उपर्युक्त उदाहरणों में खड़ी बोली व्याकरण का रूप देखिए :

संज्ञा – देवल, मस्जिद, बागों, कँवल, साहब, जगदेव
सर्वनाम – मो, मै, तेरे, तेरी, मोरे
परसर्ग – कों, में, पर
संख्या विशेषण – पाँच, सहस
निषेधात्मक रूप – ना
सहायक क्रिया – हैं
विदेशी – गुलजार, बाग, साहब, बोजूद, काबे
स्थानीय रूप – देवल

इसके अतिरिक्त अन्य और न जाने कितने शब्द कितने रूप ज्यों के त्यों इनके यहाँ उपस्थित हैं। खड़ी बोली हिन्दी का एक विशुद्ध रूप नामदेव के यहाँ देखिए :

पाण्डे तुम्हारी गायत्री, लोधे का खेत खाती थी।
उठाए टाँग टेकरी लाँघत–लाँघत जाती थी।

- **रैदास** के यहाँ भाषा का रूप देखिए –

नरहरि चंचल है मति मेरी। कैसे भगति करूं मैं तेरी

× × ×

जब हम होते तब तू नाहीं

× ×

तेरे देव कमलापति सरन आया

- **नानक** के यहाँ भाषा का रूप देखिए –

रे मन मेरे भरमु न कीजै

× × ×

हीरे जैसा जनमु है, कउड़ी बदले जाइ

× × ×

अलग अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।

- संत **हरिदास** निरंजनी के यहाँ भाषा देखिए –

अब मैं हरि बिन और न जांचूं

× × ×

हरि मेरा करता हूं हरिकीया मै मेरा मन हरि कूँ दीया।

- **संत रज्जब** के यहाँ की भाषा का नमूना –

– यूँ परि दोष न दीजिए
– ज्यूँ जलधार असंख्य अवनि
– ऐसी विधि या मन की क्षुधा है
– संतो मगन भया मन मेरा
– एक शब्द मायामई, एक ब्रह्म उनहार

- **दादूदयाल** के यहाँ भाषा का रूप –

क्यौं बिसरै मेरा पीव पियारा, जीव की जीवति प्राण हमारा

× × ×

प्रेमपियाला भरि–भरि दीजै दादू दास तुम्हारा।

इसके अलावा इनके यहाँ क्यों, तेरे, कों, क्यूँ, तू, सूरज भी सेवा करे, हमारा, कल्पना, आदि शब्दों का प्रयोग खड़ी बोली के साफ साक्ष्य देता है। इन सब उदाहरणों से भाषा का रूप एकदम स्पष्ट हो जाता है। इसकाल की कुछ प्रमुख साझी विशेषताएँ निम्नवत हैं :

1. खड़ी बोली हिन्दी में प्रयुक्त गृहीत व्यंजन इसकाल में अस्तित्व में थे –
   क़, ख़, ग़, ज़, फ़
2. खड़ी बोली की ही तरह शब्दांत का 'अ' मूल व्यंजन के बाद आने पर लुप्त हो गया अर्थात् 'राम' का उच्चारण 'राम्' होने लगा। किन्तु इसी सरीखे शब्दों में जहाँ 'अ' के पूर्व संयुक्त व्यंजन था वह 'अ' हों बना रहा तथा कुछ स्थितियों में अक्षरान्त 'अ' का भी लोप होने लगा (जपता–जप्ता)।
3. 'ह' के पूर्व 'अ' का उच्चारण 'ए' की तरह होने लगा, जैसे – अहमद की जगह एहमद।
4. अपभ्रंश के रूप हिन्दी से निकल गए तथा जो बचे उन्हें आत्मसात कर लिया गया।
5. परसर्ग तथा सहायक क्रिया के प्रयोगों ने भाषा को वियोगात्मक बना दिया।
6. हिन्दी वाक्य रचना में फारसी प्रभाव इसी काल की देन है।
7. तत्सम् शब्दों का प्रभाव बढ़ा तथा पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रान्सिसी शब्दों का भी प्रयोग शुरू हो गया।

इसके अतिरिक्त इस समय में गद्य का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया था – **ललित गद्य**– 'वात' शीर्षक के तहत कथा कहानी के रूप में तथा अन्योक्ति कथा के रूप में। **अललित गद्य** – धर्म, दर्श, पौराणिक भूगोल, शकुन आदि विषयों पर उपलब्ध होता है। **अमौलिक गद्य**– के रूप में – टीका, टिप्पणी, तर्जुमा, तफ़सीर आदि। इसके अतिरिक्त **तुकमय गद्य** भी लिखा गया।

इस प्रकार खड़ी बोली का जो रूप खुसरू के यहाँ मिलता है वह इस सधुक्कड़ी जन भाषा में विकसित होता चला जाता है और ब्रज तथा अवधी के स्वरूप से रगड़–घिस करता हुआ जगह–जगह फैल रहा है जिससे भाषा प्रयोग में वृद्धि हो रही है और साथ ही खड़ी बोली व्यापक भाव बोध से संस्कारित भी हो रही है। शब्द भण्डार वृद्धि की दृष्टि से यह

अद्‌भुत उन्नति का काल है। भाषा अपनी सरहदों से केन्द्र की ओर बढ़ रही है। सहजगम्य बोली अपने कुछ शब्दों विन्यासों को लेकर पूर्व भाषाओं के लिए अजनबी लगती है। ज्यों, त्यों भी आदि का इस्तेमाल कर वाक्यों का निर्माण ऐसी ही नवीनता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

रहीम

अब्दुल रहीम खान खाना अकबर के दरबारी थे तथा प्रसिद्ध सेनापति भी। इनका स्थान हिन्दी में नीतिपरक दोहों को लिखने वाले के रूप में है। भाषा के स्तर पर ये अत्यन्त प्रयोगधर्मी रहे। संस्कृत, ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली में इन्होंने लिखा। इनकी तीन प्रमुख रचनाएँ क्रमशः तीन भाषाओं में मिलती हैं। दोहे ब्रज भाषा में, बरवै अवधी में, तथा मदनाष्टक खड़ी बोली में लिखे गए हैं। शैली के स्तर पर दोहा लिखते हुए भाषा का सीधा उपकरणात्मक प्रयोग होता है, सर्जनात्मक कम। इस विधा की सफलता कवि के पर्यावेक्षण को नपेतुले शब्दों में समेट लेने में है। परिणामतः यहाँ भाषा का अत्यन्त दक्ष प्रयोग अपेक्षित है तथा परिस्थितियों की अत्यन्त सूक्ष्म पकड़ भी आवश्यक है। इस प्रकार की सभी विशेषताएं रहीम के यहाँ प्राप्त होती हैं। खड़ी बोली की प्रमुख प्रवृत्तियों में से तत्सम् शब्द प्रयोग, परसर्ग विधान तथा क्रिया रूप प्रयोग इनके यहाँ उपलब्ध है। इनके काव्य में खड़ी बोली का एक उदाहरण देखिए –

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था
चपल चखन वाला चांदनी में खड़ा था
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला।।

उपर्युक्त पंक्तियों में परसर्ग 'में', भूतकालिक क्रिया रूप 'था', सर्वनाम 'रूप' मेरा, आदि खड़ी बोली के प्रयोग के प्रमाण हैं।

तत्सम् रूप प्रयोग को लेकर निम्न पंक्तियाँ देखें –

मनसिज माली की उपज, कही रहीम नहिं जाय
फल श्यामा केउर लगे, फूल श्याम उर आय

अमीर खुसरू की तरह इनके यहाँ भी मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है :

शरदनिशि निशीथे चाँद की रोशनाई
सघन वन निकुंजे कान्ह बंशी बजाई
रतिपतिसुत निद्रा साइयाँ छोड़ भागी
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन भागी।

रहीम के यहाँ बोली के व्यवहार वाले लगभग सारे रूप मिल रहे थे। **शब्द भण्डार** के स्तर पर यह स्थिति और स्पष्ट होकर आती है। कतिपय प्रयुक्त शब्द देखिए :

खांसी, मन, अच्युत, नीरस, जग, वचन, दिन,
देर, मूल, आदर, कम, पेड़, हथियार, पंछी,
यारों, मुख, बूध, प्रभु, करमहीन, तन, नीच,
सग, सागर, खरच, उद्यम, खून, नाव, उधार,

इस शब्द संपदा के अतिरिक्त उनके यहाँ पूरक शब्दों का प्रयोग अत्यन्त आधुनिक है, जैसे – उचित–अनुचित, बाँझ की फाँस, अरज–गरज, फल–फूल, घटै–बढ़ै, जुदे–जुदे, दाबे न दबै।

इस तरह के प्रयोग शायद ही काव्य में पहले हुए हों, पर हिन्दी खड़ी बोली में इनके विकसित रूपों की भरमार है। एक अनोखी चीज भाषा के विन्यास के स्तर पर देखने को मिलती है। रहीम का एक दोहा देखिए –

बेर केर कैसे निभे एक दूजे के संग
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग

एक अंग्रेजी की कविता देखिए –

"Mountain and the Squreel has a quarrel
former called the latter lettle prig"

अब इन दोनों कविताओं के शिल्प पर तुलनात्मक रूप से विचार करते हुए देखिए कितना आधुनिक प्रयोग है, कि बेर तथा केर (केला) को 'वे' तथा 'उनके' से चिह्नित किया गया है। ठीक उसी तरह 18वीं शती के अंत की एक अंग्रेजी कविता में Former तथा Latter से क्रमशः पहाड़ एवं गिलहरी को दर्शाया गया है। यह भाषा की अत्यन्त उन्नत प्रयोग स्थिति को दर्शाता है कि प्रसंग संदर्भ में वस्तु स्थितियों को उनके नाम की जगह संकेतों से दर्शाया जा रहा है। इस प्रवृत्ति का – – – हिन्दी गद्य में खूब प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त अपने

दोहों में वह – – – तथा 'बिचारी दीनता' का प्रयोग दिखाते हैं। शब्द अपनी विशेषता – – – कर रहे हैं यह अद्भुत है।

दक्खिनी हिन्दी

खड़ी बोली हिन्दी का प्रारम्भिक स्वरूप जो कि 'हिन्दुस्तानी' या 'हिन्दवी' या अन्य उपमानों से ज्ञेय है जब उत्तर के तमाम भाषाई संस्कार तथा प्रवृत्तियों को लेकर दक्षिण जाता है तो वहाँ के तत्वों तथा भाषाई व्यवहारों से मिलकर एक नया भाषा व्यवहार विकसित होता है और अनन्तर की सैनिक कार्यवाइयों एवं प्रशासनिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन के चलते उत्तर व दक्षिण का संसर्ग जितना बढ़ता जाता है यह व्यवहार उतना ही रूढ़ होता जाता है तथा एक भाषा का रूप लेता है। यही साझाभाषिक व्यवहार 'दक्खिनी' के नाम से जाना जाता है। इसमें दिल्ली के इर्द गिर्द बोली जा रही बोलियों के शब्द तथा शैलियों के साथ दक्षिण के स्थानीय शब्द तथा शैली का अद्भुत मिश्रण मिलता है। इस भाषा में रवानी पैदा करता है। इस भाषा को व्यवहृत करने वाले उन सैनिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों का अपना भाषा संस्कार जो कि तमाम मध्य एशियाई जातियों से थे और दिल्ली सल्तनत के मुलाजिम थे। इस तरह दक्खिनी कई भाषा व्यवहारों का एक खूबसूरत 'फ्यूजन' है। हुआ यूँ कि दिल्ली में सल्तनत की स्थापना के बाद विंध्य की अलंघ्य दिवारों को पार कर मुस्लिम शासकों ने दक्षिण तथा पश्चिमी भारत में कई सैनिक अभियान किए और इस तरह से गुजरात से लेकर नीचे केरला तक का जो समुद्री सीमा से लगा प्रदेश तथा उसका जो पृष्ठ भाग है वह मध्यदेश से प्रशासनिक रूप से जुड़ गया। 1326 ई0 में जब मो. तुगलक ने दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाया तो एक बहुत बड़ा जन स्थानांतरण हुआ या कम से कम भारी मात्रा में शासकीय कर्मचारी तो वहाँ गए ही और वहाँ रूके भी। इसी के साथ भाषाई 'फ्यूजन' की यह प्रक्रिया भी शुरू हुयी। एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयास इस भाषा के निर्माण के सिलसिले में सूफी संतों द्वारा हुआ जो दक्षिण में अपने धर्म प्रचार के सिलसिले में गए तथा वहाँ बसे भी। इस भाषा के स्वरूप को लेकर कतिपय विद्वानों के मत निम्नवत हैं।

- "हिन्दू मुसलमानों की मिश्रित भाषा को दक्षिण में प्रयुक्त होने के कारण दक्खिनी कहा जो कि हिन्दी का एक अन्य उपनाम है।" – गार्सा द तासी

- "हिन्दुस्तानी का ही एक रूप जिसका प्रयोग दक्षिण में रहने वाले मुसलमान करते हैं" – जार्ज ग्रियर्सन

- "उत्तरी भारत के मुसलमान दक्षिण में अपनी बोलियों को भी साथ लेते गए तथा अपनी देशज भाषा को ही अपनाए रक्खा। इसमें साहित्यिक रचनाएं होने लगीं तथा दक्षिण की एक मात्र साहित्यिक भाषा होने के कारण यह दक्खिनी कहलायी।" – डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या

- "उत्तरी हिन्दी या खड़ी बोली का ही एक रूप है।" – डा० रामविलास शर्मा

इसका बोली क्षेत्र नर्मदा के दक्षिण में सतपुड़ा की श्रृंखलाओं तथा उनसे संबंधित पहाड़ियों से घिरे क्षेत्र के साथ–साथ मद्रास, केरल, आन्ध्र, महाराष्ट्र के कुछ हिस्से को लेकर निर्मित होता है। मद्रास, केरल, मैसूर की दक्किनी अपने मूल स्वरूप से कुछ भिन्न है। इसकी लिपि फारसी रही, परन्तु भाषा पर फारसी का प्रभाव उतना ज्यादा नहीं दिखता है। रेख्ता, देहलवी, हिन्दुस्तानी, दक्खिनी तथा गुजरी, में इसके प्रारम्भिक रूप को खोजा जाता है। इस भाषा की तमाम विशेषताओं में से एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें काव्य से पूर्व गद्य रचा गया। दकन के गोलकुण्डा की यह मुख्य साहित्यिक भाषा बनी। इसके प्रथम ग्रंथकार–ख्वाजा बंदानवाज गेसूदराज हैं तथा प्रथम ग्रंथ इन्हीं के द्वारा लिखित 'मिराजुल आशिकनी' है। दक्खिनी का प्राचीनतम कवि 'निजामी' को माना जाता है। अब्दुल वजही, गुलाम बली, बजेरी आदि इसके अन्य कवि हैं। इसके विकास को निम्नवत देखा जा सकता है।

अपने प्रारम्भिक स्वरूप तथा नाम को लेकर इसे भी खड़ी बोली हिन्दी की ही तरह काफी जद्दोजेहद करनी पड़ी। शाह असरफ बयानवी, अमीर खुसरू, मुहम्मद औफी आदि ने इसे 'हिन्दवी' के नाम से ही बुलाया है।

नज्म लिखी सब मौजू आन
यो सब हिन्दवी कर आसान

हजरत बंदा नवाज गेसूदराज तथा अब्दुल ने भी इसे 'हिन्दवी' ही कहा :

जबाँ हिन्दुई मुझसो हूँ देहलवी
न जानूं अरब होकर अजम मसनवी

बुरहानुद्दीन जानम ने तो इसे हिन्दी ही कहा है –

ये सब बोलूं हिन्दी बोल
पन तू अन भौ सेती खोल

जुनूनी मौलाना का कहना है कि –

मैं इसको दर हिन्दी जुबां इस वास्ते कहने लगा
जो फारसी समजे नहीं समजे इसे खुश होकर

इस भाषा के लिए 'दक्खिनी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम महमूद शाह बहमनी के समकालीन शायर 'कुरैदीबीदरी' ने किया था। अपनी रचना भोगबल के अंत में वह कहते हैं कि –

सो इस शाह दौर में बीदर मुकाम
यो शायर किया नज्म दक्खिनी तमाम

दक्किनी भाषा की इस प्रारम्भिक स्थिति के बाद हम इसके स्वरूप को लेकर कुछ बातचीत करते हैं। भाषा की सहजताको लेकर सतनती नामक शायर का एक शेर अर्ज है –

जिसे फारसी का न कुछ ग्यान है
सो दखिनी जबां उसको आसान है
सो इसमें सहन्सकृत का है मुरांद
किया इसते आसानगी का सुवाद

भाषा के संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक सक्षमता को लेकर ख्वाजा गेसूदराज का यह कथन काफी महत्वपूर्ण है:

"हम लोग फारसी की जगह हिन्दवी इसलिए अपनाते हैं क्योंकि यह ज्यादा नरम तथा रसीली है तथा इसमें बात खुल कर की जा सकती है। इसमें लय भी इसी की तरह रसीली होती है जिससे कि बड़ा रोना आता है, सूफी को यह चीज बहुत पसन्द आती है।"

इस भाषा की प्रारम्भिक स्थिति दकन के संतों ज्ञानेश्वर, नामदेव, जान बाई, गोंदाबाई, एकनाथ आदि विद्वानों के काव्य में भी पायी जाती है। नामदेव की भाषा में – गाफ़िल, बेख़बर, पछतावेगा, दगापावेगा, अतसान, आदि शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इस भाषा को पश्चिमी हिन्दी के आकार बहुला–समूह में रखा गया है। आरम्भिक

दक्खिनी में धर्मविषयक तथा नीति–विषयक शब्दावली का ही प्रयोग ज्यादा मिलता है। यहाँ भी प्रारम्भिक खड़ी बोली की तरह भक्ति तथा रीति भावना वाली कविताएं ज्यादा हुई हैं। कुतुबमुश्तरी, पूत्तन, चन्द्रबदन, महियार आदि प्रारम्भिक दक्खिनी के प्रमुख कवि हैं। इस समय मराठी, तेलगू, गुजराती आदि भाषाओं के शब्द इसमें खूब मिलते हैं। मराठी के नको, च आदि शब्द प्रारम्भिक दक्खिनी की पहचान हैं। किन्तु इसी समय लिख रहे गसूदराज की भाषा अपने ही समकालीन बुरहानुद्दीन से काफी अलग है। इसके बाद की भाषा का स्वरूप इब्राहिम आदिल शाह की रचना 'नौरस' में देखने को मिलता है। यहाँ ब्रज तथा संस्कृत का भाषा पर काफी प्रभाव है। गवासी की 'मैना सतवंती, तथा इब्नेनिशाती की 'फूलबन' इसी शैली की रचनाएँ हैं।

दक्खिनी भाषा के क्रमिक विकास का अनुभव निम्न उदाहरणों से मिल सकता है।

1. प्रारम्भिक काल (1300–1490)

(सैय्यद मुहम्मद हुसैनी, ख्वाजाबंदानवाज, लुत्फी, फिरोज)

नामा कितना बोल संवार, जानूं मोतियों केरा हार
सोने की ज्यों खूंटी घड़, मानक मोती हीरे जड़।।

2. मध्यकाल (1491–1687)

(इब्राहिम आदिलशाह तथा अन्य)

(इनकी कृति 'नवर', दक्खिनी हिन्दी में प्रथम संस्कृत बहुल भाषा)

सोमसेत मध श्याम मानो नैन सुन्दर रूप लक्षन
बादर आंवर ता पर हरत लागे कब प्रकट दसे बदन।

3. उत्तर काल (1688–1850)

मुल्लावजही जिनकी पुस्तक **'सबरस'** हिन्दी खड़ी बोली गद्य का प्रथम नमूना है, तुलसीदास के समकालीन थे। कुलीकुतुबशाह, इब्नेनिशाती और जुनैदी अन्य प्रमुख कवि हैं।

प्रारम्भिक खड़ी बोली गद्य की तरह इनका गद्य भी तुकान्त है और वजही को स्वयं इस पर गर्व है। वह कहते हैं कि –

"आजलग न कोई इस जहान में, हिन्दुस्तान में, हिन्दी जबान में इस लताफत, इस छंदों से नज्म और नस्त मिलाकर, गुलाकर नहीं बोल्या।"

कुली कुतुबशाह की भाषा का एक नमूना देखिए –

चंद्रसूर तेरेनूर थे, निस दिन को नूरानी किया
तेरी सिफ़त किन कर सके, तूं आपी मेरा जिया

× × × × ×

चंद्रमुख तुज लाल लब है दसन जूं तो तारे हैं
कहो यह चांद कां है किस असमां थे उतारे हैं।

इसके बाद मुगल काल में जब औरंगजेब ने गोलकुण्डा तथा बीजापुर को अपने अधीन कर लिया तो दक्खिनी का राजाश्रय छिन गया तथा दक्खिनी पर रेख्ता शैली का प्रभाव बढ गया तथा उर्दू, अरबी, फारसी से भाषा अपनी स्वाभाविकता खोकर बोझिल होने लगी। बहरी, बजदी, वलीदकनी, मिराज औरंगाबादी, शाहमियांतुराब दक्खिनी आदि प्रमुख कवि हुए इसमें वली दकनी का नाम विशेष है। इन्होंने ही खासकर दक्खिनी हिन्दी की सहज धारा को 'उर्दू–ए–मुसल्ला' की सुसंस्कृत धारा में विलीन कर दिया तथा दक्षिण में उर्दू के बाबा आदम बने। इनकी भाषा के दो नमूने देखिए –

– जिस इश्क का तीर कारी लगे
उसे जिन्दगी क्यों न भारी लगे
न होवे उसे जग में हरगिज करार
जिसे इश्क की बेकरारी लगे
वली कों कहे तूं अगर एक वचन
रकीबों के दिल में कटारी लगे, (दक्खिनी)

शाह सादुल्ला गुलशन शाहजहाँ का समकालीन तथा एक सूफी संत था। शाह से मिलने के बाद वली दक्खिनी ने जब 'उर्दू–ए–मुसल्ला' की ओर अपनी भाषा मोड़ दी (शाह ने वली से कहा कि "ये सब विषय जो फारसी में बेकार भरे पड़े हैं, उन्हें रेख्ता भाषा में उपयोग में लाओ। तुमसे कौन पूछेगा ?") तब की इन्हीं की भाषा देखिए :

हुस्न का मसनदशीं वह दिलबरे मुमताज है
दिलबरों का हुस्न जिस मसनद का पाअन्दाज है

याद से उस इश्के–गुलजारे–हरम के ए वली
रंग को मेरे सदा ज्यो बूए गुल परवाज है।

अब तक दक्खिनी हिन्दी का जो ब्योरा दिया गया है उसके क्रमशः विकसित होते स्वरूप में खड़ी बोली हिन्दी के स्वरूप को उर्दू में परिवर्तित होते जाने के क्रम को सभी संदर्भों में देखा जा सकता है। अब इसके व्याकरणिक स्वरूप को भी देखें –

1. ध्वनि–महा प्राण ध्वनियों का अल्पप्राणत्व

मुझ – मुज
पारखी – पारकी
रखत – रकत
मूरख – मूरक

– कहीं कहीं 'ह' का लोप मिलता है

कहता – कता
पहचान – पछान

2. सभी कारकों में बहुवचन प्रायः अकारान्त शब्दों के विकारी रूप आकारान्त होते हैं तथा इकारान्त संज्ञाएं–याकारान्त हो जाती है, जैसे –

बातॉं के बन्दॉं, दोरतॉं ने बोले हैं, औरतॉं खातिर
अपनियॉं एतियॉं मूरतियॉं, अखियॉं सों सीपियॉं समॉं

3. बहुवचन के विकृत रूपों में 'आज' जोड़ा जाता है या 'यं' जोड़ा जाता है और 'ओ' का प्रयोग कम होता है, यथा –

अखियॉंसों, मुसल्मानां में, हिन्दुआंमें

4. सर्वनाम रूप – जो, तो, जाकी, हम, हमन, तुमन, तुज, जुकोई, जित्ता, जित्ती

5. कर्तृवाचक परसर्ग 'ने' का प्रचलन हो गया था पर खड़ी बोली हिन्दी की तरह उसका प्रयोग कर्ता मात्र के साथ निश्चित नहीं था (जैसा कि खड़ी बोली हिंदी में है कि इसका प्रयोग भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ होगा तथा अकर्मक कर्ता के साथ न होगा), जैसे–

"दोस्ताँ ने बोले है" (में 'ने' परसर्ग लगा है)
"बादशाह शराब पिया" (में 'ने' नही लगा)

6. कर्मवाचक परसर्ग 'को' मिलता है, लेकिन अधिकांशतः उसका सानुनासिक रूप 'कों' ही प्रचलित था, यथा –

'किसी कों नैं मिले'

7. करण अपादार वाचक परसर्गों, में, से, सोंते, सेती आदि के बीच 'से' कें प्रयोग की ओर उन्मुखता तो दिखाई पड़ती है परन्तु 'से' की अपेक्षा 'सों' की अधिकता हैं, यथा –

सबसों / जिससों

8. संप्रदान के लिए 'तई, वण' का ही प्रयोग मिलता है, यथा –

'समुन्दर के तई'

लेकिन एक नया परसर्ग 'खातिर' भी लोग व्यवहार में आ गया थ, जैसे – अपनी खातिर को।

9. संबंध कारक के परसर्ग 'का' की अपेक्षा अवधी बोली के 'केरा', 'केरी', 'केरे' रूप प्रचलित है, यथा –

– मोहब्बत केरा मय जो पीता अहै
– अजब तेरे कुदरत मेरे काम हैं।

10. अधिकरण हेतु प्रयुक्त परसर्ग 'में' स्थिर हो चुका था, यथा – इन दानों में।

11. सामान्य वर्तमान काल की क्रिया में शतृ वाले कृदन्त तद्भव रूप खूब प्रचलित हो गए थे, जैसे – होता, होती, होते आदि पर केवल 'त' वाले प्रीचन रूप भी चल रहे थे।

12. भूतकालिक क्रिया के रूप अपभ्रंश के निष्ठा वाले रूपों के ही विकसित रूप थे, यथा– दौड़ाए, पैदा किया, नेकी की, कबूल किए हैं। लेकिन कह्या, सह्या, जान्या, बोल्या जैसे रूप भी मिलते हैं। साथ ही ध्यान देने योग्य बात यह है कि कर्म वाच्य में भूतकालिक क्रिया को कर्म के लिंग वचन के अनुरूप बदलने की प्रवृत्ति विकसित नहीं हुई थी, यथा –

– जिसे खुदा दिया सफाई उसे आई,

– काम बहुत खास किया हूँ।

13. भविष्यत काल की क्रिया के रूप 'गा–गी' अंत वाले होने लगे थे, यथा –
   – जाएगा
   – सकेगा

14. पूर्वकालिक क्रिया के रूप में य + कर वाले ज्यादा मिलते हैं, था – आयकर, होयकर। अभी भी, 'आ कर', 'हो कर' रूप रूप प्रचलित नहीं थे।

15. सहायक क्रिया में है, हैं, हो, हूँ, था, थे, थी, होगा, होगें, होगीं रूप प्रचलित हो चुके थे। हैंगा, हैंगी रूप भी प्रचलित थे।

16. प्रेरणार्थक क्रिया में 'दिखलाता' जैसे आधुनिक रूप थे।

इस प्रकार दक्खिनी भाषा का व्याकरण पंजाबी, अवधी, हरियाणवी, ब्रज, मराठी का मिश्रण लगता है। और इस बोली के आधार में खड़ी बोली निःसंदेह सिद्ध होती है। इसकी शब्दावली में भी तद्भव शब्दों का काफी प्रयोग है। साथ ही अन्य शब्द तो हैं ही। एक तरह से यह खड़ी बोली का अव्यवस्थित रूप लगता है, और उन लोगों की बात सही लगती है जो इसे हिन्दी खड़ी बोली की एक शैली मानते हैं।

–000–

खड़ी बोली का विकास

खड़ी बोली अपने मूल रूप में एक मिश्रित बोली है जिसमें कौरवी के साथ पंजाबी, बांगरू एवं ब्रज के तत्व भी अपने मूल रूप या परिवर्तित रूप में समाहित हैं। वस्तुतः खड़ी बोली मध्यप्रदेश के भाषा रूपों पर आधारित है और इसे उत्पत्ति की दृष्टि से शौरसेनी अपभ्रंश या उसके संधिकालीन रूप शौरसेनी अवहट्ट से संबंधित किया जा सकता है।

भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी का अस्तित्व सन् 1000 ई0 के आसपास मिलने लगता है। हिन्दी आम आदमी की जरूरत की भाषा के रूप में उत्पन्न हुई। इसलिए उसके विकास का इतिहास भारत की लोक चेतना के विकास से जुड़ा रहा। हिन्दी के प्रथम महाकवि चन्दबरदायी ने उसे 'षटभाशा' कहा है, यानि यह विभिन्न प्रदेशों एवं स्रोतों से बनी हुई सामासिक देश की सामासिक भाषा है। यह अकारण नहीं है कि हमारी सांझी संस्कृति के महत्वपूर्ण कवि अमीर खुसरो ने हिन्दी को अपनी मातृभाषा कहा और इसमें न केवल कविता की, वरन् उसके गांभीर्य और मधुरता पर भी गर्व किया।

खड़ी बोली का आदिकालीन रूप गोरखनाथ, खुसरो, रामानन्द, कबीर, नामदेव आदि में उपलब्ध है। आदिकालीन खड़ी बोली का शब्दसमूह मुख्यतः तद्भव और देशज का था। तत्सम शब्द अपेक्षाकृत बहुत कम थे। पुश्तो, तुर्की, फारसी, अरबी के कुछ शब्द आ गये थे। खड़ी बोली के मध्यमकाल का स्वरूप गंग की 'चंद छंद वर्णन की महिमा', नानक, दादू, रहीम एवं आलम के 'सुदामा चरित्र' में दिखाई देता है। इस काल के अंत तक हिन्दी ध्वनियों में पांच नयी ध्वनियां भी शामिल हो गई – क़, ख़, ग़, ज़, फ़। मध्यकाल तक खड़ी बोली स्वतंत्र रूप से साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित नहीं हो सकी। वस्तुतः खड़ी बोली साहित्यिक भाषा के रूप में 19वीं शताब्दी में विकसित हुई और धीरे–धीरे वह रचना, चिंतन, व्यापार और विज्ञान – सभी क्षेत्रों को केन्द्रीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। 19वीं शताब्दी में खड़ी बोली के विकास के अनेक ऐतिहासिक कारण थे जिनका विश्लेषण निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत किया जा सकता है।

1. आधुनिक भावबोध का सूत्रपात – भारतीय इतिहास में 19वीं शताब्दी आधुनिकता के प्रस्थान बिन्दु के रूप में मान्य है। अंग्रेजी साम्राज्य का उपनिवेश बनने के बाद भारत की परम्परागत आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन हुए, जिनका दूरगामी असर

जीवन पर पड़ा। हजारों वर्षों की कृषि संस्कृति के आकाश में चिमनियों का धुआं उठा। **नगरीकरण** का नए ढंग से सूत्रपात हुआ। गांवों में **विस्थापन** की प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ। जीवन पुरानी धुरी से उतर गया। भारतीयों का अंग्रेजों से संपर्क एक नितांत नया अनुभव था। योरोप का संसार चकित करने वाला और ज्ञान विज्ञान के प्रति आकर्षित करने वाला था। **डार्विन, मार्क्स व फ्रायड** की स्थापनाएं धर्मप्राण और आस्थाशील भारतीय मानस को झकझोरने वाली थी। इन सभी स्थितियों के जटिल दबाव से जिस नयी चेतना का आरंभ हुआ उसमें इतिहास की पुर्नव्याख्या, अपनी अस्मिता का आत्म मंथन एवं पश्चिमी संस्कृति से खुले संवाद के लिए दबाव बना और इसी दबाव के भीतर से आधुनिक भावबोध विकसित हुआ। इस आधुनिक भावबोध और खड़ी बोली के बीच एक गहरा रिश्ता है।

विद्वानों की राय है कि ब्रजभाषा मध्यकालीन भावबोध की भाषा है। यह भक्ति आंदोलन से उपजे जीवन–मूल्यों और बाद में दरबारी–संस्कृति की अभिव्यक्ति की भाषा है। स्पष्ट है कि मध्यकालीन भावबोध को व्यंजित करने वाली भाषा में इस आधुनिक युग को अभिव्यक्त करने की क्षमता नहीं रह गई। मध्ययुग के नेपथ्य में जाने के साथ उसकी भाषा भी उसी के साथ चली गई और वर्तमान के मंच पर खड़ी बोली का उदय हुआ।

हिन्दी साहित्य में इस आधुनिक भावबोध की अभिव्यक्ति भारतेन्दु युग के गद्य साहित्य में हुई। मानवीय वर्तमान की केन्द्रीयता इस आधुनिकता की धुरी है। यद्यपि इस युग में खड़ी बोली का मानक रूप स्थिर नहीं हो सका लेकिन इतना स्पष्ट हो गया कि आने वाले समय में खड़ी बोली ही सर्जना व चिंतन की भाषा बनेगी।

2. **अंग्रेजी सत्ता की स्थापना** – 19वीं शताब्दी में खड़ी बोली के विकास का दूसरा महत्वपूर्ण कारण भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना भी था। अंग्रेजी सत्ता की स्थापना का एक छोर मुगल साम्राज्य के पतन से भी जुड़ा हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में यह लक्षित किया है कि मुगल साम्राज्य के पतन के कारण दिल्ली के व्यापारी पूर्वी क्षेत्रों – लखनऊ, पटना, कलकत्ता की ओर पलायन करने लगे। उनके साथ यहाँ की खड़ी बोली भी गई व अनुकूल परिवेश पाकर तेजी से विकसित हुई। खड़ी बोली के प्रसार में व्यापार का विकेन्द्रीयकरण एक महत्वपूर्ण कारण रहा। इस प्रकार खड़ी बोली भारत के बड़े हिस्से में सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित हुई। उस समय के अनेक पर्यटकों

एवं सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि खड़ी बोली हिन्दुस्तान की सम्पर्क भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी थी।

3. **भारतीय नवजागरण की चेतना** – 19वीं शताब्दी में पश्चिमी संस्कृति और भारतीय अस्मिता की टकराहट से उत्पन्न चेतना को ही नवजागरण की चेतना कहा गया है। खड़ी बोली के विकास में इस नवजागरण की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। परम्परा की तार्किक व्याख्या, नया इतिहास–बोध, जातीय अस्मिता की तीव्र चेतना एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित एक स्वस्थ समाज की रचना का स्वप्न – भारतीय नवजागरण के आधार बिन्दु थे। इन आधारों की अभिव्यक्ति खड़ी बोली के माध्यम से हुई। यह अकारण नहीं है कि इस नवजागरण के प्रायः सभी महत्वपूर्ण चिंतकों, विचारकों एवं धार्मिक नेताओं हिन्दी को अपनाया। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने **'सत्यार्थ प्रकाश'** की रचना हिन्दी में की थी। भारतीय नवजागरण के पिता कहे जाने वाले **राजा राम मोहन राय** ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार की आवश्यकता को स्वीकार किया। आधुनिक साहित्य के प्रवर्तक **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** ने भाषा के विकास का संबंध राष्ट्रीय विकास की सर्वांगता से जोड़ा – 'निज भाषा उन्नति अहै, सब भाषा को मूल'। इस प्रकार भारतीय नवजागरण ने न सिर्फ नये जीवन–मूल्यों को विकसित किया, बल्कि उन्हें अभिव्यक्ति देने वाली भाषा के रूप में हिन्दी को भी विकसित किया।

4. **फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना** – सन् 1799 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कलकत्ता में हुई जिसका उद्देश्य अंग्रेज अधिकारियों को हिन्दी भाषा का ज्ञान कराना था। उस कॉलेज के **जॉन गिलक्राइस्ट** ने हिन्दी के विकास में अविस्मरणीय योगदान किया। उनकी अध्यक्षता में अनेक पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए और कुछ मौलिक ग्रंथों की रचना हुई। इस कार्य में उनके चार सहायक थे – **इंशा अल्ला खां, लल्लू लाल, सदल मिश्र और सदासुख लाल।** इंशा अल्ला खां की चर्चित रचना **'रानी केतकी की कहानी'** ठेठ बोलचाल की भाषा में लिखी गई। यह रचना भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण न होकर विधा की दृष्टि से अधिक चर्चित रही है। लल्लू लाल का **'प्रेम सागर'**, सदल मिश्र का **'नासिकेतोपाख्यान'** एवं सदा सुखलाल का **'सुख सागर'** – खड़ी बोली के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इस विकास में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के दो महत्वपूर्ण व्यक्तियों के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता – **राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और राजा लक्ष्मण सिंह।** इन दोनों ने स्वतंत्र रूप से हिन्दी की दो शैलियों का विकास किया। शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने हिन्दी में **उर्दूबहुल शैली** का विकास किया। उन्होंने फोर्ट विलियम कॉलेज और सरकारी स्कूलों के लिए अनेक पुस्तकों की रचना की जिनमें **'राजा भोज का सपना', 'इतिहास तिमिरनाशक', 'भूगोल हस्मातलक'** आदि चर्चित हुई। राजा लक्ष्मण सिंह ने **तत्सम प्रधान शैली** में हिन्दी अनुवाद किया। उन्होंने संश्लिष्ट तत्सम प्रधान शैली में किया। इस प्रकार हिन्दी को विकसित और प्रसारित करने में इस कॉलेज ने ऐतिहासिक योगदान किया।

5. **पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन** – 19वीं शताब्दी में पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन का शुभारम्भ हुआ, जिसके चलते हिन्दी को स्थापित होने में बहुत मदद मिली। वस्तुतः इस युग की संपूर्ण वैचारिकता, ज्ञान के प्रचार–प्रसार का माध्यम पत्रकारिता थी। इसलिए सभी महत्वपूर्ण रचनाकार, पत्रकार भी थे। पत्रकारिता के उदय ने हिन्दी की संभावनाओं के क्षितिज का विस्तार दिया। हिन्दी का पहला पत्र 'उदंत मार्तण्ड' 1826 ई0 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। 1828 में कलकत्ता से ही 'बंगदूत' निकला, जिसे सरकार ने 1826 ई0 में बंद कर दिया। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का **'बनारस अखबार'** 1844 से प्रकाशित होने लगा। 1854 ई0 में कलकत्ता से **'समाचार'** नाम का दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ। इन पत्र–पत्रिकाओं ने हिन्दी की रूप रचना को व्यवस्थित किया। उसमें विचार वाहन की क्षमता भरी और उसे नए मनुष्य की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में विकसित किया। इन पत्र–पत्रिकाओं में भाषा का ठेठ, प्रचलित और मिश्रित रूप ही चलता रहा। 1873 ई0 में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने **'हरिश्चन्द्र मैगजीन'** के माध्यम से खड़ी बोली को साहित्य भाषा के रूप में विकसित करने का सफल प्रयास किया।

6. **ईसाई मिशनरियों का योगदान** – ईसाई धर्म के प्रचार की प्रक्रिया में मिशनरियों ने खड़ी बोली के महत्व और आवश्यकता को समझा। उन्होंने सरल खड़ी बोली को अपना माध्यम बनाया। नए संसार एवं नयी शिक्षा के व्यापक प्रसार के लिए उन्होंने पुस्तक–प्रकाशन की योजनाएं बनाई। श्रीरामपुर, मिर्जापुर, बनारस, इलाहाबाद और आगरा में 'बुक सोसाइटियों' की स्थापना की गयी और अनेक स्कूल, कॉलेज खोले गये। इन

सोसाइटियों ने भूगोल, इतिहास, धर्मशास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, साहित्य, ज्योतिष, चिकित्सा, विज्ञान आदि विषयों की पाठ्य पुस्तकें तैयार कराकर प्रकाशित कीं। बाइबिल का भी बड़े पैमाने पर हिन्दी अनुवाद कराया गया। मिशनरियों के इस प्रयास ने खड़ी बोली के विकसित होने में बहुत मदद की।

7. **भारतेन्दु एवं उनके मण्डल का योगदान** – अनेक राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने खड़ी बोली को आधुनिक युग की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित तो कर दिया, लेकिन उसे साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित करने का श्रेय भारतेन्दु–युग के साहित्यकारों को है। यद्यपि इस युग की कविता की भाषा ब्रजभाषा ही रही, लेकिन गद्य का खड़ी बोली में लिखा जाना भारतेन्दु युग की रचनात्मक उपलब्धि है। इस युग में रचित गद्य का साहित्य के माध्यम से ही नए युग की संवेदना को अभिव्यक्त किया जा सका। वस्तुतः भारतेन्दु युग ने ही साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली की वह नींव रखी जिस पर द्विवेदी युग, छायावाद और छायावादोत्तर युग का विशाल प्रसाद खड़ा हो सका।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली का विकास एक ऐतिहासिक अनिवार्यता थी। जीवन की तरह भाषा भी निरंतर परिवर्तनशील है। जब भाषा जीवन के बदलावों के समानान्तर नहीं बदलती, तब जीवन और भाषा के बीच गतिरोध आ जाता है। भाषा में परिवर्तन से ही यह गतिरोध टूट पाता है। 19वीं शताब्दी में जीवन के जिन नये आयामों का उदय हुआ उन्हीं से खड़ी बोली भी विकसित और प्रतिष्ठित हुई। इसलिए यह महज भाषा मात्र की नहीं, आधुनिक संवेदना और सर्जना की शर्त भी है।

भाषागत विशेषताएं

मिश्रित शब्द भण्डार :

19वीं शताब्दी में विकसित खड़ी बोली का शब्द भण्डार मिश्रित है। तत्सम शब्दों की बहुलता के बावजूद उसमें अरबी, फारसी, तद्भव एवं देशज शब्दों की भरीपूरी उपस्थिति है। अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप खड़ी बोली में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग की भी शुरूआत हो गयी। यह एक नई प्रवृत्ति थी।

वर्तनीगत अनियमितता :

इस काल में खड़ी बोली के मानक रूप के स्थिर न हो पाने के कारण वर्तनीगत अनियमितता की भरमार मिलती है। शब्दों की वर्तनी पर प्रादेशिक उच्चारण का गहरा दबाव होने के कारण उनका कोई सर्वमान्य रूप निश्चित नहीं हो सका था। मानक व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध होते हुए भी अनेक शब्द प्रचलित थे। जैसे – मूर्ती, साधू, परिणाम, वीरत्व आदि।

संज्ञा : सेना, रेडियो, चूरा, वायु, पुरोहित देइ आदि। वस्तुतः इस युग में वचन और लिंग की निश्चित व्यवस्था का अभाव दिखाई देता है।

सर्वनाम : हमें, उस्को, इन्के, तिस्पर .....

क्रिया : आवैगा, चलैं, लीजै आदि। क्रियारूपों पर ब्रजभाषा की छाया स्पष्ट है।

अव्यव : वरंच, किंच, सम्प्रति, अथय आदि।

19वीं शताब्दी की खड़ी बोली का भाषिक वैशिष्टय मानकता का अभाव ही है। इस समय की भाषिक संरचना बहुत हद तक लेखकों की मातृभाषा से प्रभावित दिखाई देती है। 1880 के बाद जब से भाषा के मानकीकरण की प्रवृत्ति का उदय हुआ, तब भाषा में एक व्यवस्था दिखाई देने लगती है। खड़ी बोली की मानकता को पूर्ण व्यवस्था 'सरस्वती' के संपादक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी से मिली है।

—000—

हिन्दी भाषा का मानकीकरण

भाषा के साथ यह विचित्र विरोधाभास है कि उसे परिवर्तन की निरंतरता और मानकता की मर्यादा के बीच से गुजरना होता है। गति और ठहराव के परस्पर विरोधी दबावों में, भाषा निश्चय ही गति का साथ देती है और मानकता के आग्रहों को धीरे–धीरे अस्वीकार करती हुई अपनी संरचना को युगानुरूप बनाती चलती है। यह जीवित भाषा की प्राणवत्ता की पहचान भी है और जरूरत भी। लेकिन इतना निश्चित है कि परिवर्तन की अपहरिहार्यता से संचालित होने के बावजूद भाषा की अपनी आन्तरिक मर्यादा होती है, एक अपना अनुशासन और पहचान होती है। भाषा की मानकता का मूल सम्बन्ध उसी अनुशासन की पहचान है।

मानकता की दृष्टि से विश्व–भाषाओं में हिन्दी की स्थिति विशिष्ट है। यह एक भाषा नहीं, बल्कि अपनी संरचना में विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों का मिश्रण है। मध्यभारत के विशाल भू–भाग में, दसवीं शताब्दी के आसपास जिन भारतीय भाषाओं और बोलियों का उदय हुआ, उनमें हिन्दी भी एक थी। ऐतिहासिक–सामाजिक कारणों से यह हिन्दी क्षेत्रीय बोलियों एवं अपनी भाषाओं से ऊर्जा लेती हुई उन्नीसवीं शताब्दी तक अखिल भारतीय स्तर पर सम्पर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। एक तरफ इसकी आधार भाषा संस्कृत है और दूसरी तरफ इसके विकास में भोजपुरी, अवधी, ब्रज, राजस्थानी एवं हरियाणवी बोलियों का योगदान है। इसके अतिरिक्त यह अखिल भारतीय स्तर पर सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होने के कारण गैर हिन्दी लोगों द्वारा भी बोली जाती है। भारत जैसे विशाल देश की सम्पर्क भाषा एवं राष्ट्रभाषा होने के कारण यह क्षेत्रीय बोलियों के प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती।

आजादी के बाद इसे राजभाषा का भी दर्जा दिया गया है। इसलिए भी हिन्दी की मानकता का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। यहां स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हिन्दी की मानकता का प्रश्न सिर्फ भाषिक संरचना से ही नहीं, बल्कि उसकी लिपि यानी देवनागरी से भी सम्बद्ध है। इसलिए हिन्दी भाषा की मानकता की समस्याओं एवं उनके समाधान पर बात करते हुए देवनागरी लिपि पर चर्चा भी अनिवार्य होगी। दरअसल भाषा और लिपि को पृथकता में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि लिपि भाषा का शरीर है और इसलिए उसके भीतर भाषा की आत्मा निवास करती है।

हिन्दी के मानकीकरण की समस्याएं उसके भाषिक प्रयोग एवं लिपि – दोनों स्तरों पर है। इसलिए सबसे पहले मानकीकरण की समस्याओं पर विचार करना उपयुक्त होगा। व्यवहार और व्याकरण के स्तर पर हिन्दी की मानकता के मार्ग में निम्नांकित समस्याएं मुख्य हैं –

उच्चारण

उच्चारण की दृष्टि से हिन्दी में मानक एवं अमानक रूपों का प्रचलन है। विभिन्न बोलियों का स्थानीय प्रभाव हिन्दी शब्दों के उच्चारण में दिखाई देता है। यद्यपि इन शब्दों की मानकता असंदिग्ध है, लेकिन व्यवहार में इस मानकता का पालन नहीं होता। यह समस्या विशेष तौर पर श–स, य–ज, छ–क्ष ध्वनियों के स्तर पर है। जैसे –

शुद्ध		अशुद्ध
शहर	–	सहर
यज्ञ	–	जज्ञ
क्षमा	–	छमा
स्वच्छ	–	स्वक्ष

उच्चारण की अमानकता के कारण कई बार वर्तनी भी प्रभावित होती है। पूर्वी और बिहारी जनता के उच्चारण एवं लेखन में ये अशुद्धियां मौजूद होती हैं।

व्याकरणिक समस्याएं

यद्यपि हिन्दी में व्याकरण के स्तर पर अमानक तत्वों की बहुलता नहीं है, लेकिन व्यावहारिक धरातल पर अमानकता पर बढ़ता प्रभाव निश्चित रूप से चिंतनीय है। हिन्दी के मानक रूप का अतिक्रमण कुछ पूर्वी प्रयोगों एवं पंजाबी के द्वारा हो रहा है। इस अतिक्रमण को निम्नांकित बिन्दुओं पर देखा जा सकता है–

संज्ञा :

बिहार में 'के कारण' के स्थान पर 'के चलते' का प्रयोग होता है। जैसे –

बच्चों के चलते मुझे ठहरना पड़ा।

आपके चलते मैं समय पर नहीं पहुंच सकूंगा।

पंजाबी प्रभाव के कारण संज्ञाओं में अनावश्यक रूप से 'ए' जोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है। जैसे – लाले से, माने के घर से, चाचे की कमी से आदि।

ये प्रयोग जनस्वीकृत हो रहे हैं और साहित्य में भी इनका प्रयोग दिखाई पड़ रहा है। इसलिए कुछ भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि क्षेत्रीय स्तर पर इन प्रयोगों को मान्यता देनी पड़ेगी। यह सच है कि व्यवहार के स्तर पर इन प्रयोगों को रोका नहीं जा सकता, लेकिन लेखन के स्तर पर इन्हें नियंत्रित किया जाना चाहिए।

सर्वनाम :

हिन्दी के मानक सर्वनाम रूपों के समानान्तर कुछ क्षेत्रीय कारकीय रूपों का प्रचलन बढ़ रहा है। जैसे –

मुझे, मुझको – मेरे को, मुझमें – मेरे में

तुमसे – तेरे से, तुममें – तेरे में

पूरब में 'मैं' के लिए भी 'हम' प्रयोग का प्रचलन है।

विशेषण :

विशेषण के स्तर पर मानकता की समस्या आकारान्त विशेषण शब्दों के साथ है। ये आकारान्त विशेषण लिंग एवं वचन के साथ परिवर्तित होने लगे हैं। जैसे – ताजा फल–ताजे फल–ताजी खबर।

मानक हिन्दी में 'ताजा' विशेषण अपरिवर्तनीय है। इसी प्रकार 'सुनहरी' शब्द अपरिवर्तनीय और मानक है लेकिन प्रयोग में 'सुनहरा मौका' का चलन बढ़ रहा है।

क्रिया :

मानक हिन्दी के क्रिया रूपों में भी अमानक रूपों का प्रवेश हो रहा है। यहां भी अमानकता सिर्फ व्यावहारिक स्तर पर नहीं बल्कि लेखन के स्तर पर भी है। जैसे –

मानक रूप	अमानक रूप
किया	करा

की	करी
कीजिए	करिये

लिंग :

हिन्दी भाषा में लिंग की समस्या किंचित जटिल है। यह जटिलता मुख्यतः रूप–निर्माण के स्तर पर है। प्रयोग के स्तर पर ऐसे शब्दों की संख्या 30 से ऊपर नहीं है जिन्हें लेकर विवाद की स्थिति हो। निम्नांकित शब्द इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं – तौलिया, गिलास, तकिया, दही, रूमाल, पेंट, कलम, चर्चा आदि।

शब्द भण्डार एवं अर्थ की समस्या :

एक विशाल भू–भाग में बोली जाने के कारण हिन्दी की शब्द–सम्पदा में अपार वैविध्य है और एक ही शब्द के अर्थ में अनेकरूपता है। यह मानकीकरण की महत्वपूर्ण समस्या है। हिन्दी में यह समस्या दोनों स्तरों पर है – सामान्य शब्द के स्तर पर भी और पारिभाषिक शब्दों के स्तर पर भी। जैसे – सामान्य शब्द के स्तर पर अनेकरूपता के कुछ नमूने द्रष्टव्य हैं :

चींटी	–	कीड़ी (हरियाणा में)
कद्दू	–	घिया, लौकी
तोरी	–	नेनुवां, घेंवड़ा, परोल
भिण्डी	–	राम तरोई
ताऊ	–	बड़का बाबू, चाचा, काका

पारिभाषिक शब्दावलियों के स्तर पर भी यह अनेकरूपता है। जैसे –

डाइरेक्टर	–	निदेशक, निर्देशक, संचालक
वर्कशाप	–	कार्यशाला, कार्य गोष्ठी, कर्मशाला
कवरिंग लेटर	–	प्रावरण पत्र, आवरण पत्र, उपरि पत्र

सामान्य एवं लोक प्रचलित व्यवहार में प्रयुक्त शब्दों में एकरूपता ले आना तो संभव नहीं है लेकिन पारिभाषिक शब्दों में एकरूपता का होना अनिवार्य भी है और संभव भी। इस दिशा में प्रयास किया जा सकता है।

वाक्य–रचना :

अमानकता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का प्रभाव हिन्दी वाक्य–रचना की मानकता पर भी पड़ा है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

मानक	अमानक
मुझे पढ़ना है	मैंने पढ़ना है
उसे बोलना था	उसने बोलना था
मुझे कुछ नहीं चाहिए	मेरे को कुछ नहीं चाहिए
मैंने कहा	हमने कहा

लिपि :

व्यवहार और व्याकरण के स्तर पर मानकीकरण की इन समस्याओं के साथ कुछ समस्याएं लिपि के स्तर पर भी हैं। मुख्य समस्याएं निम्नांकित हैं :

वर्तनी की एकरूपता का अभाव

हिन्दी में लेखन के स्तर पर कुछ शब्दों में वर्तनीगत एकरूपता का अभाव है। जैसे –

माताएँ	–	मातायें
नयी	–	नई
जाएगा	–	जायेगा, जावेगा, जायगा
लिए	–	लिये

हल चिह्न :

हल चिह्नों के प्रयोग को लेकर हिन्दी वैयाकरणों में पर्याप्त विवाद एवं मत–वैभिन्य है। एक वर्ग संस्कृत में प्रयुक्त हल चिह्नों का यथावत प्रयोग हिन्दी में जारी रखने का पक्षधर है। इसके विपरीत दूसरा वर्ग मानता है कि हिन्दी में हलन्त चिह्नों का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए क्योंकि हिन्दी में आकर अकारान्त शब्द स्वतः हलन्त हो गये हैं। इसलिए अलग से हलन्त के प्रयोग का कोई औचित्य नहीं है। जैसे – आम, फल, आप, खेत, जगत, दयावान आदि। कुछ लोगों की राय है कि जिन शब्दों के हलन्त को हिन्दी में स्वीकार कर लिया गया है, उसे जारी रखना चाहिए। जैसे – संवत्, सत, पृथक् आदि।

विसर्ग :

विसर्ग प्रयोग को लेकर भी हिन्दी में एकरूपता नहीं है। संस्कृत के अनेक विसर्गयुक्त शब्द हिन्दी में आकर विसर्ग रहित हो गये हैं। जैसे – दुःख, निःसंदेह, निःसंतान आदि। निःसंदेह एवं निःसंतान तो संस्कृत के संधि–नियमों से निस्संदेह एवं निस्संतान हो गये हैं, लेकिन दुख हिन्दी का अपना शब्द हो गया है और इससे 'दुखिया' जैसो विशेष भी बना लिया गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में विसर्गयुक्त और विसर्गरहित प्रयोगों की विकल्पना भी मौजूद है। जैसे – छः, छह, छ, छिः, छि आदि।

अनुस्वार एवं चन्द्रबिन्दु :

हिन्दी में अनुस्वार एवं चन्द्रबिन्दु के प्रयोगों में भी अव्यवस्था दिखाई देती है। आधुनिक लेखन में उन शब्दों में भी अनुस्वार का प्रचलन बढ़ा है जिनमें चंद्रबिन्दु का प्रयोग होता रहा है। इसके अतिरिक्त एक ही शब्द को अनुस्वार एवं चंद्रबिन्दु – दोनों के साथ लिखने का प्रयोग दिख रहा है। जैसे – इँधन–ईंधन, आँख–आंख, ऊँट–ऊंट, चाँद–चांद आदि।

इस संदर्भ में यह व्यवस्था दी गई है कि सर्वत्र अनुस्वार का प्रयोग वर्जित है। हाँ, अनुनासिक पंचम वर्णों के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग स्वीकृत हो गया है। जैसे – सन्त–संत, गङ्गा–गंगा, चञ्चल, पाण्डेय–पांडे, अन्तर–अंतर, कम्पर–बंपर आदि।

यह भी व्यवस्था दी गयी है कि शिरोरेखा के ऊपर अगर कोई मात्रा है तो चन्द्रबिन्दु का प्रयोग नहीं होगा, वहां अनुस्वार का ही प्रयोग किया जायेगा।

वर्णों की अनेकरूपता :

देवनागरी में कुछ वर्णों को दो तरह से लिखने की परिपाटी है। यह लिपि का दोष भी है और समस्या भी। जैसे – अ– , झ– , ण– , रु–रू।

विदेशी ध्वनियाँ :

हिन्दी के मानकीकरण में छः विदेशी ध्वनियों – ऑ, क़, ख़, ग़, ज़ और फ़ के प्रयोग को लेकर भी कुछ समस्याएं हैं। कुछ लोग मानते हैं कि हिन्दी में इन ध्वनियों का प्रयोग अनिवार्य नहीं है और इसलिए विदेशी शब्दों को देवनागरी की ध्वनि–व्यवस्था के अनुसार ही

लिखा जाना चाहिए, जैसे – क़ानून की जगह कानून और ख़ून की जगह खून। लेकिन अनेक विद्वानों का मानना है कि इन ध्वनियों का प्रयोग होना चाहिए क्योंकि इन ध्वनियों के कारण हिन्दी के शब्दों में पर्याप्त अर्थभेद हैं और ये स्वीकृत हैं। जैसे राज–राज़, जरा–ज़रा, बाग–बाग़, फन–फ़न आदि।

इस संदर्भ में यह व्यवस्था दी गयी है कि जहाँ विदेशी ध्वनियों के साथ अर्थगत सूक्ष्मता जुड़ी हुई हो, वहां नुक्तों का प्रयोग होना चाहिए। बाकी स्थानों पर इनका प्रयोग अनिवार्य नहीं है।

मानकता और संप्रेषण के अन्तराल की समस्या :

मानक हिन्दी के स्वरूप–निर्धारण के मार्ग में एक बड़ी समस्या संप्रेषण की है – विशेष तौर पर अनुवादों के संदर्भ में। यह विचित्र विरोधाभास है कि मानकता की शर्तों पर अनूदित हिन्दी हास्यास्पद सीमा तक दुरूह और असंप्रेषणीय हो जाती है। ऐसी स्थिति में यह चिंतनीय है कि मानकता और संप्रेषण के अन्तराल को किस तरह पाटा जाए। वस्तुतः मानकता की सार्थकता भाषा की संप्रेषणीयता से संबद्ध है। लेकिन हिन्दी में स्थिति इसके विपरीत है। यह विडम्बना ही है कि एक लम्बे समय तक जन–चेतना और उसकी आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करने वाली भाषा अनुवाद के स्तर पर अपने ही लोगों के बीच अजनबी होती जा रही है।

मानकता के मार्ग में एक दूसरी समस्या भी आ रही है जिसका सम्बनध भाषा की भीतरी संरचना में नहीं बल्कि उसके सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों से है। हिन्दी प्रदेशों में नवधनाढ्य वर्ग का उभार और उनकी जीवन–शैली को परोसते हुए दूरदर्शन धारावाहिक और बाजारू बंबइया फिल्में – जिस तरह की हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं – उससे भाषा की मानकता खतरे में है। चहकती हुई अंग्रेजी के प्रवाह में हिन्दी का प्रयोग यह वर्ग महज योजक के रूप में कर रहा है। लालच पैदा करने वाली यह जीवन–शैली न सिर्फ हिन्दी को भ्रष्ट कर रही है, बल्कि इसे बोलने वालों में एक हीनता–ग्रंथि भी पैदा कर रही है। यह समस्या चिंतनीय है और इस पर गंभीरता से विचार होना चाहिए।

हिन्दी के मानक रूप का विकास :

अनेक समस्याओं और सीमाओं के बावजूद आज हिन्दी का एक मानक रूप उपलब्ध है। यह मानकता इसे भाषा की एक लम्बी विकास–प्रक्रिया के तहत उपलब्ध हुई है। भारतेन्दु

युग में भाषा की मानकता की चिंता लगभग नहीं दिखाई देती। उस समय खड़ी बोली पहली बार रचना का माध्यम बन रही थी और उस पर क्षेत्रीय बोलियों का सीधा प्रभाव था। व्याकरण सम्बन्धी बहुरूपता, शब्द–चयन की अनिश्चितता, वाक्य–योजना की शिथिलता एवं अन्वयहीनता–भारतेन्दु–युगीन खड़ी बोली में प्रचुरता के साथ विद्यमान है।

वस्तुतः खड़ी बोली की मानकता का सवाल **द्विवेदी युग** में उठा। अपने दृढ़ निश्चय, कठोर अनुशासन और रचनात्मक संकल्पना के बल पर आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने खडी बोली को मानक रूप प्रदान करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। उन्होंने खड़ी बोली को गद्य के साथ–साथ कविता की भाषा बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान किया। उनकी प्रेरणा और प्रयासों से **कामता प्रसाद गुरू** और **किशोरीदास वाजपेयी** ने खड़ी बोली के व्याकरण लिखे। इस संदर्भ में **अयोध्या प्रसाद खत्री** के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता। द्विवेदी–युग में मानकता के संदर्भ में निम्नांकित व्यवस्थाएं दी गईं –

1. हिन्दी में किसी भी भाषा के जो शब्द प्रचलित हो गये हैं, उन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया जाये।
2. परसर्ग को संज्ञा से अलग रखा जाये। जैसे – गाय का दूध, राम ने, पेड़ से . . . .
3. सर्वनाम के प्रयोग में परसर्गों को साथ लिया जाये। जैसे – उनकी मर्जी, आपका भविष्य।
4. लिंग–निर्धारण का आधार स्वीकृत और प्रचलित मान्यता हो। संस्कृत में अग्नि, आत्मा, वायु, मृत्यु आदि पुल्लिंग हैं, लेकिन हिन्दी में इनका प्रयोग स्त्रीलिंग के रूप में होता है। इनके स्त्रीलिंग रूप ही मानक माने जाएं।
5. लिखित भाषा में एक वचन के लिए 'मैं' और बहुवचन के लिए 'हम' का प्रयोग हो।
6. क्रिया के ब्रजभाषा रूपों का परित्याग किया जाए – जैसे – आवैं, जावैं, जीजै के स्थान पर क्रमशः आएं, जाएं, लीजिए।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी युग के विराम–चिह्नों को भी व्यवस्थित किया गया।

वस्तुतः द्विवेदी–युग में जिस मानक स्वरूप की स्थापना हुई उसी का पालन छायावाद और प्रगतिवाद में हुआ। लेकिन आजादी के बाद जब संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया तब उसकी चुनौतियां बढ़ीं। जीवन के अनेक क्षेत्रों में शब्दावली निर्माण की जरूरत हुई, इसलिए मानकता का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण हो गया। उच्च शिक्षा, विधि,

प्रशासन, विज्ञान आदि क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग को संभव बनाने के लिए अनेक आयोगों की स्थापना हुई। **केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय** ने **वर्तनी के मानकीकरण** पर जोर दिया। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी के मानकीकरण को तीन आधारों पर व्यवस्थित किया गया –

1. वर्तनी, 2. शब्दावली, 3. व्याकरण।

वर्तनी :

यह व्यवस्था दी गई कि – 1. वर्तनी संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुरूप हो। जैसे– जितेन्द्र, उज्ज्वल, मूर्च्छा, बीभत्स, महत्व, व्यंग्य आदि। 2. रेफ के कारण जिन शब्दों में विकल्प से द्वित्व होता है, उनमें सरलता की दृष्टि से द्वित्व का निषेध किया जाए। जैसे – आर्य्य–आर्य, वर्म्मा–वर्मा। 3. पंचमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार लिखने का विकल्प मान्य हुआ। जैसे – सन्त–संत, ग्रन्थ–ग्रंथ, पण्डित–पंडित, सम्बन्ध–संबंध आदि।

शब्दावली :

देश की अन्य भाषाओं से आये शब्दों का हिन्दी में यथावत् स्वीकार करने की सिफ़ारिश की गयी। जैसे – इडली, डोसा, सांभर आदि। अंग्रेजी से अनूदित पारिभाषिक शब्दों की एकरूपता पर भी बल दिया गया।

व्याकरण :

खड़ी बोली–व्याकरण का जो ढांचा द्विवेदी–युग में निर्मित किया गया था, उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया । **समकालीन व्याकरणिक मान्यताएं कामता प्रसाद गुरू के व्याकरण पर आधारित हैं।**

हिन्दी के मानकीकरण की जो प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी में शुरू हुई थी, वह एक मुकाम पर पहुंच चुकी है। आज हिन्दी का बहुत सारा स्वरूप मानक हो गया है, फिर भी कई क्षेत्रों में द्विरूपता बरकरार है। इनके समाधान की कोशिशें चल रही हैं। मानकीकरण एक निरंतर प्रक्रिया है क्योंकि स्वयं भाषा का स्वभाव परिवर्तनशील है। आज हिन्दी काफी सममर्थ है। लेकिन नये आर्थिक उपनिवेशवाद के कारण पश्चिमी देशों – विशेष तौर पर ब्रिटेन और अमरीका की भाषा का जो हमला हिन्दी पर हो रहा है – उससे हिन्दी की मानकता ही नहीं, बल्कि उसकी गरिमा और आत्मविश्वास को भी ठेस पहुंच रही है। इसलिए मानकता का सवाल अब सिर्फ भाषा का सवाल नहीं रह गया है, बल्कि उसका सम्बन्ध हमारी सांस्कृतिक अस्मिता से भी जुड़ गया है।

स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान 'खड़ी बोली' का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास

आधुनिक युग में स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान हिन्दी भारत की राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीक बन गयी। एक विदेशी भाषा (अंग्रेज़ी) को बलपूर्वक और छलपूर्वक यहां प्रतिष्ठित करके, देशवासियों को जिस प्रकार दासता के जाल में जकड़ने का प्रयास किया गया उससे जागरूक लोकचेता मनीषियों का चौकन्ना होना स्वाभाविक था। इस संबंध में अमर कथाशिल्पी, उपन्यास–सम्राट मुंशी प्रेमचन्द का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है – 'भारत की राष्ट्रीयता एक राष्ट्रभाषा पर निर्भर है और दक्षिण के हिन्दी–प्रेमी राष्ट्रभाषा का प्रचार करके राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं। राष्ट्रभाषा का होना लाज़िमी है।-अगर सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो उसे एक भाषा का आधार लेना पड़ेगा।'

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन–काल में हिन्दी

हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक युग का आरम्भ सन् 1850 ई० के आसपास से माना जाता है। यद्यपि इससे पहले, एक सौ वर्ष पहले से ही 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के रूप में अंग्रेज़ विदेशियों ने अपनी भाषायी कूटनीति का जाल फैलाना आरम्भ कर दिया था तथापि अनेक वर्षों तक उनका यह षड्यंत्र भारतीय जनता समझ नहीं पायी। इसका एक कारण यह भी था कि ब्रिटिश शासन ने भारत में अपने साम्राज्य की जड़ें मजबूत करने के लिए जो शिक्षा–नीति और भाषा–नीति अपनायी उसमें हिन्दी को भी प्रमुख स्थान प्राप्त था, क्योंकि उसके बिना वे भारतीय जनता पर शासन कर रही नहीं सकते थे। सन् 1800 ई० में कलकत्ता में जब फोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना की गई तो उसमें हिन्दी (जिसे वे 'हिन्दुस्तानी' कहते थे) विभाग भी खोला गया। यहीं भारत की बहुप्रचलित कौरवी बोली को 'स्टैंडर्ड डायलेक्ट' (खड़ी बोली) 'हिन्दी' के रूप में विकसित होने का अवसर मिला। कॉलिज की शिक्षा–नीति के अंतर्गत इस खड़ी बोली में अनेक पुस्तकें लिखवाई गईं। धीरे–धीरे हिन्दी का यही रूप देश–भर में, शिक्षा और साहित्य, बोलचाल और पत्र–व्यवहार, संवाद–संचार (समाचार पत्र) आदि में विकसित और प्रचलित होता गया। सन् 1801 ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी ने यह घोषणा की कि प्रशासनिक सेवा (सिविल सर्विस) में केवल उसी व्यक्ति को जिम्मेदार पद पर नियुक्त किया जाय जिसे गवर्नर जनरल द्वारा बनाये गये कानूनों को अमल

में लाने के लिए **'हिन्दुस्तानी'** (अर्थात् खड़ी बोली हिन्दी) का भी ज्ञान हो। इसीलिए विलियम प्राइस, फ्रेडरिक जॉन शोर, वैलंटाइन मैटकॉफ, फ्रेडरिक पिन्कॉट आदि ने हिन्दी सीखी। उल्लेखनीय है कि यह सब काम भारत के एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र (कलकत्ता) में हो रहा था, दिल्ली या मध्यप्रदेश के किसी इलाके में नहीं। स्पष्ट है कि आधुनिक काल की वास्तविक शुरूआत से पहले ही, हिन्दी प्रकारान्तर से राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य हो चुकी थी।

पत्रकारिता का योगदान :

आधुनिक युग में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में विधिवत प्रतिष्ठित कराने में हिन्दी पत्रकारिता का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 30 मार्च, 1826 ई0 को कलकत्ता से प्रारम्भ होने वाले हिन्दी के सबसे पहले पत्र 'उदंत मार्तण्ड' के प्रकाशन का उद्देश्य ही यही था कि लोगों को परायी भाषा (अंग्रेजी) से विरत करके अपनी भाषा (हिन्दी) की ओर उन्मुख किया जाए –

"उदंत मार्तण्ड अब पहले–पहले हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने भी नहीं चलाया पर अंग्रेजी और बंगाली में जो समाचार का कागज छपता है, उसका सुख उन बोलियों को जानने और पढ़ने वालों को ही होता है। और सब लोग पराये सुख सुखी होते हैं। जैसे पराये धन धनी होना।" (प्रथम संपादकीय का अंश)

अंग्रेजी को परायी भाषा मानकर, अपनी निजी भाषा हिन्दुस्तानी (अर्थात् सरल खड़ी बोली हिन्दी) में अखबार निकालने की यह तड़प वास्तव में राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में राष्ट्रभाषा (हिन्दी) के महत्व को ही स्वीकार करने की शुरूआत थी।

बंगाल के ही एक समकालीन वरिष्ठ पत्रकार केशवचंद्र सेन ने अपने समाचार पत्र में सन् 1857 ई0 में यह लेख प्रकाशित किया – "हिन्दी ही अखिल भारत की जातीय भाषा या राष्ट्रभाषा बनने योग्य है।"

प्रथम स्वाधीनता संग्राम :

सन् 1857 ई0 में भारत का प्रथम स्वाधीनता–संग्राम लड़ा गया। इसमें सर्वत्र हिन्दी ही माध्यम थी, अंग्रेजी या फारसी नहीं। सभी क्रांति–समाचार, संवाद और संदेश हिन्दी में प्रकाशित किये जाते थे। उस प्रथम स्वाधीनता–संग्राम का मुखपत्र 'पयाम–ए–आजादी' (जिसका हिन्दी अर्थ है – स्वाधीनता–संदेश) था जो दिल्ली से देवनागरी (हिन्दी) और फारसी

(उर्दू) दोनों लिपियों में निकलता था। प्रसिद्ध राष्ट्रभक्त और स्वतंत्रता सेनानी अजीम–उल्ला–खां इसके सम्पादक थे।

भारतेन्दु, दयानंद और अन्य विचारक :

सन् 1873 ई0 में 'अपनी' भाषा अर्थात् राष्ट्र की जनता की भाषा को 'स्वदेशीपन' के साथ जोड़ते हुए आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने यह उद्घोष किया –

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान कै, मिटै न हिय को सूल ।।

इसी वर्ष, अर्थात् सन् 1873 ई0 में गुजरात के प्रसिद्ध दार्शनिक, विचारक और समाज–सुधारक विद्वान महर्षि दयानंद सरस्वती ने 'आर्य–समाज' की स्थापना की और उसके दस नियमों के अंतर्गत पांचवां नियम यह बताया कि प्रत्येक आर्यसमाजी को हिन्दी पढ़ना अनिवार्य है। इससे धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर हिन्दी को समूचे राष्ट्र की जन–भाषा बनने में बहुत सहायता मिली।

बंकिमचंद्र और योगिराज अरविन्द के कथनानुसार भी राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता का एकमात्र आधार–सूत्र राष्ट्रभाषा हिन्दी हो सकती थी।

स्पष्ट है कि हिन्दी–क्षेत्र से बाहर के प्रदेशों के अधिकांश विद्वान और विचारक भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा में संलग्न थे। इसी संदर्भ में, गुजरात के बड़ौदा–नरेश, बंगाल के रमेशचन्द्र दत्त तथा महाराष्ट्र के डॉक्टर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर महोदय ने मिलकर सन् 1909 ई0 में बड़ौदा में एक महत्वपूर्ण आयोजन किया जिसमें हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य कराने का संकल्प व्यक्त किया गया।

स्वाधीनता–आंदोलन और महात्मा गांधी :

धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर पर तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के अनेक उल्लेखनीय प्रयास बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक हुए ही, राजनैतिक स्तर पर इस दिशा में सबसे अधिक योगदान मिला भारत के स्वाधीनता–आंदोलन से जिसके सूत्रधार थे – महात्मा गांधी। उनकी मातृभाषा गुजराती थी और उच्चशिक्षा उन्होंने अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त की। भारत के राजनैतिक मंच पर उनका अभ्युदय सन् 1916 ई0 के आसपास हुआ। इससे पहले वे हिन्दी अच्छी तरह नहीं जानते थे, कुछ–कुछ समझ सकते थे।

तब भी उन्होंने स्वाध्याय के बल पर हिन्दी का समृद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया। सन् 1916--17 ई0 में कलकत्ता में कांग्रेस–अधिवेशन में वे पहली बार एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उभरे और तभी से उन्होंने एक राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित करना अपने समूचे स्वदेशी आंदोलन तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम का अभिन्न अंग बना लिया। 1916 ई0 में ही, उन्होंने अधिवेशन का सारा कार्य हिन्दी में चलाने का शुभारम्भ कराया। यहां तक कि अधिवेशन के अध्यक्ष लोकमान्य तिलक से भी उन्होंने हिन्दी में भाषण देने का आग्रह किया। श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा इस पर तनिक असहमति का भाव दिखाने पर गांधी जी ने स्पष्ट कहा –

"कांग्रेस का करीब–करीब सारा ही काम अंग्रेजी में चलाने से राष्ट्र को बहुत नुकसान उठाना पड़ा है। ..... इन तमाम वर्षों के लम्बे समय में कांग्रेस दिखाने भर को राष्ट्रीय रही है। लोक–शिक्षा की सच्ची कसौटी पर उसे कसें, उसकी कीमत कूतें तो कहना होगा कि वह कभी राष्ट्रीय नहीं थी।" (यंग इंडिया, 20 जनवरी, 1920)

गांधी जी की इस भावना को श्रेष्ठ मराठी विद्वान और अंग्रेजी के ओजस्वी वक्ता लोकमान्य तिलक ने सच्चे हृदय से स्वीकार किया। कलकत्ता से लौटते हुए, कानपुर में उन्होंने (सन् 1917 ई0) में एक सार्वजनिक सभा में कहा – 'यद्यपि मैं उन लोगों में हूं जो चाहते हैं और जिनका विचार है कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है, किन्तु मैं हिन्दी समझ सकता हूं और टूटी–फूटी बोल भी सकता हूं ..... पर व्याख्यान नहीं कर सकता।' (सरस्वती, फरवरी 1920 ई0) इससे पहले, दिसम्बर 1916 ई0 में लखनऊ में गांधी जी के निर्देश पर, हिन्दी और देवनागरी को राष्ट्रीय दर्जा देने के संबंध में जो प्रस्ताव पास हुआ, उसके समर्थकों में श्री रामास्वामी अय्यर तथा श्री रंगस्वामी आयंगर जैसे दक्षिण भारतीय प्रतिनिधि अग्रणी थे।

सन् 1916 ई0 में, प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान, भारत की अंग्रेजी सरकार द्वारा गठित युद्ध परिषद् (WAR COUNCIL) में गांधी जी को आमंत्रित किया गया तो उन्होंने पहली शर्त यह रखी कि 'मुझे हिन्दी में बोलने की इजाज़त दी जाए।' और तत्कालीन अंग्रेज वाइसराय को उनकी यह शर्त स्वीकार करनी पड़ी। सन् 1939 ई0 में जब भारत के कई प्रदेशों में कांग्रेस की निर्वाचित सरकारों का गठन हुआ तो मद्रास के तत्कालीन मुख्यमंत्री (जो स्वाधीनता के बाद सन् 1947 ई0 में भारत के प्रथम गवर्नर जनरल बने) श्री राजगोपालाचारी ने मद्रास प्रांत (वर्तमान तमिलनाडु) के सभी विद्यालयों में हिन्दी–शिक्षण अनिवार्य कर दिया। उस समय महात्मा गांधी ने अन्य राज्यों को भी इस नीति का अनुसरण करने की प्रेरणा देते हुए लिखा – 'अगर हमें अखिल भारतीय राष्ट्रीयता प्राप्त करनी है तो प्रांतीय आवरण को भेदना ही पड़ेगा ..

..... जो लोग यह मानते हैं कि भारत एक देश है, उन्हें राजा (राजगोपालाचारी) जी का समर्थन करना ही चाहिए।' (हरिजन–सेवक, 10 सितम्बर, 1939 ई0)

इसी प्रकार, अन्य भी अनेक ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में बड़ी तेजी से विकास हुआ। स्वाधीनता–आंदोलन का प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन करने वाले असंख्य नेताओं, क्रांतिकारियों, बलिदानी वीरों, लेखकों, कवियों और पत्रकारों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में भरपूर योगदान किया। इन सब प्रयत्नों के पीछे गांधी जी का यही संकल्प था –

"अगर यह स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों व दलितों व अन्त्यजों का हो तो इन सबके लिए हिन्दी एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।" (यंग इंडिया, जून 1931 ई0)

महात्मा गांधी ने 'मेरे सपनों का भारत' नामक पुस्तक में जहां अपने अन्य अनेक अनमोल और प्रेरक विचार प्रस्तुत किये हैं वहीं राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के संबंध में भी बार–बार आग्रह किया है। उदाहरणतया –

(क) 'लाखों लोगों को जबर्दस्ती अंग्रेजी का ज्ञान कराना उन्हें गुलाम बनाना है। मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी उसने हम सबको गुलाम बना दिया है।'

(ख) 'आप और हम चाहते हैं कि करोड़ों भारतीय आपस में अन्तःप्रान्तीय सम्पर्क कायम करें। स्पष्ट है कि अंग्रेजी के द्वारा, दस पीढ़ियां गुजर जाने पर भी हम परस्पर सम्पर्क स्थापित न कर सकेंगे।' (मेरे सपनों का भारत)

इसी दृष्टिकोण को साकार करने के लिए महात्मा गांधी ने, देश के स्वाधीन होते ही, समकालीन जन–प्रतिनिधियों को सचेत करते हुए कहा –

'हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने में एक दिन भी खोना देश को भारी सांस्कृतिक नुकसान पहुंचाना है। ..... जिस तरह हमारी आज़ादी को जबरदस्ती छीनने वाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी भाषा को भी यहां से निकाल बाहर करना चाहिए।

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू का यह कथन भी महात्मा गांधी के उक्त मत की पुष्टि करता है – "अंग्रेजी निश्चय ही एक थोपी हुई भाषा है। इसने हमारे लिए ज्ञान–विज्ञान की खिड़कियां ज़रूर खोलीं और हमें बहुत–कुछ ज्ञान दिया भी, पर इस पर एक ऐसी भाषा होने का लांछन भी है जो हमारी अपनी भाषाओं और हमारी सांस्कृतिक परंपराओं के ऊपर जमकर बैठ गई है।"

स्पष्ट है कि सन् 1947 ई0 तक हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने के साथ–साथ राजभाषा का दर्जा प्राप्त करने में भी सक्षम हो चुकी थी। तब तक 'राष्ट्रभाषा' और 'राजभाषा' का अभिप्राय एक ही था। बाद में जब भारत की संविधान–सभा में इस पर विधिवत विचार हुआ तो मान लिया गया कि राष्ट्रभाषा के रूप में तो हिन्दी पहले से ही प्रतिष्ठित है, अब इसे वैधानिक रूप से राजभाषा का भी दर्जा दिया जाना चाहिए।

–000–

राजभाषा के रूप में हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

भाषा राष्ट्रीय अस्मिता की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है, इसलिए राष्ट्र की स्वतंत्रता का स्वप्न भी भाषा की मुक्ति से जुड़ा है। ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बनने के बाद भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को नष्ट करने की जो रणनीति बनी, उसी के तहत यहां अंग्रेजी को प्रचारित प्रसारित किया गया। राजनैतिक एवं आर्थिक गुलामी के साथ भाषिक गुलामी का दौर भी शुरू हुआ। इसलिए देश जब 1947 ई0 में आजाद हुआ तब संविधान निर्माताओं को ऐसी भाषा की आवश्यकता महसूस हुई जो राष्ट्र के विभिन्न वर्गों की भाषा बन सके, जिसमें भारतीय संस्कृति की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हो सके, जो इस विशाल देश की प्रशासनिक भाषा बनने का दायित्व वहन कर सके। हिन्दी के रूप में इस देश ने राजभाषा के रूप में हिन्दी को प्रतिष्ठित करने के लिए कुछ सांविधानिक प्रावधान किये।

संविधान सभा में, भारतीय संविधान के अंतर्गत हिन्दी को राजभाषा घोषित करने वाला प्रस्ताव दक्षिण भारतीय नेता और विद्वान श्री गोपाल स्वामी अयंगर की तरफ से आया जिसका समर्थन गुजरात के श्री कन्हैया लाल मणिकलाल मुंशी ने किया। इन दोनों विद्वानों ने राजभाषा के रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए एक फार्मूला भी तैयार किया जो **मुंशी आयंगर फार्मूले** के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इस फार्मूले के प्रस्ताव के मसौदे में कहा गया –

'हमारी मूल नीति यह होनी चाहिए कि संघ के कामकाज के लिए हिन्दी देश की सामान्य भाषा हो और देवनागरी सामान्य लिपि हो।' 14 सितम्बर 1949 ई0 को संविधान में राजभाषा सम्बन्धी भाग स्वीकृत हो गया।

भारतीय संविधान के भाग 5, 6 और 17 में राजभाषा संबंधी उपबंध हैं। भाग 17 का शीर्षक राजभाषा है। संविधान के इन भागों में राजभाषा संबंधी निम्नांकित प्रावधान हैं –

(क) भाग–5 : संसद में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा

धारा 120 के अनुसार संसद का कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में किया जाएगा, लेकिन लोकसभा का अध्यक्ष या राज्यसभा का सभापति किसी सदस्य को उसकी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुमति दे सकता है। यदि संसद विधि द्वारा उपबंध न करे तो संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद 'या अंग्रेजी' में शब्द का लोप किया जा सकेगा।

(ख) **भाग–6 : विधानमंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा**

धारा 210 के अनुसार राज्यों के विधानमंडलों का कार्य अपने अपने राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिन्दी या अंग्रेजी में किया जा सकता है। लेकिन विधानसभा का अध्यक्ष या विधान परिषद् का सभापति किसी सदस्य को उसकी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुमति दे सकता है। अगर राज्य विधानमंडल विधि द्वारा उपबंधन करे तो 15 वर्ष की अवधि के पश्चात् या अंग्रेजी में शब्दों का लोप किया जा सकेगा।

(ग) **भाग–7 : संघ की भाषा**

इस भाग को कुल नौ धाराओं में बांटा गया है। धारा 343 से 351 के अंतर्गत राजभाषा हिन्दी की सांविधानिक स्थिति को स्पष्ट किया गया है। इस भाग में कुल चार अध्याय हैं जो क्रमशः निम्नांकित शीर्षकों में विभक्त हैं :

1. संघ की भाषा
2. प्रादेशिक भाषाएं
3. उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों की भाषाएं एवं
4. विशेष निर्देश

धारा 343

1. संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी और भारतीय अंकों का रूप अंतर्राष्ट्रीय होगा।
2. शासकीय प्रयोजनों में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग 15 वर्ष की अवधि तक किया जाता रहेगा, परन्तु राष्ट्रपति इस उपबन्ध के दौरान किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के साथ हिन्दी भाषा का प्रयोग अधिसूचित करवा सकता है।
3. संसद उक्त 15 वर्ष की अवधि के पश्चात् विधि द्वारा अंग्रेजी भाषा या देवनागरी अंकों का प्रयोग किन्हीं प्रयोजनों के उपबन्ध कर सकेगी।

धारा 344 : राजभाषा के विकास के लिए आयोग एवं संसदीय समिति :

1. इस संविधान के प्रारंभ से 5 वर्ष की समाप्ति पर राष्ट्रपति एक आयोग गठित करेगा जो निश्चित की जाने वाली एक प्रक्रिया के अनुसार राष्ट्रपति को सिफारिश

करेगा कि शासकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी का प्रयोग अधिकाधिक किया जा सकता है। ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा एक आयोग को गठित करेगा जो एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जिनको राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

2. यह आयोग न्यायालयों में प्रयुक्त होने वाली भाषा के स्वरूप, संघ और राज्य के बीच की भाषा अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच पत्रव्यवहार के सम्बन्ध में अपनी सिफारिश राष्ट्रपति को देगा।

3. आयोग भारत की औद्योगिक सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोकसेवाओं के सम्बन्ध में अहिन्दीभाषी क्षेत्रों के न्यायसंगत दावों एवं हितों का ध्यान रखेगा।

4. आयोग की सिफारिश पर संसद की एक समिति अपनी राय राष्ट्रपति को देगी। इसके पश्चात् राष्ट्रपति उस सम्पूर्ण रिपोर्ट के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश जारी कर सकेगा।

धारा 345 : राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं

किसी राज्य का विधान मण्डल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली या किन्हीं अन्य भाषाओं को या हिन्दी को शासकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकार कर सकेगा। अगर किसी राज्य का विधान मण्डल ऐसा नहीं कर पाएगा तो अंग्रेजी भाषा का प्रयोग यथावत् किया जाता रहेगा।

धारा 346 : विभिन्न राज्यों एवं राज्य–संघ के बीच पत्रादि राजभाषा :

संघ द्वारा प्राधिकृत भाषा एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ की सरकार के बीच आदि की राजभाषा होगी। यदि राज्य परस्पर हिन्दी भाषा को स्वीकार करेंगे तो उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

धारा 347 : राज्य की जनसंख्या के किसी भाग को मांग के आधार पर राज़भाषा के सम्बन्ध में विशेष उपबंध :

यदि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को उस राज्य में (दूसरी भाषा के रूप में) मान्यता दी जाए तो राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या किसी भाग विशेष में शासकीय मान्यता दी जाए।

धारा 348 : उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

1. जब तक संसद विधि द्वारा उपबंध न करे तब तक उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालयों में सारी कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में होगी।
2. संसद के प्रत्येक सदन या राज्य के विधान मंडल के किसी सदन में विधेयकों, अधिनियमों, प्रस्तावों, आदेशों, नियमों एवं राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेशों के प्राधिकृत पाठ अंग्रजी भाषा में होंगे।
3. किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्रवाई के लिए हिन्दी भाषा उस राज्य में मान्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा, परन्तु उस उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय, डिक्री या आदेश पर इस खण्ड की कोई बात लागू नहीं होगी।
4. इस खण्ड की किन्हीं बातों के लिए यदि अंग्रेजी से भिन्न किसी भाषा को प्राधिकृत किया गया हो तो अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

धारा 349 : भाषा से संबंधित कुछ विधियां अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया :

राजभाषा से संबंधित यदि कोई विधेयक या संशोधन पुनः स्थापित या प्रस्तावित करना चाहे तो राष्ट्रपति आयोग की सिफारिशों पर और उन सिफारिशों की गठित रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही अपनी मंजूरी देगा, अन्यथा नहीं।

धारा 350 : आयोगों में प्रयोग की जाने वाली भाषा

प्रत्येक व्यक्ति किसी शिकायत को दूर करने के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी को यथास्थिति, संघ या राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी भाषा में आवेदन करने का हकदार होगा।

350(1) अल्पसंख्यक बच्चों की प्राथमिक शिक्षा उनकी मातृभाषा में दिये जाने की पर्याप्त सुविधा सुनिश्चित की जाएगी।

350(2) भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के लिए राष्ट्रपति एक विशेष अधिकारी को नियुक्त करेगा जो उन वर्गों के सभी विषयों से सम्बन्धित रक्षा के उपाय करेगा और अपनी रिपोर्ट समय समय पर राज्यपाल और राष्ट्रपति को देगा जिस पर संसद विचार करेगी।

धारा 351 : हिन्दी भाषा के विकास के लिए निदेश

संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि हिन्दी भाषा का प्रचार प्रसार बढ़ाये और उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके तथा आठवीं अनुसूची में शामिल सभी भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से अपने शब्द भण्डार को समृद्ध करे।

राजभाषा के प्रयोग की प्रगति

26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू हो गया और उसमें व्यवस्था की गई कि 1965 ई0 तक हिन्दी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया जाएगा। इसके बाद राष्ट्रपति, राजभाषा आयोग, संसद और सरकार ने आदेश, सुझाव, अनुदेश और नियम निर्धारित किए जिनके द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को सुनिश्चित किया गया।

राष्ट्रपति का आदेश

सन् 1955 में राष्ट्रपति द्वारा यह आदेश जारी किया गया कि जनता के साथ पत्र व्यवहार में प्रशासकीय रिपोर्टों और प्रस्तावों, संसदीय विधियों, सरकारी संधि पत्रों और अंतर्राष्ट्रीय व्यवहारों में अंग्रेजी के साथ हिन्दी को बढ़ावा दिया जाए। इस आदेश के अनुसार गृह मंत्रालय ने एक ज्ञापन के द्वारा सरकार के सभी मंत्रालयों को कतिपय कार्यों में हिन्दी के प्रयोग की सलाह दी, लेकिन यह स्पष्ट कर दिया गया कि अंग्रेजी पाठ ही प्रामाणिक माना जाएगा।

राजभाषा आयोग–1955

राष्ट्रपति ने एक राजभाषा आयोग की नियुक्ति की जिसमें सदस्य थे। इस आयोग ने अपना 13 सूत्री सुझाव प्रस्तुत किया। इन सुझावों में राष्ट्रीय जीवन के सार्वजनिक क्षेत्र में

अंग्रेजी के वर्चस्व को कम करने, पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की गति को तीव्र करने, प्रशासनिक कर्मचारियों को एक निश्चित अवधि के भीतर हिन्दी का कार्य साधक ज्ञान प्राप्त कराने की बात कही गई थी। आयोग ने यह भी सुझाया कि उच्च न्यायालयों का काम क्षेत्रीय भाषाओं में होना चाहिए, संसद और विधान मंडलों में हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का व्यवहार होना चाहिए। प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी का एक अनिवार्य प्रश्न–पत्र रखा जाना चाहिए और हिन्दी के विकास का उत्तरदायित्व सरकार की एक प्रशासकीय इकाई पर डालना चाहिए। आयोग ने हिन्दी को अखिल भारतीय स्तर पर सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित करने और सभी भारतीय भाषाओं में निकटता लाने का भी सुझाव दिया था। लेकिन दुर्भाग्यवश संकल्प शक्ति के अभाव के कारण सरकार ने इन सुझावों पर अमल नहीं किया।

संसद की राजभाषा समिति के सुझाव–1959

आयोग की सिफारिशों एवं सुझावों को लगभग निरस्त करते हुए समिति ने प्रकारांतर से अंग्रेजी के प्रयोग को अनन्तकाल के लिए मुक्त कर दिया। शब्दावली इस प्रकार बनायी गयी कि ऊपर से लगे कि समिति आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर रही है। लेकिन अन्तर्विरोधों से भरे और उलझे वक्तव्यों में उसकी मंशा छिपी नहीं रह सकी। एक स्थान पर समिति कहती है – 'सामान्य रूप से राजभाषा आयोग की सिफारिशों को मान लिया जाए, और दूसरे स्थान पर जब तक हिन्दी इस योग्य नहीं हो जाती, तब तक संसद और राज्यों के विधान मंडलों में विधि निर्माण का कार्य अंग्रेजी में चलता रहे। कानूनों का अंग्रेजी रूप प्राधिकृत माना जाए। उच्च न्यायालय के सभी कार्य अंग्रेजी में हों।

राष्ट्रपति का आदेश–1960

राजभाषा आयोग और संसदीय समिति की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रपति ने आदेश जारी किया जिसमें अप्रत्यक्ष रूप में अंग्रेजी की अनिवार्यता को स्वीकार कर लिया गया। इस आदेश की उपलब्धि तकनीकी शब्दावली एवं विधि कोश आयोग की स्थापना थी। आदेश में अनुवाद के प्रोत्साहन की बात भी कही गई थी। हिन्दी अनुवाद की भाषा बनने लगी।

राजभाषा अधिनियम–1963 (1967 में संशोधित)

संविधान में यह आश्वासन दिया गया था कि 1965 तक हिन्दी को राजभाषा का दर्जा मिल जाएगा, लेकिन सरकार की तुष्टिकरण की नीति और तमिलनाडु एवं बंगाल के हिन्दी विरोधी उपद्रवों के कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संविधान के उन हिस्सों

को लगभग निष्प्राण कर दिया जिनमें हिन्दी की प्राण प्रतिष्ठा की गई थी। आयोगों एवं समितियों के गठन के सुझाव के समानान्तर अंग्रेजी को फलने फूलने का भरपूर मौका दिया गया।

धीरे धीरे हिन्दी दीनहीन अनाथ भाषा के रूप में श्रीहीन हो गई। आश्वासनों की फूलमालाओं से, हिन्दी दिवसों एवं सप्ताहों के नाटक से उसकी उपेक्षा को ढकने की कोशिशें की जाती रही, मगर यह सर्वविदित है कि एक संप्रभु राष्ट्र के पास आज तक व्यावहारिक अर्थों में न तो कोई राष्ट्रभाषा है और न ही राजभाषा। हिन्दी की राजनीति करने वाले राजनेता अंग्रेजी में फलते फूलते रहे। हिन्दी में काम करने की सलाह साल दर साल गृहमंत्रालय से आती रही, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। दरअसल हिन्दी सरकारी भाषा बन कर जीवित रहने की मोहताज नहीं है। वह हजार वर्षों से शासन की नहीं, लोकभाषा बनकर जीवित है। यही उसकी शक्ति है। अगर हिन्दी को सचमुच राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना है तो सभी हिन्दी प्रदेशों में उसे अनिवार्य रूप से सख्ती से राजभाषा के रूप में लागू कर दिया जाना चाहिए। बाकी हिन्दुस्तान फिर स्वयं उसकी छाया को सहर्ष अंगीकार कर लेगा।

राष्ट्रभाषा और राजभाषा में अंतर

भाषा राष्ट्रीय अस्मिता की अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह हमारी परम्पराओं, रीति रिवाजों, भूगोल आदि को सम्भाल कर रखती है।

अंतर के बिन्दु

प्रकृति, राष्ट्रभाषा की प्रकृति अनौपचारिक होती है तो राजभाषा की औपचारिक। राजभाषा पारिभाषिक और प्रयोजन की व्यवस्था से बंधी है। इसका प्रयोग न्यायपालिका, शिक्षा, प्रशासन और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दूसरे देशों के साथ संबंध बनाने के लिए होता है।

प्रयोग और व्यवहार

राष्ट्रभाषा का निर्माण प्रयोग और व्यवहार की एक लंबी प्रक्रिया के द्वारा होता है। एक प्रकार से यह जंगल के बनने की प्रक्रिया है। जिस तरह जंगल अनेक तरह के वृक्षों, ढेर सारे पशु पक्षियों आदि से निर्मित होता है, उसी तरह राष्ट्रभाषा अनेक प्रकार की स्थानीय बोलियों से बनता है। यह गांव के घर के समान है जिसमें मनुष्य, पशु पक्षियों के साथ साथ रहते हैं।

इसके विपरीत राजभाषा कृत्रिम होती है। इसे शासकीय प्रयोजनों के लिए बनाया जाता है। राजभाषा में एक तरह की एकरूपता पायी जाती है। इस कारण इसकी तुलना हम शहर की फ्लैट संस्कृति जिसमें कि सारे मकान एक ही तरह के होते हैं और ऐसे मकानों में सिर्फ मनुष्य रहते हैं।

लोकोक्ति और मुहावरे

राष्ट्रभाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का भरपूर प्रयोग होता है। यह जीवन को स्पंदित करने वाली भाषा है। इसमें जीवन के उत्थान पतन रेखांकित होते हैं। इसके आयतन में बचपन की किलकारियां होती हैं तो बुढ़ापे का अकेलापन और उदासी भी सिमटी है।

राजभाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग नहीं होता है। इसमें शब्दों के अर्थ मूलतः निर्धारित होते हैं। शब्दों के अर्थ में एक तरह का इकहरापन होता है। इस तरह राजभाषा कला निरपेक्ष और स्वप्न निरपेक्ष की भाषा होती है।

विकास

राष्ट्रभाषा का विकास मूलतः आजादी के पहले हुआ है तो राजभाषा की समूची अवधारणा आजादी के बाद विकसित हुई है।

—000—

आज के कंप्यूटर युग में देवनागरी लिपि की सार्थकता

आधुनिक टैक्नोलॉजी के विकास में कंप्यूटर का आविष्कार एक युगांतरकारी घटना है। आज कंप्यूटर टैक्नोलॉजी का उपयोग जीवन के सभी क्षेत्रों में किया जा रहा है। भाषिक अध्ययन और विश्लेषण भी इससे अछूता नहीं रहा। यह एक ऐतिहासिक संयोग ही है कि कंप्यूटर का विकास सर्वप्रथम ऐसे देशों में हुआ, जिनकी भाषा मुख्यतः अंग्रेजी या रोमन लिपि पर आधारित योरोपीय भाषा थी। कदाचित् यही कारण है कि रोमनेतर भाषाओं में कंप्यूटर साधित भाषा विश्लेषण का कार्य कुछ देर से आरम्भ हुआ। इस बात में भी कोई संदेह नहीं है कि रैखिक **(Linear)** लिपि होने के कारण रोमन के माध्यम से सूचना संसाधन का कार्य अपेक्षाकृत सरल भी है। किंतु इस बात का कोई तकनीकी कारण नहीं है कि रोमन लिपि या अंग्रेजी, कंप्यूटर के लिए आदर्श भाषा समझी जाए। वस्तुतः कंप्यूटर की दो संकेतों की अपनी एक स्वतंत्र गणितीय भाषा है और उसी में वे हमारी भाषाओं को ग्रहण करके अपने सारे कार्य करते हैं। इसीलिए कंप्यूटर को किसी भी भाषा या लिपि के लिए अपनाने में कोई तकनीकी बाधा नहीं है।

देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है। भारतीय भाषाएं विश्व की अनेक भाषाओं की तुलना में वाक्य–विज्ञान, ध्वनि विज्ञान और रैखिक दृष्टि से अधिक सुनियोजित है। वस्तुतः देवनागरी का वर्तमान स्वरूप शताब्दियों के प्रयोग पर आधारित क्रमिक विकास का प्रतिफल है। देवनागरी लिपि ध्वन्यात्मक लिपि है। इस प्रकार की लिपि, लिपि के अद्यतन विकास की अंतिम कडी है। लिपि के इतिहास में ध्वन्यात्मक लिपि का स्थान सबसे ऊंचा है।

इसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसकी **वैज्ञानिक वर्ण व्यवस्था**। वर्णों का वर्गीकरण उच्चारण प्रक्रिया और उच्चारण स्थान को ध्यान में रखकर किया गया है।

सबसे पहले स्वर और फिर व्यंजन। स्वरों में भी सबसे पहले ह्रस्व और फिर उसके दीर्घ रूप। पहले मूल स्वर और फिर संयुक्त स्वर।

इसी प्रकार व्यंजनों के भी पांचो वर्ग उच्चारण के अनुसार व्यवस्थित किए गए है। सबसे पहले कंठ का स्थान है, इसलिए कंठ्य ध्वनियों को पहले रखा गया है। फिर क्रम से तालव्य, मूर्धन्य, वर्त्स्य, दंत्य और ओष्ठ्य ध्वनियों को स्थान दिया गया है। इसके विपरीत रोमन और अरबी लिपि में वर्णमाला का क्रम यादृच्छिक है।

देवनागरी लिपि की अन्यतम विशेषता यह है कि इसमें **एक ध्वनि के लिए एक ही ध्वनि प्रतीक है**। यही कारण है कि इस लिपि में लिखी गई भाषा किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा ज्यों की त्यों पढ़ी जा सकती है। इस विशेषता के कारण अन्य भाषा भाषी के लिए इसे सीखना भी कठिन नहीं है। इसके विपरीत रोमन लिपि में एक ही ध्वनि को कई ध्वनि संकेत प्रस्तुत करते हैं। जैसे 'क' के लिए 'C' और 'K'। उर्दू में भी इसी प्रकार कठिनाई होती है। जैसे जे, ज़ाल, ज़ोय, ज़्वाद, चार ध्वनि प्रतीक एक ही ध्वनि 'ज़े' को प्रस्तुत करते हैं।

अमरीकी वैज्ञानिक **श्री रिक ब्रिग्ज़** की यह धारणा है कि संस्कृत भाषा कंप्यूटर प्रोग्राम की दृष्टि से आदर्श भाषा है। इसलिए देवनागरी लिपि में कंप्यूटर पर कार्य करना कठिन नहीं है, किंतु आवश्यक सॉफ्टवेयर के अभाव में 1965 से पूर्व इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। सर्वप्रथम अमेरिका में ज़ीरोक्स कॉर्पोरेशन के सहयोग में श्री जोज़फ डी बेकर ने इस दिशा में आरंभिक प्रयास किए। उन्होंने चीनी, जापानी, हिब्रू, हिंदी, पंजाबी, उर्दू आदि अनेक भाषाओं में सर्वप्रथम शब्द संसाधन का कार्य आरंभ किया। 'स्टार' नाम से प्रचलित इस प्रणाली के अंतर्गत मूल पाठ का कुंजीयन रोमन लिपि में करके अपेक्षित लिपि में उसका लिप्यंतरण और मुद्रण किया जाता है। इस प्रकार भारतीय भाषाओं से संबंधित पाठ्य सामग्री का भाषिक विश्लेषण अब तक रोमन लिपि के माध्यम से ही किया जाता रहा है। रोमन लिपि के माध्यम से निरूपण करने से उत्पन्न अधिकांश समस्याओं का मूल कारण यह था कि रोमन लिपि ध्वन्यात्मक लिपि नहीं है, जबकि अधिकांश भारतीय लिपियां अपने स्वरूप में ध्वन्यात्मक हैं। इसमें संदेह नहीं कि कुछ ध्वन्यात्मक प्रतीकों को जोड़ने से हमें रोमन लिपि के माध्यम से पाठों के निवेश और निर्गम से सरलता भी मालूम पड़ेगी, क्योंकि हम अभी दैनिक जीवन में रोमन के माध्यम से विभिन्न प्रकार के कार्य करने के अभ्यस्त हो चले हैं, किंतु भारतीय भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों को ज्यों का त्यों व्यक्त करने में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं।

भारतीय वर्णमाला के क्रम के अनुसार अनुक्रमणिका तैयार करने में भी कठिनाई होगी। इसके अलावा भाषाओं के विश्लेषण और संसाधन के लिए रोमन लिपि का ज्ञान अपरिहार्य हो जाएगा, जिसके फलस्वरूप अंग्रेज़ी ज्ञान न रखने वाला आम भारतीय, कंप्यूटर पर अपनी भाषाओं के माध्यम से कार्य न कर सकेगा।

'विविधता में एकता' भारतीय भाषाओं और लिपियों की मूलभूत विशेषता है। इस मूलभूत एकता को कंप्यूटर वैज्ञानिकों ने भी पहचाना है और तदनुसार सभी भारतीय भाषाओं के लिए समान कुंजीपटल का विकास किया गया है। वस्तुतः किसी भी लिपि का अक्षर एक प्रतीक होता है। वह दो प्रकार के संदेशों का वहन करता है। बाहरी और आंतरिक संदेश। बाहरी संदेश उस प्रतीक का रेखीय (ग्राफ़िक) स्वरूप होता है और आंतरिक संदेश वर्णमाला के अक्षर के रूप में होता है। यह एक विशिष्ट ध्वनि को दर्शाता है। जैसे हिंदी के 'अ' और 'अ' अक्षर रेखीय दृष्टि से भिन्न हैं, किंतु हम उन्हें एक ही अक्षर के रूप में पहचानते हैं। जबकि उनका आंतरिक संदेश ध्वनि के रूप में एक ही है। सभी भारतीय भाषाओं में वर्णमाला का क्रम समान होने के कारण उनका आंतरिक संदेश भी समान ही होता है, किंतु रेखीय रूप में बाहरी संदेश में कमोबेश भिन्नता रहती है। इस मूलभूत आंतरिक समानता को केंद्र में रखकर ही इलैक्ट्रॉनिकी विभाग, भारत सरकार ने सभी भारतीय भाषाओं (उर्दू को छोड़कर) के लिए समान कोड स्वीकार किया है। यह कोड वस्तुतः अंग्रेजी के मानक आस्की–7 (ASCII-7) कोड का विस्तृत रूप है। इसे **इस्की–8 (ISCII-8)** कोड कहा जाता है। इसमें रोमन लिपि के सभी अक्षरों को भी समाहित किया गया है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस तकनीक के माध्यम से किसी भी भारतीय लिपि के ज़रिये सभी भारतीय भाषाओं के अध्ययन–विश्लेषण का कार्य किया जा सकता है।

भारतीय भाषाओं में परस्पर-लिप्यंतरण इस तकनीक की अन्यतम विशेषता है। इससे पुस्तकालयों में विभिन्न भारतीय भाषाओं की पुस्तकों की अनुक्रमणिका तैयार की जा सकती है। कोश निर्माण के लिए भारतीय वर्णमाला के अनुसार अक्षरों का अनुक्रम भी बनाया जा सकता है। पर्यायवाची कोश या थिसॉरस के लिए अपेक्षित समनुक्रमणिका (Concordance) का निर्माण भी हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में किया जा सकता है।

वस्तुतः देवनागरी लिपि की अनंत संभावनाओं का स्रोत उसके वैज्ञानिक स्वरूप में ही निहित है। इसका प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि विश्व के अनेक उन्नत देशों में आज कंप्यूटर के माध्यम से वाक् संश्लेषण और अभिज्ञान के प्रयास किए जा रहे हैं, किंतु इस संदर्भ में जो आशातीत सफलता हिंदी के संदर्भ में प्राप्त हुई है, वह कदाचित् अन्य भाषाओं और लिपियों के संदर्भ में असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। इलैक्ट्रॉनिकी विभाग, भारत सरकार के सहयोग से आई.आई.टी. मद्रास में एक प्रणाली का विकास किया जा रहा है, जिसके माध्यम से हिंदी भाषा में उच्चरित वाक्यों को कंप्यूटर की सहायता से नागरी लिपि में अंतरित किया

जाएगा और इसी प्रकार नागरी लिपि में अंकित पाठों को कंप्यूटरों के मॉनिटर पर कुंजीयन करके ध्वनि में रूपांतरित किया जाएगा। इन दोनों ही परियोजनाओं में आंशिक सफलता मिलने लगी है। इस सफलता का मुख्य कारण है, नागरी लिपि की वैज्ञानिकता। इससे यह स्पष्ट है कि आज के कंप्यूटर युग में देवनागरी लिपि की सार्थकता असंदिग्ध है।

मानक टाइपराइटर

आधुनिक सरकारी अथवा गैर–सरकारी कार्यालयों, शिक्षा संस्थानों आदि में टाइपराइटर का कितना महत्व है, यह किसी से भी छिपा नहीं है। टाइपराइटरों के कारण ही अधिकांश लेखन कार्य निम्नतम् समय में शुद्ध रूप से तथा अपेक्षित प्रतियों में प्रस्तुत किया जा सकता है। वास्तव में टाइपराइटर का आविष्कार भी कार्यालय के कार्यों को ध्यान में रखकर किया गया था, इससे कार्यालयीन कार्यों के संपादन में उल्लेखनीय प्रगति हुई। अनेक प्रयोगात्मक टाइपमशीनों के निर्माण के उपरांत ही वर्तमान टाइपराइटर का निर्माण हुआ था। आज से सौ वर्ष पूर्व सन् 1896 ई0 में मेसर्स अंडरवुड कंपनी ने अंग्रेजी मानक टाइप मशीन का सर्वांगपूर्ण दशा में निर्माण किया और तत्पश्चात अंग्रेजी में टाइपराइटर निर्माताओं की भरमार लग गयी। संप्रति अंग्रेजी में अनेकानेक कंपनियों के टाइपराइटर उपलब्ध हैं, जबकि भारतीय भाषाओं में आज भी उनकी उपलब्धि नगण्य है। अंग्रेजी में रैमिंगटन, रायल, एल.सी. स्मिथ, वुडस्टाक, इम्पीरियल, हालडा, हरमिस, ओलंपिया, ओलिबेत्ती, फैसिट, गोदरेज आदि अनेक कंपनियों के टाइपराइटर हैं जो सादे और तकनीकी दोनों ही प्रकार के हैं, जबकि देवनागरी में गोदरेज और रैमिंटन को छोड़कर अन्य कंपनियों के मैनुअल टाइपराइटर नहीं हैं। रैमिंगटन और गोदरेज में भी केवल सादे टाइपराइटर ही उपलब्ध हैं, तकनीकी प्रकार के टाइपराइटर नहीं हैं। वर्तमान संगणक प्रौद्योगिकी के उद्भव से पूर्व उक्त कार्यों के लिए टाइपराइटर का ही सर्वाधिक उपयोग होता था। यद्यपि इनमें से कई समाप्तप्राय है, फिर भी भारत के अधिकांश कार्यालयों, शिक्षा संस्थानों आदि में आज भी अनेक टाइपराइटरों का ही सर्वाधिक उपयोग होता है क्योंकि संगणक प्रौद्योगिकी का अभी भी देश में अपेक्षित स्तर पर प्रसार नहीं हो पाया है।

देवनागरी टाइपराइटर का मानक कुंजीपटल, भारत सरकार ने सन् 1962 में बनाया और तब से देवनागरी की मानक मशीनें बनने लगीं। संप्रति देवनागरी में निम्नांकित टाइपराइटर सुविधाएं उपलब्ध हैं :

1. मैनुअल टाइपराइटर
2. इलेक्ट्रीक टाइपराइटर तथा
3. इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर

मैनुअल तथा इलेक्ट्रक टाइपराइटर केवल एक ही लिपि में काम करते हैं, जब कि इलैक्ट्रानिक टाइपराइटरों में एक ही मशनी में डेजी व्हील बदल कर एक से अधिक लिपियों और भाषाओं में टाइप करने की सुविधा है। इसे द्विभाषिक टाइपराइटर कहते हैं। इनमें स्मृति, स्वचालित त्रुटिसुधार, मोटे अक्षरों में टाइप करने आदि की संवर्धित सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। अधिकांश मशीनों में संगणक की भांति प्रपट्ट लगे होते हैं जो एक पंक्ति अथवा बहुपंक्ति के प्रदर्शन की सुविधा प्रदान करते हैं। यद्यपि इन टाइपराइटरों के प्रपट्ट संगणक प्रपट्ट से आकार में काफी छोटे और भिन्न प्रकार के होते हैं। तथापि इन प्रपट्टों के माध्यम से पाठांश को मुद्रणपूर्व देखा और आवश्यकतानुसार संपादित किया जा सकता है। विभिन्न टाइपराइटरों में पाठांश को संग्रहित करने के लिए स्मृति की सुविधा भी उपलब्ध है जिसकी क्षमता विभिन्न मॉडलों पर निर्भर करती है। इन स्मृतियों में एकपृष्ठ सामग्री से लेकर चालीस पृष्ठ तक की सामग्री संचित की जा सकती है। स्मृति को बढ़ाने की भी सुविधा उपलब्ध है। कुछ मॉडलों में अलग से चक्रिकाचालक लगाने की भी सुविधा है। इससे इसकी स्मृति क्षमता काफी हद तक बढ़ जाती है। भारत में हिन्दी अथवा हिन्दी–अंग्रेजी द्विभाषिक इलेक्ट्रानिक टाइपराइटरों के निर्माताओं में गोदरेज, नेटवर्क लि., फोरबेस–फोरबेस कैम्पबेल एण्ड कं.लि. तथा मैसर्स मोदी बिजनेश मशीन का प्रमुख स्थान है। किन्तु जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, इन टाइपराइटरों में तकनीकी टाइपिंग की सुविधा नहीं है क्योंकि इनमें उपलब्ध लिपि में तकनीकी प्रतीकों और चिन्हों का सर्वथा अभाव है, और इसी कारण तकनीकी लेखन के क्षेत्र में इनका पर्याप्त उपयोग नहीं हो पाता है। तकनीकी हिन्दी के प्रयोग के लिए यह एक प्रकार की मुख्य समस्या मानी जा सकती है। तकनीकी हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए यदि इन टाइपराइटरों के डेजी–व्हील में देवनागरी सहित रोमन एवं ग्रीक अक्षरों की भी समुचित अथवा वैकल्पिक व्यवस्था साथ–साथ की जा सके तो इनका समुचित उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।

पतालेखी मशीन / टेलीप्रिंटर / टेलेक्स:

मुद्रण प्रौद्योगिकी में पतालेखी मशीनों, टेलीप्रिंटरों और टेलेक्स मशीन का भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। पतालेखीमशीन द्वारा पताविवरणियां, सूचियां, बिजली तथा पानी के बिल,

बीमा, परिपत्र, पहचान टोकन आदि छापे जा सकते हैं। इसी प्रकार टेलीप्रिंटर और टेलेक्स से सूचनाओं का आदान–प्रदान किया जा सकता है और इनका उपयोग सर्वविदित है। देवनागरी में पतालेखी मशीन का निर्माण मेसर्स ब्राडमा ऑफ इंडिया लिमिटेड द्वारा किया गया है। इसी प्रकार देवनागरी में इलेक्ट्रोमैकेनिकल टेलीप्रिंटर भी उपलब्ध है और देश के अधिकांश तारघरों में उपलब्ध हैं। कुछ कंपनियों ने संगणक अंतकों को भी टेलीप्रिंटरों की तरह उपयोग करने की सुविधा प्रदान की है। भारत सरकार के उपक्रम सी एम सी लिमिटेड ने विस्तारित प्रौद्योगिकी वैयक्तिक (PC/XT) संगणक पर आधारित संचार अंतक बनाया है जिसे टेलीप्रिंटर/टेलेक्स मशीनों के साथ जोड़कर द्विभाषिक रूप में संदेश भेजने और प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

संगणक पर उपलब्ध द्विभाषिक सुविधाएं

शैक्षणिक, प्रशासनिक एवं व्यावसायिक कार्यों हेतु प्रयुक्त अधिकांश संगणक एम एस–डॉस आधारित आई.बी.एम. समकक्ष या यूनिक्स/जिनिक्स पर आधारित लघु संगणक की श्रेणी के हैं। अब इस प्रकार के किसी भी संगणक को द्विभाषिक (रोमन और देवनागरी) ही नहीं बहुभाषिक रूप में भी प्रयोग में लाया जा सकता है। संगणकों का प्रयोग मुख्यतया आंकड़ों के संसाधन तथा शब्द संसाधन के लिए किया जाता है। आई.बी.एम. वैयक्तिक संगणक और समकक्ष संगणकों पर आंकड़ों के संसाधन तथा शब्द संसाधन में द्विभाषिक सुविधा उपलब्ध कराने के लिए निम्नांकित दो विकल्प उपलब्ध हैं

प्रक्रियासामग्री (सॉफ्टवेयर) विकल्प

विशेष प्रकार की प्रक्रियासामग्री पैकेजों का प्रयोग करके द्विभाषिक शब्द संसाधन सुविधा प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए संगणक में किसी प्रकार के आंतरिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। आई.बी.एम. वैयक्तिक संगणकों पर द्विभाषिक और बहुभाषिक शब्द संसाधन के लिए अनेक पैकेज बाजार में उपलब्ध हैं। द्विभाषिक कार्य में सुविधा के लिए इन पैकेजों पर मुद्रण के लिए केवल डॉट–मैट्रिक्स अथवा लेजर मुद्रित्रों का ही उपयोग किया जा सकता है। लाइन मुद्रित्रों का देवनागरी छपाई के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। आंकड़ों के संसाधन के लिए द्विभाषिक संकलक तथा आंकड़ासंचय प्रबंधन तंत्र उपलब्ध हैं। इनका भी केवल डॉट–मैट्रिक्स अथवा लेजर मुद्रित्रों के साथ ही प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न संगणक भाषाओं जैसे सी, बेसिक कंपाइलर तथा देवबेस (द्विभाषिक आंकड़ासंचय

प्रबंधन तंत्र) आदि तैयार किए गये हैं। अनम्यिका (फ्लॉपी) से "सुलिपि" प्रक्रिया सामग्री के प्रयोग द्वारा बिना किसी परिवर्तन के वैयक्तिक संगणक क्रमादेशों को द्विभाषिक (हिन्दी तथा अंग्रेजी) रूप से चलाया जा सकता है। डी–बेस, लोटस्, कोबोल, पास्कल इत्यादि मानक पैकेजों को "सुलिपि" प्रक्रियासामग्री द्वारा द्विभाषिक रूप में चलाया जा सकता है। यह इलेक्ट्रॉनिकी विभाग द्वारा मानकीकृत देवनागरी के कुंजीपटल तथा हिन्दी के मैनुअल टाइपराइटर के कुंजीपटल, दोनों के सुसंगत है। गिलिस संगणक पर द्विभाषिक रूप में कार्य करने के लिए पूर्णरूप से प्रक्रियासामग्री आधारिक सुविधा उपलब्ध है। यह एचजीए/बीजीए/सीजीए तथा मोनोक्रोम मॉनिटर लगे पीसी/एक्सटी/एटी/386/486/ पेंटियम आदि पर डॉस में काम करता है तथा इलेक्ट्रॉनिकी विभाग, भारत सरकार द्वरा मानकीकृत देवनागरी कुंजीपटल व मैनुअल टाइपराइटर के कुंजीपटल दोनों के सुसंगत है। इसमें "इस्की" (INDIAN STANDARD CODE FOR INFORMATION INTERCHANCE अर्थात् सूचना विनिमय हेतु भारतीय मानक कूट) का प्रयोग किया गया है।

बेसिक, डी–ऐस–III तथा वर्डस्टार में द्विभाषिक (हिन्दी–अंग्रेजी) वाक्यरचना त्रुटियों की संख्या उपलब्ध कराने के लिए "मित्रा" नामक एक प्रक्रियासामग्री का विकास किया गया है जिसे स्मृति में संचित किया जा सकता है। यह प्रक्रियासामग्री एक ऑन–लाइन सहायक तंत्र के रूप में कार्य करती है। क्रमादेशकों द्वारा अपनी भाषा में क्रमादेश का कार्य करते समय संबंधित विषय के लिए इसकी सहायता ली जा सकती है। केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर ने "रोम–चिप" नामक एक अन्य सुविधा का विकास किया है। इसके द्वारा किसी भी भाषा को हिन्दी/मराठी/संस्कृत भाषाओं में पढ़ाया जा सकता है। इन भाषाओं में किसी भी विषय के शब्द संसाधन की सुविधा भी दी गयी है।

"ओशो कम्यून इंटरनेशनल, पुणे" ने एक हिन्दी वर्तनी जांचक (ओशा स्पैल बाइंडर) तथा हिन्दी शब्द कोष (हिन्दी शब्द सागर) का विकास किया है। इसका प्रयोग ऐपल मैकिन्टॉश संगणकों पर किया जा सकता है। वर्तनी जांचक एक हिन्दी प्रूफ रीडर है जो 1000 शब्द प्रतिमिनट की गति से जांच कार्य कर सकता है और इस प्रकार तैयार किया गया है ताकि उसके द्वारा प्रचालन में आने वाली त्रुटियों को दूर किया जा सके तथा गलत वर्तनी के शब्दों में सुधार लाया जा सके। इसके शब्दकोश में 1,20,000 शब्दों को संचित करने की क्षमता है। इसके क्रमादेश को संपादित कर अद्यतन करने की भी सुविधा है ताकि यह ऐपल संगणकों पर किसी भी प्रकार के कुंजीपटल विन्यास पर कार्य कर सके।

पुणे स्थित सी–डैक द्विभाषिक अथवा बहुभाषिक प्रक्रिया सामग्री के क्षेत्र में अग्रणी है। इसने स्क्रिप्ट और इन्स्क्रिप्ट कुंजीपटलों के आधार पर कार्य करने वाले कई पैकेजों का विकास किया है। इनमें जिस्ट टर्मिनल, लिप्स, मल्टी प्राम्प्टर, मूमव, बटरफ्लाई, अल्प (ALP), आई.एस. एम. इन्फोस्क्रिप्ट मैनेजर, जिस्ट सेल, लिपि आदि का समावेश है। सी–डैक के ये सभी उत्पाद बहुभाषी माहौल में तथा अपनी विशिष्टताओं के अनुरूप अब तक के उपलब्ध अधिकांश अन्तर्राष्ट्रीय प्रक्रिया सामग्रियों के सुसंगत तथा स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकते हैं। इन प्रक्रिया सामग्रियों के माध्यम से लगभग सभी भारतीय लिपियों जैसे असमी, बंगला, देवनागरी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, तमिल तथा तेलुगु एवं कुछ विदेशी लिपियों जैसे अंग्रेजी, सिंहली तथा तिब्बती में भी कार्य कर सकते हैं।

सी–डैक, ने एक हिन्दी वर्तनी जांचक प्रक्रियासामग्री का भी विकास किया है जो कि जिस्टकार्ड पर स्क्रिप्ट संसाधक के साथ चलाया जा सकता है। यह स्वराधारित गलत वर्तनी के हिन्दी शब्दों के सही विकल्प भी सुझाता है। यह 'इस्की' तथा पीसी–इस्की दोनों वर्णक्रमों का प्रयोग कर सकता है। सी–डैक द्वारा विकसित एक अन्य तकनीक द्वारा वीडियो निर्माण के लिए ग्रॉफिक्स के साथ बहुलिपीय पाठ में रंगीन "शीर्षक/कैप्सन" तैयार किए जा सकते हैं; इसमें अनेकों कार्ड तथा आई.बी.एम. वैयक्तिक संगणक के लिए प्रक्रियासामग्री होती है। "स्क्रिति" पोस्ट–स्क्रिप्ट–फॉण्टस मैकिन्टॉश संगणकों पर स्वराधारित कुंजीपटल के साथ प्रयोग में लाये जाते हैं। "अमृत", "अभिलाषा" तथा "बसंत" आदि हिन्दी के फाण्टस, ओशो कम्यून इंटरनेशनल, पुणे द्वारा विकसित किए गये हैं जो ऐपल मैकिन्टॉश संगणकों पर प्रयोग किये जा सकते हैं। इनका विकास सुन्दर और आकर्षक छपाई को ध्यान में रखकर किया गया है। एसीईएस कन्सल्टेण्टस् द्वारा विकसित आकृति '96 प्रक्रियासामग्री में हिन्दी के अनेकों फॉयटस विकसित किए गये हैं जो विविध कुंजीपटलों का विकल्प, टाइपिंग गति तथा विन्डो, डॉस आदि संकलकों पर सुसंगतता की सुविधा प्रदान करता है। इस प्रक्रियासामग्री विकल्प पर अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द संसाधन की भी सुविधा उपलब्ध है।

इसी प्रकार सॉफ्टेक द्वारा विकसित "अक्षर" तथा "अक्षर फॉर विन्डोस' पैकेज (हिन्दी–अंग्रेजी) द्विभाषिक शब्द संसाधन की सुविधा प्रदान करते हैं। ये डॉस और विण्डो आधारित स्वतंत्र पैकेज हैं जिनमें द्विभाषिक कार्य करने की बहुत अच्छी सुविधा उपलब्ध है। एक अन्य प्रक्रियासामग्री "शब्दमाला" में भी देवनागरी शब्द संसाधन की सुविधाएं उपलब्ध हैं। इसी प्रकार मेसर्स पी.एस.एस. कम्प्यूटर्स इंजी.कं.प्रा.लि. की एपीएस कार्पोरेट ऑफिस 1.

0 तथा मोजैक नामक प्रक्रिया सामग्री भी हिन्दी में द्विभाषिक शब्द संसाधन की सुविधा प्रदान करते हैं। संप्रति संगणक प्रौद्योगिकी के इस क्षेत्र में अन्य अनेक द्विभाषिक प्रक्रियासामग्रियां बाजारों में उपलब्ध हैं जो देवनागरी में टाइपिंग की सुविधाएं प्रदान करती है। भारत में प्रक्रियासामग्री का क्षेत्र बड़ी तेजी से विकसित हो रहा है। ऐसी संभावना और आशा व्यक्त की जा सकती है कि विवेच्य समस्या के समाधान में यह एक सशक्त और सस्ता माध्यम साबित होगा।

यंत्रसामग्री विकल्प

संगणक के आंतरिक यांत्रिकीय भाग को यंत्र–सामग्री कहते हैं। इन्हीं आंतरिक यंत्रसामग्रियों में कुछ आवश्यक परिवर्तन करके भी द्विभाषिक सुविधा प्राप्त की जा सकती है। यह परिवर्तन मशीन में जिस्ट (GRAPHICS AND INTELLEGENCE BASED SCRIPT TECHNIC अर्थात आलेखिकी एवं बुद्धिमत्ता आधारित लिपि तकनीक) प्लग–इन–कार्ड लगाकर किया जाता है। इस कार्ड की सहायता से आई.बी.एम. वैयक्तिक संगणक पर शब्द संसाधन तथा आंकड़ों के संसाधन के लिए प्रचलित सभी सामान्य रोमन पैकेजों का प्रयोग द्विभाषी तथा बहुभाषी रूप में किया जा सकता है। इस कार्ड के साथ डॉट–मैट्रिक्स तथा लेजर मुद्रित्रों का प्रयोग किया जा सकता है। इलेक्ट्रानिकी विभाग भारत सरकार द्वारा प्रयोजित परियोजना के अन्तर्गत इस कार्ड का विकास भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर द्वारा किया गया है। फिलहाल यह कार्ड सी–डैक पुणे द्वारा निर्मित किया जा रहा है। इस कार्ड के माध्यम से सभी भारतीय, फारसी, अरबी, थाई, तिब्बती, सिंहली तथा यूरोपीय लिपियों में डॉस आधारित डी–बेस, लोटस 1–2–3, वंडरस्टार आदि पैकेजों में द्विभाषिक अथवा बहुभाषिक रूप में कार्य किया जा सकता है।

जिस्ट आधारित अंतक लगाकर यूनिक्स/जिनिक्स आधारित तंत्रों पर द्विभाषिक क्षमता प्राप्त की जा सकती है। यह अंतक उन संगणकों से भी जोड़ा जा सकता है, जिसमें अन्तरापृष्ठ उपलब्ध है। सभी मानक रोमन पैकेजों का द्विभाषिक अथवा बहुभाषिक रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जिस्ट अंतक ANSI (VT-52, VT-100, VT-200, VT-300) के भी सुसंगत है। यह सभी डॉट–मैट्रिक्स, लाइन तथा लेजर जेट मुद्रित्रों के सुसंगत छपाई की सुविधा प्रदान करता है। लाइन मुद्रित्र का इसके साथ प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

कुंजीपटल

संगणक विभिन्न युक्तियों के संयोग से निर्मित एक पूर्ण तंत्र है। यंत्रसामग्री, मॉनिटर तथा मुद्रित्र सहित कुंजीपटल भी इसका एक महत्वपूर्ण अंग है। यह वास्तव में एक निवेश युक्ति है जिसके माध्यम से संगणक को क्रमादेश दिए जाते हैं और आंकड़ों का निवेश किया जाता है। संगणक के मानक अंग्रेजी कुंजीपटल के विपरीत हिन्दी में मुख्यतः दो प्रकार के कुंजीपटल हैं। एक कुंजीपटल स्वराधारित है जिसका विकास और मानकीकरण इलेक्ट्रॉनिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा किया गया है और दूसरा कुंजीपटल मैनुअल टाइपराइटर के कुंजीपटल के सदृश है। इसे सामान्यतः टाइपराइटर मोड कुंजीपटल कहते हैं। संगणक के क्षेत्र में उपलब्ध सभी द्विभाषिक प्रक्रिया सामग्रियों और यंत्र सामग्री आधारित जिस्ट कार्ड सुविधाओं में इन दोनों ही प्रकार के कुंजीपटलों के प्रयोग के विकल्प की सुविधा प्रदान की गयी है। निवेश युक्ति के रूप में चूहा और उत्तोलक भी उपलब्ध हैं। सुसंगत पैकेजों में इनका भी प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार अभी हाल ही में सी–डैक पुणे ने एक कुंजीपटल का विकास किया है। यह कुंजीपटल यद्यपि स्वराधारित कुंजीपटल है, तथापि सभी भारतीय लिपियों के लिए यह एक मानक कुंजीपटल का भी काम करता है। इसके पूर्व सभी भारतीय भाषाओं के लिए कोई मानक कुंजीपटल नहीं था किन्तु इस नये आविष्कार ने उक्त समस्या का समाधान कर दिया है।

डेस्क टॉप प्रकाशन तंत्र (डीटीपी)

प्रकाश एवं टाइप सेटिंग के क्षेत्र में संगणक का उल्लेखनीय योगदान है। छोटे वैयक्तिक संगणकों के द्वारा दस्तावेजों का लघु एवं विस्तृत प्रारूप तैयार किया जा सकता है। इसके पश्चात इन दस्तावेजों को लेजर मुद्रित्र पर छापा जा सकता है। ऐसे संगणक युक्त लेजर मुद्रण प्रणाली को "लघु प्रकाशन तंत्र" अथवा डेस्क टॉप प्रिंटिंग (डी.टी.पी.) कहते हैं। आज भारत में अनेक कंपनियां डी टी पी बना रही हैं और लगभग सभी तंत्रों के साथ देवनागरी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में छपाई संभव है। कुछ कंपनियों ने ऐसे इलेक्ट्रानिक कार्ड का भी विकास किया है जिसमें वैनचुरा और पेजमेकर भी देवनागरी में चलाए जा सकते हैं। नये–नये फॉण्टों के विकास से अब MS-WORD आदि पैकेजों में देवनागरी में शब्द संसाधन एवं छपाई की सुविधाएं उपलब्ध हैं। इन लघु प्रकाशन तंत्रों में व्यापक पैमाने पर टाइप फॉण्टस और अन्य सुविधाएं उपलब्ध हैं जिससे प्रकाशनों को आकर्षक बनाया जा सकता

है। कुछ प्रमुख डेस्क टॉप प्रकाशन तंत्रों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है जैसे – एप्पल (प्रक्रियासामग्री एवं यंत्रसामग्री दोनों), प्रकाशक (केवल प्रक्रियासामग्री), वीनस (केवल प्रक्रियासामग्री), अस्टरीक्स (प्रक्रियासामग्री एवं यंत्रसामग्री), लिनोस स्क्रिप्ट (प्रक्रियासामग्री एवं यंत्रसामग्री दोनों), विजन पब्लिशर माइक्रोसेंस पत्रिका (केवल प्रक्रियासामग्री), अक्षर लेजर कंपोजर (केवल प्रक्रियासामग्री), आकृति (केवल प्रक्रियासामग्री) मौजैक (केवल प्रक्रियासामग्री), आई.एम.एस. इस्फॉक (Script Manager for MS-WINDOWS, Video Graphics, Macintosh) (प्रक्रियासामग्री) आदि।

लिप्यंतरण की सुविधाएं

जिस्ट–प्लग–इन कार्ड और अंतक का प्रयोग करके अब वैयक्तिक संगणक और अन्य संगणकों पर देवनागरी में आंकड़ों का संसाधन संभव हो गया है। फिर भी इन तंत्रों के प्रयोक्ताओं को अपने वर्तमान आंकड़ों को पुनः द्विभाषिक रूप में भरने की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए यांत्रिक अनुवाद और लिप्यंतरण की सुविधाओं का विकास किया जा रहा है। विभिन्न प्रौद्योगिकीय संस्थान तथा शोध संस्थान इस दिशा में शोध कार्य कर रहे हैं तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में परस्पर तथा अंग्रेजी भाषा से यांत्रिकीय अनुवाद संभव कराने की दिशा में शोध कार्य कर रहे हैं। जल्दी ही आशातीत परिणाम मिलने की संभावनाएं हैं। संप्रति राजभाषा विभाग के तकनीकी कक्ष द्वारा जिस्टकार्ड युक्त वैयक्ति संगणकों तथा जिस्ट अंतकों के साथ जिनिक्स पर आधारित तंत्रोंके लिए एक ऐसे प्रक्रिया सामग्री पैकेज का निर्माण किया गया है जो वर्तमान आंकड़ों को 85–90 प्रतिशत शुद्धता के साथ भारतीय भाषाओं में परिवर्तित कर सकता है। रेल्वे सूचना प्रणाली केन्द्र, नई दिल्ली ने भी एक लिप्यंतरण करने वाला पैकेज विकसित किया है जो कि अंग्रेजी शब्द के संभावित हिन्दी रूप भी उपलब्ध कराता है और सीधे संपादन का विकल्प भी प्रस्तुत करता है। "ट्राशनेन" के नाम से इसी तरह का एक अन्य प्रक्रियासामग्री पैकेज सी–डैक, पुणे द्वारा भी तैयार किया गया है जो संज्ञाओं का शब्दकोश तैयार करने की सुविधा प्रदान करता है और डी–बेस संचिका के कुछ चुने हुए क्षेत्र में अंग्रेजी संज्ञाओं के साथ उनके हिन्दी लिप्यंतरण देने की भी सुविधा उपलब्ध कराता है।

सॉफ्टेक एवं अन्य कंपनियों ने भी कुछ इसी तरह के लिप्यंतरणकारी प्रक्रियासामग्री पैकेज तैयार किए हैं जो बाजारों में उपलब्ध हैं। जिनका उपयोग फाक्सप्रो अथवा डी–बेस जैसे

बहुप्रयुक्त और मानक पैकेजों के साथ उपयोग किया जा सकता है। इसका मुख्य उपयोग लेखाकार्य, सूची निर्माण और संज्ञाओं के लिप्यंतरण में होता है।

यांत्रिक सुविधाओं के सृजन की समस्या और समाधान

देवनागरी में उपलब्ध यांत्रिक सुविधाओं की उपलब्धि संबंधी वस्तुस्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि रोमन अथवा अंग्रेजी की तुलना में देवनागरी अथवा हिन्दी में इन सुविधाओं की उपलब्धि नगण्य है। संगणक विज्ञान में जितने भी प्रचालन तंत्र उपलब्ध हैं, अथवा किसी प्रक्रिया सामग्री को चलाने के लिए जितने भी क्रमादेश हैं, संभवतः सभी रोमन में ही हैं। विज्ञान, प्रौद्योगिकी अथवा अभियांत्रिकी हेतु शोध आदि के लिए देवनागरी में प्रक्रियासामग्री की सुविधाएं अंग्रेजी भाषा की तुलना में नगण्य हैं। जो भी सुविधाएं उपलब्ध हैं वे मात्र शब्द संसाधन अथवा आंकड़ासंचय की सुविधाएं हैं। देवनागरी में शब्द संसाधन की जो भी प्रक्रियासामग्री उपलब्ध है उनमें वैज्ञानिक अथवा अभियांत्रिकीय प्रतीकों, चिन्हों आदि को लिखने की सुविधा नहीं है। दूसरे पैकेजों से उन्हें आयात करके प्रयुक्त करने की सुविधाएं भी अत्यल्प हैं। कुंजीपटल की मानकता भी अपर्याप्त है। साथ ही देवनागरी की कतिपय ध्वनियों को समुचित प्रकार से लिखने की भी उचित व्यवस्था नहीं है। इन सारे अभावों अथवा समस्याओं का मूल हमें देवनागरी लिपि की समस्याओं से भी जुड़ा प्रतीत होता है।

देवनागरी लिपि की समस्या भी हिन्दी भाषा के प्रयोग की समस्या के ही सहजात है। वास्तव में यह लिपि की समस्या भी भाषा समस्या की ही उपजात समस्या है और हिन्दी भाषा विरोधी तत्वों द्वारा भाषा विरोध के तकनीकी अड़चन के रूप में प्रस्तुत की जाती रही है। विरोधी तत्वों की अवधारणा के अनुसार देवनागरी तकनीकी दृष्टि से पिछड़ी हुई लिपि है। उनका मानना है कि देवनागरी वर्णों के आकार जटिल हैं, संयुक्ताक्षरों के कारण वे और भी जटिल हो गये हैं क्योंकि उन्हें लिखने की कोई सर्वमान्य पद्धति नहीं है। कभी वे हलन्त लगाकर अगल–बगल लिखे जाते हैं जैसे– व्याख्या, व्दारा, द्वारा, सम्बन्ध, पण्डित, भद्दा आदि और कभी ऊपर–नीचे जैसे द्वारा, संबंध, पंडित, भद्दा आदि। देवनागरी में मात्राओं को लगाने की पद्धति भी उलझनें पैदा करती है और स्वरों को दो प्रकार से लिखा जाता है जैसा कि गत अध्याय में दर्शाया गया है। देवनागरी की कुंजीपटल भी अभी परिनिष्ठित नहीं है। जितने कंपनियों के टाइपराइटर हैं, उनमें वर्णों का विन्यास भी उतने ही ढंग का है। इसीलिए किसी एक टाइपराइटर पर कार्य करने का अभ्यासी दूसरे पर कार्य करने में पर्याप्त

कठिनाई महसूस करता है अथवा कर ही नहीं पाता है। इन यंत्रों में एकरूपता नहीं है। किसी में कुछ विशेष वर्ण नहीं है तो किसी में कुछ और। संयुक्ताक्षरों एवं विराम चिन्हों में भी एकरूपता नहीं है। इसके कारण काम में जो सुविधा, सुगमता और गति होनी चाहिए वह नहीं हो पाती है।" उपलब्ध तकनीकी सुविधाओं का अवलोकन करने पर यह भी कहा जा सकता है कि तकनीकी हिन्दी लेखन हेतु शब्दावली आयोग द्वारा विज्ञान एवं अभियांत्रिकी में प्रयुक्त जिन अंतर्राष्ट्रीय प्रतीकों और चिन्हों आदि को स्वीकार किया गया है। देवनागरी की यांत्रिकी सुविधाओं में चाहे वे मैनुअल हों अथवा स्वचालित, किसी में भी उनकी उचित व्यवस्था नहीं की गयी है। परिणामस्वरूप उन्हें हाथ से ही लिखना पड़ता है। विवेच्य समस्या के संदर्भ में इस लिपिगत कठिनाई को दूर करने के उपाए किये जाने चाहिए।

उपर्युक्त परिच्छेद में देवनागरी लिपि से संबंधित जो भी व्यावहारिक कठिनाइयां अथवा समस्याएं अभिव्यक्त की गयी हैं, ऐसा नहीं है कि उनको सुधारने का प्रयास नहीं किया गया है। हिन्दी भाषा का समर्थन करने वाला वर्ग देवनागरी लिपि की उपर्युक्त कमियों को स्वीकार करते हुए उसमें संभावित सुधारों का संदैव पक्षधर रहा है और वर्षों से उसके लिये प्रयास भी करता रहा है। देवनागरी लिपि की तकनीकी समस्याओं के समाधान हेतु किये गये वैयक्तिक सुधारों के लिए राहुल सांकृत्यायन, डा0 पन्नालाल, डा0 गोरखप्रसाद तथा विनोबा भावे के प्रयासों को उल्लेखनीय योगदान के रूप में लिया जा सकता है। इसी प्रकार संस्थागत प्रयासों में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की (सेवाग्राम लिपि) तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा की (प्रति संस्कृत देवनागरी लिपि) के रूप में प्रस्तावित सुधारों का उल्लेख किया जा सकता है। लिपि सुधार के सरकारी अभियान के रूप में आचार्य नरेन्द्र देव समिति का उल्लेख किया जा सकता है जिसके सदस्यों में डा0 धीरेन्द्र वर्मा, पं0 रमाशंकर द्विवेदी, पं0 चन्द्रशेखर शास्त्री, पं0 भाऊ शास्त्री, डा0 मंगलदेव शास्त्री आदि प्रमुख सदस्य थे। इस समिति का गठन उत्तर प्रदेश सरकार ने 31 जुलाई 1947 में किया था। समिति ने दो वर्षों तक कार्य करके लिपि के संबंध में महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए थे। इसी तारतम्य में 28–29 नवम्बर, 1953 में उत्तर प्रदेश सरकार ने विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों की एक सभा आमंत्रित की थी, जिसके अध्यक्ष डा0 राधाकृष्णन थे। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने सभा का उद्घाटन किया था और अंत में देवनागरी लिपि में सुधार संबंधी आठ प्रस्ताव रखे थे जिनका कथित लिपि के सुधार में उल्लेखनीय महत्व है। इसी प्रकार अनेक अन्य अवसरों पर भी हिन्दी भाषा और लिपि को लेकर अनेकानेक संगोष्ठियां और सम्मेलन होते रहे हैं जिनमें लिपि सुधार संबंधी महत्वपूर्ण

प्रस्ताव किए जाते रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि देवनागरी लिपि के सुधार का अभियान भी समय–समय पर होता रहता है, किन्तु सरकारी तंत्र द्वारा भाषा समस्या को गंभीरता से न लेने के कारण, कालांतर में सारे प्रयास लगभग व्यर्थ सिद्ध होते रहे हैं और यथास्थिति कायम है।

लिपिगत समस्याओं के समाधान हेतु किए गए उपर्युक्त प्रयासों और तत्पश्चात सम्पन्न हुए कार्यों के आलोक में द्रष्टव्य है कि यद्यपि देवनागरी लिपि में सुधार की आवश्यकता लिपि की सभी त्रुटियों को निकाल कर उसकी प्राचीनता और आकार प्रकार की वैज्ञानिकता को कायम रखते हुए आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के उद्देश्य से किया गया है। किन्तु मौलिकता के अभाव में देवनागरी लिपि में अपेक्षित सुधारों का आधार और आदर्श वर्तमान अंग्रेजी टाइपराइटर को बनाया गया है। सुधार की अधिकांश योजनाएं अपने मूल रूप में इसी टाइपराइटर से सम्बद्ध हैं और कथित सुधारकों का प्रयास इसी रोमन टाइपराइटर के अनुकूल देवनागरी लिपि में यथोचित सुधार करना रहा है। कह सकते हैं कि इस दिशा में भी मौलिक प्रयास नगण्य ही रहे हैं जबकि भाषा और लिपि की समस्याओं से सरोकार रखने वाले अधिकांश लोगों का मानना है कि वर्तमान वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय युग की आवश्यकताओं के अनुरूप इस दिशा में किए गए मौलिक प्रयासों का सार्थक और अपेक्षित समाधान मिलने की व्यापक संभावनाएं हैं। इसी दृष्टिकोण का समर्थन अग्रांकित पंक्तियों से भी होता है, हमारी सबसे बड़ी गलती यह रही है कि हम मशीनों को देखकर लिपि सुधार का प्रयत्न करते रहे हैं। संसार में मशीनों का आविष्कार प्रत्येक लिपि के अनुसार हुआ है न कि लिपि का आविष्कार मशीनों के अनुरूप। एतदर्थ देवनागरी लिपि में सृजित यांत्रिक सुविधाओं में मानकता का सर्वथा अभाव है जो उनके समुचित उपयोग को काफी हद तक बाधित करता है।

देवनागरी में उपलब्ध यांत्रिक सुविधाओं की समीक्षा संबंधी उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि फिलहाल अपने देश में इस दिशा में कामचलाऊ सुविधा ही उपलब्ध कराई जा सकी है। तकनीकी हिन्दी के परिप्रेक्ष्य में इस सुविधा को और भी सुदृढ़ करने की अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि विवेच्य समस्या का इससे बहुत गहरा सरोकार है। इस क्षेत्र में संगणक प्रौद्योगिकी के समुचित और इष्टतम उपयोग से समस्या का समाधान काफी सहज प्रतीत होता है किन्तु कथित संगणक प्रौद्योगिकी के इष्टतम उपयोग की क्षमता अर्जित करने की अनिवार्य आवश्यकता है।

—000—

हिन्दी की विभिन्न बोलियों का परस्पर अन्तःसंबंध

कोई भी 'भाषा' वास्तव में विभिन्न बोलियों का समष्टि–रूप होती है। इस प्रकार वर्तमान (परिनिष्ठित–मानक) हिन्दी की अंगभूत विभिन्न बोलियों का अन्तःसंबंध तो इसी बात से स्पष्ट है कि इन्हीं के तागों (सूत्रों) से गुंथकर 'हिन्दी' का स्वरूप संरचित हुआ अथवा बुना गया है।

हिन्दी की विभिन्न बोलियों का अन्तःसंबंध मुख्यतः तीन पहलुओं से रेखांकित किया जा सकता है – (1) ऐतिहासिक परंपरा (2) भौगोलिक परिवेश (3) भाषिक संरचना।

ऐतिहासिक परंपरा की दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी की समस्त बोलियों का उत्स (उद्‌भव–स्रोत) प्राचीन और मध्यकालीन आर्यभाषाएं हैं। संस्कृत इन सभी बोलियों की महाजननी है। हर बोली में, उसकी अपनी विशिष्ट देशज या आंचलिक शब्दावली छोड़कर अन्य समूचा शब्द–भंडार संस्कृत से प्राप्त है।

हिन्दी के विभिन्न बोली–वर्गों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी एक–दूसरे से जुड़े हैं। मूलतः संस्कृत से विभिन्न देश–भाषाओं का व्यवस्थित अलगाव मगध और उसके आस–पास के 'मागधी', 'अर्द्धमागधी' क्षेत्र में शुरू हुआ जिसके सूत्रधार इसी क्षेत्र के महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर थे। इन्हीं के मत–प्रसार की डोर थाम कर पहले पालि–प्राकृत और फिर अपभ्रंश भाषा–रूप विकसित हुए। इस विकास–प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अन्य क्षेत्रों अर्थात् मध्यदेश, उत्तर पश्चिम भारत, राजस्थान–गुजरात आदि में भी संस्कृत का रूपान्तरण विभिन्न प्राकृत–अपभ्रंश रूपों में हुआ। हिन्दी की विभिन्न बोलियां स्पष्टतया इन्हीं प्राकृत, अपभ्रंश–रूपों का परवर्ती उत्पाद अथवा अग्रसरीत भाषिक विकास है।

भौगोलिक परिवेश की दृष्टि से भी हिन्दी की बोलियों का पारस्परिक संबंध–सूत्र स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। भारत के धुर–पूर्व में प्रचलित गोरखाली (नेपाली) और बिहारी वर्ग की बोलियों से लेकर धुर–पश्चिम की राजस्थानी उपवर्ग की बोलियों तक के विशाल क्षेत्र में प्रचलित हिन्दी की बोलियों की सीमा रेखाएं परस्पर इस प्रकार शृंखला–बद्ध हैं कि उन्हें अलग कर पाना संभव नहीं। मगधी–मैथिली आपस में मिलती–जुलती बोलियां हैं तो भोजपुरी–अवधी की भाषिक प्रकृति में बहुत–कुछ साम्य है। भौगोलिक दृष्टि से हिन्दी के

विविध बोली–परिवार (उपभाषा वर्ग) अपने भीतर तो गुंथे हुए हैं ही, अपने निकटवर्ती उपवर्ग से भी उनका अन्तःसंबंध नकारा नहीं जा सकता।

भाषिक प्रकृति, संरचना और व्याकरणिक प्रवृत्तियों के आधार पर हिन्दी की प्रमुख बोलियों के अन्तःसंबंध स्पष्टतया लक्षित किये जा सकते है।

सर्वप्रथम **ध्वनि**–स्तर पर विचार करने पर ज्ञात होगा कि हिन्दी की प्रमुख बोलियों की ध्वनि–व्यवस्था लगभग एक समान है। एक–आध अपवाद को छोड़कर प्राचीन आर्यभाषा (संस्कृत) की अधिकांश स्वर–ध्वनियां इन बोलियों में हैं। यह अलग बात है कि किसी बोली में 'ऋ' रि उच्चारित होता है, किसी में ऐ > अउ, औ > अउ, या अर्द्धस्वर य–व किसी बोली मे इ–उ श्रुति देते हैं। स्वरों का ह्रस्व–दीर्घ एवं मूल स्वर संधि–स्वर के रूप में वर्गीकृत प्रयोग भी हिन्दी की प्रायः सभी बोलियों में समान रूप से प्राप्त है। इसी प्रकार, हिन्दी की सभी प्रमुख बोलियों में स्वर सानुनासिक प्रयोग भी समान रूप से देखा जा सकता है। साथ ही स्पर्श व्यंजनों के पंचमाक्षरों (ङ, ञ आदि) के स्थान पर, अनुस्वार (–) का प्रयोग हिन्दी की सभी बोलियों की प्रमुख प्रवृत्ति है।

व्यंजन–ध्वनियों के अंतर्गत, हिन्दी की सभी बोलियों में अपभ्रंश में विकसित (ड़–ढ़) ध्वनियां प्रायः गृहीत हैं। (अवधी ब्रज में कहीं–कहीं अपवाद है।)

हिन्दी की अधिकांश बोलियों में, पद के आरंभिक व्यंजन–गुच्छ विरल रूप में उच्चरित होने की प्रवृत्ति है – प्रिय > पिय, त्रिया > तिय, द्वि > दुई, दृष्टि > दीठ, भ्रग > भरग, प्रवीण > परबीन आदि।

हिन्दी की अधिकांश बोलियों में क्षतिपूरक दीर्घीकरण की प्रवृत्ति देखी जा सकती है – पुत्र > पूत, पंक्ति > पांति, मित्र > मीत, अष्ट > आठ, विंश > बीस, कर्म > काम, चर्म > चाम, अग्नि > आगि आदि।

रूप–रचना के अन्तर्गत, हिन्दी की प्रमुख बोलियों में संज्ञाओं की लिंग–संबंधी रूप–रचना प्रायः एक–से प्रत्ययों या परसर्गों –ई–इन–नी–आनी–के आधार पर देखी जाती है– छोरा > छोरी, लुहार > लुहारिन, धोबी > धोबिन, ऊंट > ऊंटनी, मोर > मोरनी आदि। इसी प्रकार सर्वनाम–रूप प्रायः समान तत्वों पर केंद्रित हैं। उदाहरणतया उत्तम पुरुषवाचक

एकवचन सर्वनाम में हौं, हउं, मइं या मैं और बहुवचन में प्रायः हम, मध्यमपुरुष वाचक सर्वनाम में 'त' तत्व की विद्यमानता –तू, तै, तू (एकवचन) और तुम्ह, तुम (बहुवचन), अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम में 'व' तत्व – वो, वह, बू, वे (बहुवचन) आदि।

कारकीय रूप–रचना के अन्तर्गत भी हिन्दी की विभिन्न बोलियों की समानता देखी जा सकती है। कर्त्ता कारक के लिए जहां (भूतकालिक सकर्मक क्रिया के साथ) परसर्ग लगाने की प्रवृत्ति है वहां प्रायः सभी बोलियों में नैं या ने का प्रचलन है। कर्म, संप्रदान और संबंध कारकीय परसर्ग में 'क' तत्व की अद्भुत समानता दिखायी देती है। हिन्दी की अधिकांश बोलियों में कर्म तथा संप्रदान कारक के लिए कू–कू–कौ परसर्ग प्रचलित है, तो संबंध कारक के लिए क–को–कौ, केर (केरा–केरे–केरी) तथा का–के–की परसर्गों का प्रयोग सामान्यतः देखा जाता है। इसी प्रकार करण और अपादान कारकों में 'स' तत्व की समानता उल्लेखनीय है – दोनों में सूं–सों–सो–से–सन आदि परसर्ग लगाने की प्रवृत्ति हिन्दी की अधिकांश बोलियों में मिलेगी। इन्हीं के समान्तर, अधिकरण कारक में म पं तत्व हिन्दी की विभिन्न बोलियों में समान रूप से देखा जा सकता है – मांझ, मह, महिं, माहिं (कौरवी आदि में कहीं–कहीं में) और पै–पर आदि परसर्गों की समानता उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त हिन्दी की अधिकांश बोलियों में विभिन्न कारकीय रूपों (कर्म–संप्रदान–अधिकरण में) 'हि' अथवा 'हिं' परसर्ग की बहुप्रयुक्तता की प्रवृत्ति भी इनके अन्तःसंबंध को रेखांकित करती है – मोहि–मोहिं, तोहि–तोहिं, रामहि–रामहिं, घरहि–घरहिं इत्यादि अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं।

क्रिया–संबंधी–रूप–रचना की दृष्टि से भी हिन्दी की विभिन्न बोलियों में समानता के अनेक आयाम खोजे जा सकते हैं। उदाहरणतयाः पूर्वकालिक क्रिया–रूपों में इ परसर्ग का जुड़ना–लिखि, पढ़ि, चलि, करि, होइ, बोलि, पुकारि, जाइ–आइ आदि। संज्ञार्थ क्रिया–रूपों में मूल धातु के साथ – न परसर्ग की प्रधानता हिन्दी की विभिनन बोलियों में विद्यमान है – चलन–फिरन, लिखन–बचावन, आवन–जावन, कहन–सुनन आदि।

तिङन्त क्रिया–रूपों के अंतिम व्यंजन का अकारांत रूप भी हिन्दी की विभिन्न बोलियों में सामान्यतः दिखाई देता है –चलत, फिरत, मिलत, आवत, जात, कहत, घूमत–फिरत, उडंत–पडंत (बहुवचन) आदि।

हिन्दी की विभिन्न बोलियों में नामधातु क्रियाओं का भी पर्याप्त साम्य दिखाई देता है– लजाना (लजावत), शर्माना (सरमावत), बतियाना (बतियात) आदि।

इसी प्रकार क्रिया–पदों के मध्यवर्ती व्यंजन के हलंत के रूप में उच्चरित होने की प्रवृत्ति भी हिन्दी की विभिन्न बोलियों का परस्पर अन्तःसंबंध सिद्ध करती हैं – चल्यो, चल्या, रह्यो–रह्या, गिर्यो–गिर्या आदि।

शब्दकोशीय स्तर पर देखा जाय तो संस्कृत के अर्द्धतत्सम और तद्भव शब्दों के रूप हिन्दी की विभिन्न बोलियों में मिलते–जुलते हैं। देशज शब्द हर बोली की अपनी आंचलिक देन हैं किन्तु विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक और शैक्षणिक प्रयुक्तियां पर्याप्त मिलती–जुलती हैं।

इस संदर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी की सभी प्रमुख बोलियों में 'आवृत्तिमूलक' ध्वनियों वाले अनेक शब्दों की अद्भुत समानता है। खटखट, खड–खड, रिमझिम, किटकिटाना, छबड़, टर्र–टर्र, हुहुर–हुहुर, पटपटाना, मिमियाना, गुर्राना, किलकिल, धड़ा–धड़, सकपकाना, बुदबुदाना आदि।

संक्षेप में, हिन्दी की सभी बोलियां हिन्दी की अमूल्य निधि हैं। हिन्दी का मानसरोवर इसकी विभिन्न बोलियों के जल से ही सरसराता और लहराता है। हिन्दी की अनंत मुहावरा–लोकोक्ति–राशि और उसका सूक्ति–भंडार इन्हीं बोलियों के आंचलिक अनुभव–जन्य लोक–प्रयोग का सुफल है।

हिन्दी की विभिन्न बोलियों के अन्तःसंबंधों के कतिपय अन्य आयाम भी उल्लेखनीय हैं। जैसे, हिन्दी की सभी बोलियों का सामाजिक–दार्शनिक और सांस्कृतिक पृष्ठाधार प्रायः एक–सा है। सभी बोलियों के लोकगीतों, लोक–आख्यानों और नीति–विषयक प्रसंगों की विषयवस्तु में अद्भुत साम्य झलकता है। रामायण–महाभारत के पात्र, पौराणिक देवी–देवता और प्रेमाख्यानों के नायिका–नायक हिन्दी की सभी बोलियों के लोकप्रिय और बहुचर्चित व्यक्तित्व हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में हिन्दी की प्रमुख बोलियों का अन्तःसंबंध सम्यक् रूप से समझा जा सकता है।

भाषा और बोली का अन्तर

'भाषा' और 'बोली' के स्वरूप को दृष्टिगोचर रखकर, इन दोनों के अन्तर को सरलता से समझा जा सकता है। मानक भाषा किसी देश अथवा राज्य की वह प्रतिनिधि और परिनिष्ठित माध्यम होती है जिसका उपयोग वहां के शिक्षित–शिष्ट समुदाय द्वारा अपने शैक्षणिक, साहित्यिक, वाणिज्यिक, प्रशासनिक और सामाजिक–सांस्कृतिक कार्य–कलाप के माध्यम के रूप में किया जाता है। दूसरी ओर किसी एक सीमित क्षेत्र में जनसामान्य द्वारा आपसी बोलचाल में प्रयुक्त होने वाला माध्यम 'बोली' कहलाता है। इस दृष्टि से 'भाषा' और 'बोली' में प्रमुखतया निम्नलिखित विभेदक रेखाएं अंकित की जा सकती हैं –

(1) 'भाषा' विकास–प्रक्रिया का चरम (उच्चतम) रूप होती है। एक क्षेत्र की अनेक बोलियों में से ही कोई एक बोली सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनैतिक कारणों से विकसित होकर क्रमशः उपभाषा–विभाषा और अन्त में परिनिष्ठित (मानक) भाषा बन जाती है। इसके विपरीत 'बोली' किसी भी भाषा की प्रारम्भिक बोलचाल की अवस्था होती है। उसे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, साहित्यिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक दर्जा प्राप्त नहीं होता।

(2) 'भाषा' का भौगोलिक क्षेत्र विस्तृत होता है जबकि 'बोली' का बहुत सीमित। कारण यह है कि भाषा अपने क्षेत्र के सभी अंचलों के अतिरिक्त, आस–पास के क्षेत्रों से भी सम्पर्क का माध्यम होती है, किन्तु 'बोली' केवल अपने अंचल में ही व्यवहार में लायी जाती है।

(3) 'भाषा' व्याकरण–सम्मत और प्रायः 'पूर्णतः शुद्ध' होती है, 'बोली' का कोई व्याकरण या उसकी कोई नियम–संहिता नहीं होती। उसके विभिन्न प्रयोग भाषा–विज्ञान या व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध भी माने जा सकते हैं।

(4) 'भाषा' अपने क्षेत्रों के भीतर और बाहर – सर्वत्र एकरूप रहती है। उसकी शब्दावली, वाक्य–विन्यास एवं अन्य अभिव्यंजना–कोटियां प्रायः सर्वत्र समान होती हैं। 'बोली' अपने ही क्षेत्र के प्रयोक्ताओं में भिन्न–भिन्न रूप लिये रहती है।

(5) 'भाषा' मौलिक और लिखित – दोनों ही रूपों में समानतया प्रयुक्त होती है। उसकी वर्तनी के अपने नियम और रूप निश्चित होते हैं। दूसरी ओर 'बोली' अधिकतर मौखिक रूप में ही प्रयुक्त होती है।

000

देवनागरी लिपि : आरम्भिक युग

भारत में लिपि की विकास–परम्परा के विवरण से स्पष्ट है कि 'देवनागरी लिपि' का उद्‌भव 'ब्राह्मी' लिपि से हुआ। सातवीं शताब्दी में भारत के अन्तिम एकछत्र सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् जब देश की केन्द्रीय एकता छिन्न–भिन्न हो गयी तो इसका प्रभाव 'लिपि' पर भी पड़ा। उत्तर भारत में अनेक छोटे–छोटे राज्य स्थापित हो गये। अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग लिपियां विकसित हुई। उनमें से तीन प्रमुख थीं – (1) शारदा लिपि, (2) कुटिल लिपि और (3) नागर लिपि। 'देवनागरी' 'नागर' लिपि का ही परवर्ती विकसित रूप है।

'देवनागरी' लिपि के सर्वप्रथम प्रयोग का प्रमाण सातवीं शताब्दी से ही, सम्राट हर्षवर्धन के समय से मिलने लगता है। इस युग की नागरी लिपि अत्यंत अलंकृत है और सम्राट का हस्ताक्षर तो प्राचीन नागरी का उत्कृष्ट नमूना है (डॉ0 उदयनारायण तिवारी, पाणिनि के उत्तराधिकारी, पृ. 104)। इसी समय के आस–पास, अर्थात् सातवीं–आठवीं शताब्दी में गुजरात के राजा जयभट्ट के एक शिलालेख में देवनागरी का प्रयोग मिलता है। आठवीं शताब्दी में राष्ट्रकूट राजाओं तथा नवीं शताब्दी में बड़ौदा नरेश ध्रुवराज के शासन–काल में भी 'देवनागरी लिपि' व्यवहार में लायी जाती थी।

दसवीं शताब्दी तक 'देवनागरी' पंजाब से बंगाल तक तथा उत्तर में नेपाल तक और दक्षिण में भी केरल से आगे श्रीलंका तक प्रयुक्त होने लग गयी थी।

'देवनागरी' के प्रचार–प्रसार और महत्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि विदेश से आये आक्रमणकारी महमूद गजनवी ने भी अपनी मुद्राओं (सिक्कों) पर 'देवनागरी' में अपना नाम खुदवाया। सन् 1027–28 ई0 में लाहौर की टकसाल से ढलने वाले सिक्कों के एक तरफ संस्कृत भाषा और 'देनागरी लिपि' में लिखा है – 'प्रत्यक्षमेव मुहम्मद अवतार नृपति महमूद'। इन्हीं सिक्कों के किनारों पर भी 'देवनागरी लिपि' में खुदा है – 'अंचं टंकं हत महमूदपुर संवती 418'। इसमें अंकित वर्ष वास्तव में इस्लामी संवत् हिजरी का है।

इसी प्रकार, 11वीं 12वीं शताब्दी में गुजरात, राजस्थान तथा महाराष्ट्र में ताम्रपत्रों पर अंकित 'देवनागरी' लेख भी प्राप्त हुए हैं। इसके बाद तो 'देवनागरी' शासकों, संतों, जोगियों, भक्तों, कवियों और साहित्यकारों की सामान्य प्रचलित लिपि बन गयी। मुगल शासन के दौरान फारसी लिपि के कारण, इसकी विकास–गति कुछ धीमी हुई, परन्तु 19वीं शताब्दी से राष्ट्रीय

और सामाजिक आंदोलनों के साथ इसे भी प्रोत्साहन मिला। मालवीय जी ने उत्तर प्रदेश में तथा अयोध्या प्रसाद खत्री ने बिहार में इसे अदालती लिपि बनवाया। अपनी इसी क्षमता और समृद्धि के कारण ही आज 'देवनागरी' एक मान्य संवैधानिक राष्ट्रीय लिपि है।

'देवनागरी' नामकरण का आधार

'देवनागरी लिपि' पिछले लगभग एक हजार वर्ष से, भारत के अधिकांश भागों में प्रचलित है। अब तो विदेशों में भी (पिछली डेढ़ शताब्दी से) इसका प्रयोग एवं मुद्रण हो रहा है। इसका नाम देवनागरी कैसे पड़ा – इस सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित है –

(1) भारतवासी आरम्भ से ही आस्थावादी और ईश्वरवादी रहे हैं। ब्राह्मी के बाद, इसी (देवनागरी) लिपि में सर्वप्रथम और सर्वाधिक धार्मिक (देव–विषयक) और शिष्ट (नागर) साहित्य लिपिबद्ध हुआ, इसलिए इसे 'देवनागरी' कहा गया।

(2) कुछ अन्य विद्वानों का विचार है कि गुजरात के 'नागर' (संभ्रांत : उच्चस्तर के, बहुशिक्षित और विशिष्ट विद्वान) ब्राह्मणों ने इस लिपि को विकसित तथा प्रचलित किया, इसलिए यह 'देवनागरी' कहलायी।

(3) कतिपय विद्वान इस लिपि का नगरों में ही अधिक प्रचलित होना इसके 'देवनागरी' नाम का आधार मानते हैं, परन्तु यह मत अधिक संगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि प्राचीन समय में ग्रंथ–लेखन का कार्य नगरों की अपेक्षा वनों, तपोवनों, आश्रमों आदि में अधिक होता रहा।

(4) 'देवनागरी' नाम का एक अन्य आधार यह बताया जाता है कि जिस प्रकार भारतवासी संस्कृत को 'देववाणी' मानते हैं, उसी प्रकार संस्कृत ग्रंथों को लिखने में प्रयुक्त होने वाली 'नागरी' 'देवनागरी' कहलाने लगी।

(5) एक विद्वान की धारणा यह है कि 'देवनागरी' अक्षरों का विकास वास्तव में 'देवनागर' नामक तांत्रिक यंत्र (चौकोर आकृति के ताबीज जैसे मंत्रलिखित पदार्थ) के अनुकरण पर हुआ। उन्हीं यंत्रों के आधार पर, जो चिह्न बनाये गए, वे 'देवनागर' कहलाए। उन चिह्नों से ही 'देवनागरी' लिपि विकसित हुई।

(6) अनेक विद्वान शिक्षा और विद्या के प्राचीन केन्द्र 'काशी' के पुराने नाम 'देवनगर' के आधार पर इस नामकरण को उचित बताते हैं। उनके विचार में, 'काशी' अर्थात् 'देवनगर' से लिपि का विकास हुआ है।

(7) कुछ अन्य विद्वान मगध के प्राचीन केन्द्र 'पाटलिपुत्र' से इस नाम का सम्बन्ध जोड़ते हुए कहते हैं कि यहां के पराक्रमी शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय 'देव' की उपाधि से विभूषित थे। इस प्रकार 'देव' के 'नगर' (पाटलिपुत्र) से विकसित होने वाली लिपि का नाम 'देवनागरी' प्रसिद्ध हुआ।

वास्तव में उपर्युक्त सभी मत अनुमानों पर आधारित हैं। 'नागर' अर्थात् संभ्रांत शिष्ट, सुशिक्षित विद्वान पंडितों द्वारा 'देववाणी' संस्कृत की रचनाओं को लिखने के लिए विकसित लिपि को 'देवनागरी' कहने की मान्यता सबसे अधिक संगत प्रतीत होती है।

'देवनागरी लिपि' के मानकीकरण की पृष्ठभूमि

'देवनागरी' विश्व की अन्य प्रचलित लिपियों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक, संगत, सरल, सुन्दर, समृद्ध और समर्थ है। उसकी इन विशेषताओं को भली भांति स्पष्ट करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि वास्तव में किसी आदर्श लिपि के मूलभूत तत्व क्या हैं ? प्रसिद्ध विद्वान श्री शं0दा0 चितले ने अपनी पुस्तक 'देवनागरी लिपि : स्वरूप–विकास और समस्याएं' तथा हिन्दी के भाषा वैज्ञानिक डॉ0 उदयनारायण तिवारी ने 'पाणिनि के उत्तराधिकारी' नामक ग्रंथ में लिपि के मानकीकरण के ये आधार बताये हैं –

(1) एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिए एक चिह्न हो।

(2) एक चिह्न केवल एक ध्वनि का बोधक हो।

(3) मात्रा एवं वर्ण–बोधक चिह्न इतने भिन्न हों कि किन्हीं दो चिह्नों के स्वरूप में परस्पर कोई भ्रम न हो।

(4) चिह्न सुन्दर और कलात्मक होने के साथ–साथ आधुनिक लेख और मुद्रण के यांत्रिक साधनों के लिए सरलता से अपनाये जा सकें।

इसके अतिरिक्त जहां अनेक लिपियाँ प्रचलित हों वहां उन लिपियों में से 'मानक लिपि' के रूप में अपनायी जाने वाली लिपि में मुख्यतः ये विशेषताएं अपेक्षित हैं –

(5) देश की अधिकांश जनता उस लिपि से परिचित हो।

(6) देश में प्रचलित अन्य लिपियों से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध हो।

(7) उस लिपि के वर्ण प्रचलित लिपियों के वर्णों के अनुरूप हों तथा उसकी वर्णमाला का क्रम भी अन्य लिपियों के समान हो।

(8) उस लिपि की देश में प्रतिष्ठा हो तथा जनता का उससे भावात्मक सम्बन्ध हो।

इन तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि किसी भी भाषा को उसी लिपि में लिखना आदर्श है जिसमें (1) उस भाषा की सभी ध्वनियों को व्यक्त करने वाले चिह्न हों। (2) एक ध्वनि के लिए एक चिह्न हो और एक चिह्न से केवल एक ध्वनि का बोध हो। (3) लेखन और उच्चारण में एकरूपता, सुस्पष्टता और भ्रांति न हो। (4) लिपि स्वदेशी हो तथा देश के जातीय जीवन, संस्कृति और इतर लिपियों से संस्कारतः जुड़ी हुई हो। (5) आधुनिक यांत्रिक लेखन की सुविधाओं का उपयोग कर-पाने की क्षमता भी उसमें हो, तो और भी अच्छा है।

देवनागरी की विशेषताएं

लिपि के मानकीकरण की उपर्युक्त कसौटी के आधार पर यदि हम 'देवनागरी लिपि' की परीक्षा और समीक्षा करें तो उसकी अनेक विशेषताएं उभर कर सामने आती हैं। उनका संक्षिप्त विवेचन आगे किया जा रहा है।

(1) देवनागरी लिपि में कुछ विशिष्ट गुण हैं जिनके कारण यह देश के अधिकांश भाग में लोकप्रिय रही है। इसकी सर्वप्रथम विशेषता यह है कि इसके ध्वनि–चिह्न संस्कृत व्याकरण के अनुसार वैज्ञानिक रूप से इस प्रकार वर्गीकृत हैं कि एक स्थान विशेष से उच्चरित होने वाले अक्षर एक ही वर्ग में सम्मिलित हैं। उदाहरणतः मनुष्य के मुख–विवर में से ध्वनियों के उच्चारण में सहायक होने वाले स्थानों का यदि वैज्ञानिक विवेचन किया जाए तो उसका क्रम इस प्रकार होगा – कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ एवं नासिका। देवनागरी लिपि की अक्षरमाला के अक्षर भी इसी क्रम से वर्गीकृत हैं। उदाहरण –

कण्ठ से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	अ, आ, क, क़, ख, ख़, ग, ग़, घ, ङ, ह और विसर्ग (:)
तालु से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	इ, ई, च, छ, ज, ज़, झ, ञ, य

मूर्धा से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	ऋ, ट, ठ, ड, ड़,ढ, ढ़, ण, र, ळ,ष
दन्त से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	त, थ, द, ध, न, ल, स
ओष्ठ से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	उ, ऊ, प, फ, फ़, ब, भ, म
नासिका से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार (ं)
कण्ठतालु से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	ए, ऐ
कण्ठोष्ठ से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	ऑ, ओ, औ
दन्तोष्ठ से उच्चरित होने वाली ध्वनियां	व

अन्य किसी भी भाषा की लिपि में वर्णमाला का इस प्रकार का वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं मिलता।

(2) नागरी लिपि की दूसरी विशेषता यह है कि इसके अक्षरों के नाम तथा इनके लिखित एवं उच्चरित रूप में भिन्नता नहीं जैसे कि अन्य लिपियों में है। उदाहरणतः रोमन लिपि 'उ' की ध्वनि का बोध 'यू' (U) अक्षर से भी होता है (PUT) और द्वित्व 'ओ' (OO) से भी (FOOT)। इसके अतिरिक्त 'इ' के लिए कहीं रोमन लिपि का 'ई' (E) अक्षर प्रयुक्त होता है (BEGIN) कहीं आई (I) (THIS)। साथ ही एक अक्षर कई ध्वनियों का सूचक है। जैसे – 'यू' (U) 'अ' की ध्वनि भी देता है (BUT) और 'उ' की भी (PUT)। 'सी' से कभी 'स' (CENTRAL) का बोध होता है कभी 'च' का (CHABRA) और कभी 'क' का (CAT)। देवनागरी लिपि में ऐसी अवैज्ञानिकता नहीं है। विश्वभर की भाषाओं की कोई ऐसी ध्वनि नहीं जिसके उच्चारण का सूचक अक्षर देवनागरी में न हो। जबकि अनेक भारतीय भाषाओं में ध्वनियों के लिए कुछ पाश्चात्य लिपियों में कोई भी अक्षर नहीं है। अरबी, फारसी एवं अंग्रेजी की कुछ ध्वनियों के लिए यदि पहले देवनागरी में उपयुक्त चिह्न नहीं भी थे, तो अब तनिक संशोधन से संभव हो गये हैं। जैसे -- 'कॉलेज' या 'डॉक्टर' में ह्रस्व 'ओ' (o) की ध्वनि सूचित करने के लिए 'आ' की मात्रा (ा) पर अर्द्धचन्द्र (ॅ) का चिह्न लगा दिया जाता है। 'जेड' (ज़) की ध्वनि के लिए ज के नीचे बिन्दु का प्रयोग कर दिया जाता है। उसी प्रकार फारसी शब्द कलम, खास, गरूर जोर, फैसला आदि का सही उच्चारण और रूप प्रस्तुत करने के लिए मूल ध्वनियों – क, ख, ग, ज, फ – के नीचे बिन्दु लगाकर, पांच नयी ध्वनियां शामिल कर ली गई हैं।

दूसरी ओर, 'देवनागरी लिपि' का हर अक्षर अपने नाम वाली ध्वनि के लिए ही प्रयुक्त होता है – 'च' की ध्वनि 'च' ही है। 'फारसी' में 'च' ध्वनि वाले अक्षर का नाम 'चे' है और 'जीम' अक्षर से 'ज' की ध्वनि का बोध होता है। रोमन में 'ब' ध्वनि का सूचक वर्ण 'बी' (B) और 'क' सूचक वर्ण 'के' (K) कहलाता है।

(3) अक्षरों के क्रम की वैज्ञानिकता से सम्बन्धित 'देवनागरी' की यह विशेषता भी उल्लेखनीय है कि इसमें पहले क्रमानुसार स्वर रखे गये हैं। कंठ से श्वास सीधे स्वरों के रूप में निकलता है। उसके पश्चात् ही व्यंजनों का क्रम है। रोमन लिपि में कोई स्वर कहीं है और कोई कहीं। ए (A) सबसे पहले है तो ई (E) पांचवें क्रम, आई (I) आठवें और 'ओ' (O) चौदहवें क्रम पर है।

(4) 'देवनागरी लिपि' की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें जैसा लिखा जाता है, वैसा ही शुद्ध पढ़ा जाता (उच्चरित हो सकता) है तथा जैसे संसार की किसी भी भाषा का कोई भी शब्द बोला जाता है अर्थात् उच्चरित होता है, वैसे ही शुद्ध रूप में उसे लिपिबद्ध किया जा सकता है। 'अजमेर' शब्द देवनागरी में 'अजमेर' ही लिखा जाएगा, जबकि रोमन लिपि (AJMER) में कोई 'अजमेर' या 'आजमर' कर सकता है। (PUT) और (BUT) में वर्तनी एक–सी है, केवल (P) और (B) में अन्तर है, पर उच्चारण एक–सा नहीं होता। पहले का उच्चारण 'पुट' और दूसरे का 'बट' होता है। रोमन लिपि में KNIGHT भी 'नाईट' उच्चरित होता है और NIGHT भी। कारण किसी को पता नहीं। 'देवनागरी लिपि' में यह अवैज्ञानिकता नहीं है।

(5) 'मात्रा' – व्यवस्था भी 'देवनागरी लिपि' की उल्लेखनीय विशेषता है। 'अ' को छोड़कर, अन्य सभी स्वरों की ध्वनि को अन्य वर्णों के साथ उच्चरित करने के लिए उन्हें (स्वरों को) नहीं लिखना पड़ता, बल्कि उनकी मात्रा से वही ध्वनि उच्चरित हो जाती है। उदाहरणतया 'अमेरिका' शब्द में 'म' के बाद 'ए' ध्वनि बोली जाती है और 'र' के साथ इ तथा 'क' के साथ 'आ' ध्वनि का उच्चारण होता है, पर इन्हें े, ि और ा से सूचित कर दिया जाता है। 'रोमन' लिपि की भांति M के बाद E और R के बाद I या K के बाद A अर्थात् पूरा वर्ण नहीं लिखना पड़ता। यदि हम देवनागरी में 'अमएरइकआ' लिखेंगे तो उच्चारण भी 'अमेरिका' न होकर वही (अमएरइकआ) होगा, 'अमेरिका' नहीं।

(6) उपर्युक्त विशेषता के अन्तर्गत ही एक अन्य विशेषता का उल्लेख किया जा सकता है। वह यह है कि 'देवनागरी लिपि' में ह्रस्व स्वरों (अ, इ, उ) में तनिक–सा परिवर्तन करके ही,

इन्हें दीर्घ स्वर (आ, ई, ऊ) बनाया जा सकता है। इसी प्रकार 'ए' और 'ओ' में केवल एक मात्रा बढ़ाकर 'ऐ' 'औ' की ध्वनि साकार हो जाती है।

(7) व्यंजनों को जोड़कर (संयुक्त रूप में) लिखने की व्यवस्था केवल 'देवनागरी लिपि' की विशेषता है। इससे उच्चारण की शुद्धता बनी रहती है और स्थान भी कम घिरता है। 'द्वार' रोमन में DWARA लिखा जाएगा, जिसमें अशुद्ध उच्चारण द्वारा की आशंका के साथ–साथ स्थान भी अधिक लगता है।

(8) 'देवनागरी लिपि' की प्राचीनता इसकी एक अन्य विशेषता मानी जा सकती है। इस समय भारत की प्रचलित लिपियों में यह सर्वाधिक प्राचीन है। सातवीं शताब्दी से ही इसके प्रयोग के प्रमाण विभिन्न शिलालेखों, सिक्कों और ताडपत्रों आदि में मिलने लगते हैं। इन संदर्भों में 'देवनागरी' का प्रयोग एकदम उसके शुरू होते ही नहीं होने लगा होगा। अवश्य यह पहले से ही प्रयोग में आनी शुरू हो चुकी होगी।

(9) साहित्य, काव्य, शास्त्र और अन्य विविध प्रकार की सामग्री के विशाल भंडार की दृष्टि से विचार किया जाए तो 'देवनागरी' एक अत्यंत समृद्ध और सक्षम लिपि प्रमाणित होती है। हजारों वर्ष प्राचीन वैदिक वाङ्मय उपनिषद्, दर्शन, पुराण, संस्कृत का विपुल साहित्य, साहित्यशास्त्र, प्राकृत तथा अपभ्रंश की असंख्य रचनाएं और बौद्ध एवं जैन रचनाकारों का अपार साहित्य – यह सब कुछ आज 'देवनागरी लिपि' में प्राप्त है। यहां तक कि भारत के असंख्य अहिंदी–भाषी रचनाकारों की अन्यान्य भाषाओं में प्रस्तुत की गयी रचनाएं भी आज मूल पाठ और अर्थ–भाष्य–व्याख्या सहित 'देवनागरी लिपि' में प्राप्त हैं। इस बात का अनुमान लगा पाना सहज नहीं कि कब, किस–किस युग में किन–किन सरस्वती–पुत्रों ने 'देवनागरी लिपि' के इस अथाह भंडार को भरने में कितनी साधना से योगदान किया होगा।

(10) 'देवनागरी लिपि' की एक अन्य विशेषता है – लेखन और मुद्रण (लिखाई और छपाई) में एकरूपता। रोमन लिपि के विद्यार्थी को उसके कई भिन्न रूप सीखने और प्रयोग में लाने पड़ते हैं। हर वर्ण के बड़े और छोटे (CAPITAL) कैपिटल तथा स्माल (SMALL) रूप जानना आवश्यक है। फिर, हाथ से लिखने में रोमन का जो रूप प्रयुक्त होता है, टंकण और मुद्रण में उससे भिन्न रहती है। देवनागरी में इस इस प्रकार की कोई भिन्नता नहीं। उसे जिस रूप में टंकित या मुद्रित किया जाता है, उसी रूप में हाथ से लिखा भी जाता है।

(11) 'देवनागरी लिपि' लिखावट में सुन्दरता, सुडौलता तथा कलात्मकता लिए हुए हैं। वर्णों की बनावट में 'पाई' की पद्धति इसे सरलता से सीखने में सहायता देती है। जैसे, ज्ञ को आसानी से ज्ञ जोड़ कर ग, घ जोड़कर घ, च जोड़कर च आदि अन्य वर्णों का रूप दिया जा सकता है। अधिकांश वर्ण गोलाई लिए हुए हैं जिन्हें कलात्मक सांचे में ढालकर प्रस्तुत करना सुगम है। इसके वर्ण स्थान भी कम घेरते हैं। देवनागरी में 'सर्वेश्वर' लिखने में रोमन SARVESHWARA से कम स्थान लगता है।

(12) 'देवनागरी लिपि' को सीखना एकदम आसान है। केवल एक सीधी रेखा (।), एक आडी रेखा (–) और अर्द्धवृत्त (˘) सीख लेने पर प्रायः सभी देवनागरी अक्षर बनाना सीखा जा सकता है।

(13) 'देवनागरी लिपि' में हर अक्षर शिरोरेखा युक्त है जो उसकी अलग पहचान और अर्थवत्ता का द्योतक है।

(14) शिरोरेखा की उपर्युक्त व्यवस्था 'देवनागरी' में प्रत्येक एकल शब्द की 'इकाई' को अक्षुण्ण और शुद्ध प्रयोग में सक्षम बनाये रखती है। 'कपड़ा सूख रहा है' वाक्य के 'चारों' शब्द शिरोरेखा द्वारा अलग अस्तित्व–युक्त हैं, इसीलिए वाक्य सार्थक है। शिरोरेखा के बिना 'कप डासू खर हाहै' आदि पढ़े जाने की आशंका है।

(15) संसार की अधिकांश भाषाओं में 'अल्पप्राण' (क–च–ट–त–प आदि) और 'महाप्राण' (ख–छ–ठ–थ–फ आदि) ध्वनियां अर्थ–संचार की भिन्नता का आधार है (काट–खाट, चार–छार, टन–ठन, ताल–थाल, पल–फल) किन्तु, रोमन–फारसी आदि लिपियों में किसी भी महाप्रण ध्वनि का द्योतक स्वतंत्र प्रतीक–चिह्न (वर्ण) नहीं है। उनमें अल्पप्राण ध्वनि–सूचक लिपि–चिह्न के साथ 'ह' ध्वनि–सूचक लिपि–चिह्न (रोमन में एच–H, फारसी में हे) अतिरिक्त रूप से जोड़ना पड़ता है। 'देवनागरी लिपि' इस दृष्टि से स्वतःसंपूर्ण है।

न्यूनताएं और उनका निराकरण (मानकीकरण) : सुधार के प्रयास

यद्यपि देवनागरी पर्याप्त मानक–रूप लिये हुए है तथापि पूर्ण मानकीकरण के लिए उसमें अनेक सुधारों की आवश्यकता थी। उदाहरणतः कुछ वर्ष पहले तक देवनागरी लिपि के स्वरों में दीर्घ ऋ, ऌ आदि स्वर भी थे जो प्राचीन वैदिक ध्वनियों के लिए निर्धारित थे। आधुनिक युग में मानकीकरण की दृष्टि से इन्हें अनावश्यक मानकर हटा दिया गया। इसी

प्रकार, विद्वानों ने देवनागरी के निम्नलिखित दोषों की ओर भी संकेत किया तथा उनमें सुधार करके 'देवनागरी' के मानकीकरण हेतु सुझाव दिये –

(1) इसके अक्षरों की बनावट बड़ी जटिल बतायी गयी। इन अक्षरों को लिखना और सीखना–सिखाना बहुत कठिन तथा परिश्रम–साध्य है। कहा गया कि नन्हें बच्चों के मस्तिष्क पर इससे बहुत बोझ पड़ता है।

(2) कुछ भाषा वैज्ञानिकों के कथनानुसार इसकी वर्णमाला बहुत लम्बी है अर्थात् इसके अक्षरों की संख्या अधिक है। स्वरों की मात्राओं, आधे अक्षरों, द्वित्व अक्षरों तथा विभिन्न अक्षरों के नीचे अथवा ऊपर लगने वाले चिह्नों की संख्या इससे पृथक् है। इतनी बड़ी वर्णमाला को स्मरण रखना, समझाना और ठीक–ठीक प्रयोग करना एक सामान्य छात्र के लिए तो कठिन है ही, साथ ही मुद्रण (छपाई) और टंकण (टाइप) के लिए भी बहुत दुरुह है।

(3) व्यावहारिक स्तर पर देवनागरी लिपि के अनेक अक्षर अनावश्यक बताये गये। उन्हें हटाकर अक्षरमाला की संख्या कम करने के सुझाव दिये गये।उदाहरणतः कुछ विद्वान कहते हैं कि सभी स्वरों का केवल 'अ' के साथ उनकी मात्राएं लगाकर काम चलाया जा सकता है। इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ आदि की आवश्यकता नहीं। ये अि, अी, अु, अू आदि के रूप में लिखे जा सकते है। कुछ भाषावैज्ञानिक मात्राओं में भी अवैज्ञानिकता समझते हैं। उनका कथन है कि कुछ मात्राएं बायीं ओर और कुछ दायीं ओर क्यों लगती हैं ? इसी प्रकार कुछ मात्राएं अक्षरों के नीचे और कुछ ऊपर लगायी जाती हैं। यह भी अवैज्ञानिक है।

(4) एक दोष यह बताया गया कि देवनागरी में 'श' ध्वनि के लिए दो अक्षर 'श' और 'ष' प्रयुक्त होते हैं। 'ऋ' और 'रि' के उच्चारण में भी पर्याप्त समानता है। कृपा को कृपा क्यों नहीं लिखा जा सकता ? 'र' के स्वतंत्र प्रयोग के अतिरिक्त ऊपर (जैसे – कर्म) और नीचे (जैसे – क्रम, राष्ट्र) चिह्न भी हैं, जबकि इनकी कोई पृथक आवश्यकता नहीं।

(5) एक असंगति यह है कि इस लिपि में अ ( ), झ ( ), ण ( ) आदि अक्षरों को दो प्रकार से लिखने की प्रथा होने के कारण भ्रांति की आशंका रहती है।

(6) प्राचीन देवनागरी में ड़ (लड़ना) और ढ़ (चढ़ना) ध्वनियों का अभाव था, जबकि 'मानक हिन्दी' में इनका विशेष भाषिक् दर्जा है।

(7) विदेशी भाषाओं के संपर्क से हिन्दी में क़ (क़त्ल), ख़ (ख़याल), ग़ (ग़ैर), ज़ (ज़मानत) आदि जो ध्वनियां समाविष्ट हो गयी हैं इन्हें भी मानक देवनागरी में स्थान मिलना चाहिए।

(8) ख–रव, धन, घ, भ–म आदि के लेखन में एक–दूसरे वर्ण की भ्रांति हो सकती है।

(9) अनेक अक्षरों को संयुक्त रूप में (द्वन्द्व) और अलग (द्वन्द्व) लिखना भी भ्रामक हो सकता है।

(10) पंचम अक्षर के प्रयोग (सन्त, पञ्जाब) के अतिरिक्त अनुस्वार (संत, पंजाब) का प्रयोग भी भ्रामक हो सकता है।

उपर्युक्त बातें देवनागरी के मानक रूप की स्थिरता में बाधक समझी गयीं। इन सबके निवारण के लिए समय–समय पर अनेक प्रयास हुए जिनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं –

(1) महादेव गोविंद रानाडे के सुझाव (उन्नीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक)
(2) महाराष्ट्र साहित्य परिषद् पुणे द्वारा गठित लिपि सुधार समिति (बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशक)
(3) काका कालेलकर की अध्यक्षता में गठित सुधार–समिति। (सन् 1935 ई0)
(4) आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में गठित सुधार–समिति। (सन् 1948 ई0)
(5) डॉ0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित परिषद्। (सन् 1953 ई0)

इन सुधार–समितियों की ओर से देवनागरी को मानक रूप प्रदान करने के लिए अनेक सुझाव आये, किन्तु सभी व्यावहारिक नहीं थे। उदाहरणतः केवल अ में सभी मात्राएं लगाना, इ की मात्रा (आधी लम्बाई तक) और ई की ी (पूरी लम्बाई तक) रखना, ऋषि को रिशि लिखना या क्रम को करम लिखना आदि।

वास्तव में मानकीकरण की सबसे बड़ी कसौटी लोक–प्रयोग है। उपर्युक्त समितियों के जिन सुझावों को लोक–व्यवहार में स्वीकृति मिल गयी है, वे मान्य हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन कुछ परिवर्तनों से अब देवनागरी पूर्णतया एक मानक लिपि बन चुकी है। इसका वर्तमान मानक रूप इस प्रकार है –

(1) हिन्दी में दीर्घ ऋ नहीं चलता, अतः इसे स्वरों में सम्मिलित नहीं किया गया।

(2) खड़ी पाई वाले व्यंजनों का संयुक्त रूप खड़ी पाई हटाकर ही बनाया गया है – भक्त, तख्त, प्राप्त। छ, ट, ठ, ड, ए, द और ह के संयुक्ताक्षर हलंत लगाकर बनाये जाते हैं (उच्छ्वास लट्ठ, शरद्, आह्लाद)।

(3) अ,ख, ध, भ, झ और ण इन रूपों को मानक मानकर अन्य प्रचलित रूप छोड़ दिये गये हैं।

(4) मराठी ळ को वर्णमाला में स्थान दिया गया है।

(5) र के चारों रूप मान्य हैं। जैसे – भारत, व्रत, राष्ट्र, धर्म।

(6) प्रायः सभी विराम–चिह्न अंग्रेजी से यथावत ले लिये गये हैं, किन्तु पूर्णविराम–चिह्न (।) ही रखा गया है।

(7) क्ष, ज्ञ और श्र यथावत हैं। किन्तु व्र या त्र के स्थान पर त्र मान्य है।

(8) स्वर या मात्राएं पूर्ववत हैं। हा, विसर्ग के चिन्ह (:) को ही कोलन का चिह्न माना जाता है।

इन संशोधनों के पश्चात् देवनागरी के मानकीकरण का भारत सरकार द्वारा स्वीकृत जो रूप प्रचलित हो रहा है वह इस प्रकार है –

स्वर : अ आ ऑ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः

मात्राएं : ा ि ी ु ू ृ े ै ो ौ ं ः

व्यंजन : क (क़) ख (ख़) ग (ग़) घ ङ

च छ ज (ज़) झ ञ

ट ठ ड (ड़) ढ (ढ़) ण

त थ द ध न

प फ (फ़) ब भ म

य र ल (ळ) व

श ष स ह

क्ष त्र ज्ञ श्र।

देवनागरी लिपि की समृद्धि का पता इसी से चल जाता है कि संपूर्ण संस्कृत साहित्य एवं हिन्दी तथा उसकी उपभाषाओं – अथवा मैथिली, मगही, बांगरू, राजस्थानी आदि का

समूचा साहित्य इस लिपि में सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त पश्चिम–दक्षिण की एक समृद्ध भाषा मराठी भी इसी लिपि में लिखी जाती है। गुजराती भाषा की लिपि देवनागरी से थोड़ी–ही भिन्न है। बंगला, गुरुमुखी (पंजाबी) लिपि और टाकरी लिपियों की अक्षरमाला का भी देवनागरी से बहुत निकट का साम्य प्रतीत होता है। इसका अभिप्रायः यह है कि देश के बहुत बड़े भाग की जनता चाहे वह पूर्णतः हिन्दी–भाषी नहीं भी है, देवनागरी लिपि को सरलतापूर्वक समझ और अपना सकती है। इसी कारण अनेक भाषा वैज्ञानिक और लिपि–विशेषज्ञ विद्वान इस बात का प्रबल आग्रह करने लगे हैं कि भारत की सभी भाषाओं की लिपि देवनागरी मान ली जाए। यह भारत की भावात्मक राष्ट्रीय एकता के लिए उपयुक्त भी है। प्रसिद्ध भाषा–शास्त्री श्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार 'देवनागरी लिपि' में उसकी ऐतिहासिक महत्ता के अतिरिक्त और भी विशेष गुण हैं।' इसी प्रकार विश्व की अनेक लिपियों के विशेषज्ञ राहुल सांकृत्यायन का सुनिश्चित मत था कि देवनागरी दुनिया की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। गांधीयुग के वरिष्ठ संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर की मान्यता थी कि 'नागरी वर्णमाला के समान सर्वांगपूर्ण अन्य कोई वर्णमाला नहीं है।' इसीलिए हिन्दी के मूर्धन्य प्रयोगवादी कवि, उपन्यासकार, पत्रकार एवं विचारक श्री अज्ञेय ने यह मत प्रकट किया था कि 'देवनागरी लिपि में सभी भारतीय भाषाएं लिखी जाने पर, भेद–भाव की दीवार समाप्त हो जाएगी।' डॉ0 वी.के.आर.वी. राव के कथनानुसार भी, 'यदि विभिन्न भारतीय भाषाएं देवनागरी में लिखी जाएं तो उन्हें हर भारतीय आसानी से सीख सकेगा।'

हिन्दी (देवनागरी)–वर्तनी का मानकीकरण/सुधार के प्रयास

इस दृष्टि से हिन्दी रूप–रचना की वर्तनी और उसके देवनागरी में उपयुक्त लिप्यंकन का विषय निस्सन्देह अत्यंत महत्वपूर्ण और विचारणीय है।

हिन्दी (देवनागरी) – वर्तनी के मानकीकरण की ओर बहुत पहले से ध्यान दिया जाता रहा है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में, जब भारत के सभी राष्ट्रीय नेताओं ने यह अनुभव कर लिया कि स्वाधीनता–आन्दोलन की प्रतिध्वनि को जन–जन तक पहुंचाने के लिए देवनागरी में लिपिबद्ध हिन्दी ही अधिक सकारात्मक भूमिका निभा सकती है तब उसके सर्वमान्य और एकरूपता–युक्त स्वरूप की विशेष आवश्कयता प्रतीत हुई। पत्रकारिता तथा अन्य संचार–माध्यमों के विस्तार के साथ असंख्य नयी संकल्पनाओं के संवाहक शब्द गढ़े जाने लगे। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र की आधुनिक प्रवृत्तियों को लोकभाषा में व्यक्त करने के लिए

भी नये–नये शब्दों की संरचना होने लगी। इन सभी परिवर्तनों के साथ वर्तनी का दायरा निरन्तर व्यापक होते जाना स्वाभाविक था। (उल्लेखनीय है कि बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और प्रख्यात पत्रकार बालमुकुन्द जैसे मनीषियों में, इस विषय पर बहुत उत्तेजक और सार्थक बसह बहुत लम्बे समय तक चलती रही। तीसरे दशक के आरम्भ में अकेले बाबूराव विष्णु पराड़कर ने दैनिक 'आज' के माध्यम से दो–ढाई सौ नये शब्द हिन्दी को दिये और अनेक शब्दों की वर्तनी की विविधता को असंगत ठहराते हुए उनकी शुद्ध वर्तनी स्थिर करने का प्रयास किया।)

मुद्रण और टंकण–प्रक्रिया के विकास के साथ वर्तनी–सम्बन्धी अव्यवस्था हिन्दी–देवनागरी–प्रसार में एक अवरोधक तत्व बनकर सामने आई। उसके निवारण हेतु भाषाविदों ने बहुत गंभीर और उपयोगी ग्रन्थ प्रस्तुत किये। नयी–नयी पाठ्य–पुस्तकों तथा व्याकरणिक एवं भाषाशास्त्रीय कृतियों के माध्यम से भी इस विषय में सराहनीय कार्य हुआ। फिर भी, हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के मानकीकरण की प्रक्रिया में, एक सुनिश्चित मानक वर्तनी के अधिकृत रूप का अभाव होने के कारण, पूर्ण सफलता संदिग्ध रही। इस दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति (सन् 1947 ई0) के पश्चात्, इस दिशा में बहुविध प्रगति हुई। देवनागरी–सुधार हेतु सन् 1948 और 1953 ई0 में क्रमशः आचार्य नरेन्द्र देव और डॉ0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा जो सुझाव मान्य किये गये उनका आधार अधिकांशतः वर्तनी–परक समस्याएं थीं। इसी भ्रम में सन् 1961 में भारत सरकार द्वारा एक विशेषज्ञ–समिति गठित की गयी जिसका प्रयोजन मानक वर्तनी का सुनिश्चित निर्धारण था। इस समिति ने अप्रैल सन् 1962 में हिन्दी–देवनागरी–वर्तनी के मानकीकरण के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझावों के साथ अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इसके आधार पर भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने सन् 1967 ई0 में 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें विभिन्न उदाहरणों और व्याख्याओं सहित हिन्दी–देवनागरी की मानक वर्तनी का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत दिये गये वर्तनी–सम्बन्धी प्रमुख नियम संक्षेप में आगे दिये जा रहे हैं।

(1) **संयुक्त वर्णों** (व्यंजनों) की वर्तनी में, खड़ी पाई वाले वर्णों की पाई (ा) हटाकर लिखना उपयुक्त है जैसे ख्याति, न्यास, व्या, उल्लेख, सत्कार, स्वास्थ्य इत्यादि। परन्तु श्र और त्र इसका अपवाद हैं। पत्र और श्रम मानक हैं, पत्र और श्रम् नहीं।

(2) क, फ **जैसे वर्णों** की दाई घुंडी हटाकर (क फ) इनके हलन्त रूप आगामी व्यंजनों के साथ जोड़ने चाहिए। जैसे भक्त, मुफ्त, रफ्तार, शक्ति इत्यादि।

(3) छ, ट, ठ, ड, ढ, द, ह – इन व्यंजनों में हलंत चिह्न लगाकर, इन्हें अगले व्यंजनों से जोड़ना चाहिए। जैसे उच्छ्वास, खट्टा, पाठ्यक्रम, ड्यूक, धनाढ्य, उद्धृत, चिह्न।

(4) **रेफ (र्)** का अन्य व्यंजनों से संयोजन करने के लिए प्रचलित तीनों रूप मान्य हैं – क्रम, कर्म, राष्ट्र।

(5) श् + र का संयुक्त रूप 'श्र' मानक माना जाता है, बल्कि नागरी के पूर्व प्रचलित तीन संयुक्ताक्षरों क्ष, त्र, ज्ञ के साथ 'श्र' को भी मानक वर्तनी की दृष्टि से देवनागरी वर्णमाला का चौथा संयुक्ताक्षर मान लिया गया है। उदाहरण – श्रम, श्रीमान्, हश्र। इसी प्रकार लेखन में तो त्र और त्र – दोनों रूप मान्य हैं किन्तु देवनागरी–वर्णमाला में, संयुक्त व्यंजनों (क्ष, त्र, ज्ञ, श्र) के अंतर्गत 'त्र' ही मान्य है, 'त्र' नहीं।

(6) मानक वर्तनी के अन्तर्गत किसी **हलन्त व्यंजन से पहले ह्रस्व 'इ'** की मात्रा 'ि' लगाने से भ्रान्ति हो सकती है इसलिए 'द्वितीय' मानक है, 'दि्वतीय' अमानक।

(7) मानक वर्तनी सम्बन्धी उपर्युक्त नियमों का पालन करते हुए भी, **कुछ विशिष्ट तत्सम शब्दों के देवनागरी लिप्यंकन** में पुरानी परम्परा विकल्प रूप में मान्य हो सकती है। जैसे सङ्कल्प–संकल्प दोनों मान्य हैं इसी प्रकार कण्ठ–कंठ, चञ्चल–चंचल, दण्ड–दंड इत्यादि दोनों रूप मानक हैं।

(8) **संयुक्त क्रियाएं** सदा अलग–अलग लिखी जानी चाहिए, मिलाकर नहीं – 'निर्णय कर लिया गया है' मानक है, करलियागया है' – अमानक।

(9) **योजक–चिह्न (–)** प्रायः इन स्थितियों में लगाना उपयुक्त है –

क) द्वन्द्व समास वाले शब्दों के बीच दिन–रात, सुख–दुख, माता–पिता।

ख) साम्यमूलक 'सा–स–सी, जैसा–जैसे–जैसी से पहले – एक–सा, बहुत–सी, तुम–जैसा इत्यादि।

ग) तत्पुरुष समास वाले शब्दों के बीच (केवल भ्रमनिवारण हेतु) भी योजक चिह्न लगाया जा सकता है। जैसे – भू–विज्ञान, राम–राज्य। किन्तु रामराज्य, भूविज्ञान, राजदूत रूप भी मान्य हैं।

घ) हिन्दी की भाषिक संरचना के अंतर्गत **संधि–व्यवस्था** का विशेष महत्व है, किन्तु वर्तनी के मानकीकरण की दृष्टि से कठिन संधि–युक्त संरचना से बचना वांछनीय है। उदाहरणतया 'द्वि–अर्थक' लिखना उपयुक्त होगा, द्वयर्थक लिखना ठीक नहीं होगा।

(10) **अव्यय (अविकारी)** पदों का प्रयोग करते समय विशेष सावधानी अपेक्षित है। कुछ प्रमुख लेखन–संकेत इस प्रकार हैं –

क) किसी समस्त पद का आरम्भिक शब्द **अव्यय** होने पर (अर्थात् अव्ययीभाव समास में) वह अव्यय अगले पद के साथ मिलाकर लिखा जाना चाहिए। जैसे – यथाशक्ति, प्रतिपल, इत्यादि। यथा–शक्ति, अथवा 'यथा शक्ति' लिखना अमानक होगा।

ख) **सम्मान–सूचक अव्यय** आरम्भ में होने पर अगले शब्द के साथ मिलाकर लिखना चाहिए। जैसे श्रीमान, मान्यवर, श्रीयुत।

ग) 'तक' 'साथ' 'बिना' आदि द्योतक अव्यय अपने से पहले के शब्दों से सदा अलग करके लिखने चाहिए। जैसे 'हम मंजिल तक पहुंचकर रहेंगे', 'आपके बिना काम नहीं चलेगा', 'हमारे साथ आप भी चलिए।'

(11) **नासिक्य स्वर के लिप्यंकण** में आजकल सदा अनुस्वार का (ं) का प्रयोग ही मानक माना जाता है। जैसे संत, पंथ, संबल, कंधा, गांधी आदि।

(12) **श्रुतिमूलक – 'य' और 'व'** के संदर्भ में बहुत सावधानी अपेक्षित है। आम प्रयोग में जाएगा–जायेगा, नई–नयी, नए–नये आदि रूप प्रचलित हैं। मानक एकरूपता की दृष्टि से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि मूल शब्द 'य' तत्व से युक्त हो तो उसके तिर्यक रूपों की वर्तनी में भी 'य' का प्रयोग होना चाहिए, 'ए', 'ई' आदि का नहीं। जैसे नया–नये, नयी, गया–गये, गयी आदि। इसी प्रकार स्थायी, स्थायित्व आदि रूप मानक समझे जाएंगे।

(13) **तत्सम शब्दों के नागरी–लिप्यंकन** में हलन्त (्) और विसर्ग (ः) के चिह्न यथावत प्रयुक्त होने चाहिए – अर्थात् सम्यक्, अन्तःकरण, अतः, अन्ततः इत्यादि।

(14) **पूर्वकालिक क्रियाओं के संकेतक परसर्ग** सदा उस क्रिया के साथ जोड़कर एक ही शिरोरेखा के अन्तर्गत लिखने चाहिए – खाकर, पढकर, लिखकर, पाकर, जाकर आदि मानक हैं, खा कर, पढ़ कर आदि नहीं।

(15) **सर्वनामों के साथ प्रयुक्त होने वाले कारकीय परसर्ग** उनसे मिलाकर (एक शिरोरेखा के अंतर्गत) लिखने चाहिए जबकि संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होने वाले कारकीय परसर्ग अलग लिखे जाने चाहिए। जैसे – उसका, किसका, मैंने, तूने, उसमें, मुझमें, तुमसे, उनसे, उसपर इत्यादि मानक हैं। इसी प्रकार बालक ने, सोनू को, हाथ से, वृक्ष से, नगर का, वन में, छत पर इत्यादि प्रयोग मानक होंगे।

(16) ध्यान रहे कि **कुछ विशिष्ट शब्दों के देवनागरी लिप्यंकन में दोहरी वर्तनी** भी मानक रूप में मान्य है। जैसे – बिमारी–बीमारी, दुकान, दूकान, दुहरा–दोहरा, गर्म–गरम, सर्दी–सरदी इत्यादि। (उल्लेखनीय है कि वर्तनी का अर्थ–तत्व से सीधा संबंध है। उपर्युक्त उदाहरणों में, दोनों रूपों में अर्थ समान रहता है, किन्तु सुत–सूत, दिन–दीन, ओर–और आदि में अर्थ–भिन्नता के कारण, इनकी वर्तनी में सावधानी रहना आवश्यक है।)

–000–

मानक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताएं

हिन्दी मध्य भारत की ऐसी भाषा है जिसका निर्माण प्रयोग और परम्परा की निरंतरता से हुआ है। इसलिए हिन्दी की प्रकृति सामासिक है। अनेक उपभाषाओं एवं बोलियों से ऊर्जा ग्रहण करती हुई एवं उन्हें अपनी विशाल धारा में समेटती हुई हिन्दी अन्ततः राष्ट्रभाषा बनने की क्षमता से उत्पन्न हुई। भाषा के अर्थ में 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम तेरहवीं शतब्दी में भारत के फारसी कवि औफी ने देशी भाषा के लिए किया था। मध्यकालीन भक्त कवियों ने संस्कृत अथवा अपभ्रंश की तुलना में अपनी काव्य भाषा को 'भाखा' कहा। हिन्दवी, भाखा एवं खड़ी बोली के सोपानों से गुजरती हुई यह भाषा हिन्दी के रूप में प्रतिष्ठित हुई है।

मानक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताओं पर विचार करते हुए यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हिन्दी के मानक रूप का आधार क्या है और इसका व्याकरणिक ढांचे का स्रोत क्या है ? भाषा विज्ञान की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत पांच बोलियों में से एक 'खड़ी बोली' से हिन्दी का सीधा सम्बन्ध है। यह खड़ी बोली एक व्यापक भू–भाग में बोली जाती है। अपने ठेठ रूप में यह रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, सहारनपुर, देहरादून और अम्बाला जिलों में बोली जाती है। इनमें मेरठ की बोली आदर्श एवं मानक मानी जाती है। लेकिन वर्तमान खड़ी बोली हिन्दी की मानकता मेरठ की बोली पर आधारित नहीं है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार 'इसमें संदेह नहीं कि मेरठ की बोली ही हिन्दी (राष्ट्रभाषा) बन गयी है . . . लेकिन बोली को भाषा बनने में उसका काफी संस्कार करना पड़ा है। इसलिए दोनों में भारी अन्तर पड़ गया है। फलतः राष्ट्रभाषा का लेखक 'मेरठ की बोली' का ही एकमात्र अनुकरण नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि हिन्दी की 'मानकता बोली से निर्धारित नहीं हो सकती। उसकी मानकता के स्वतंत्र प्रतिमान बन गये हैं। हिन्दी व्याकरण का मूल और सर्वमान्य आधार संस्कृत व्याकरण है, लेकिन स्वतंत्र व्याकरण–ढांचा भी निर्मित करती है। इस पृष्ठभूमि में हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताओं पर विचार किया जा सकता है।

ध्वनि–संरचना

मानक हिन्दी की ध्वनि–संरचना का मूल आधार संस्कृत है। हिन्दी की निम्नांकित ध्वनियां संस्कृत–परम्परा से प्राप्त है –

स्वर – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ

व्यंजन – क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व श
ष स ह

अनुनासिक एवं विसर्ग :

हिन्दी वर्णमाला में पांच नये व्यंजन भी जोड़े गये हैं :

क्ष त्र ज्ञ ड़ ढ़

इनमें पहले तीन स्वतंत्र व्यंजन न होकर संयुक्त व्यंजन हैं। ड़ और ढ़ द्विगुण व्यंजन हैं। इनमें अतिरिक्त हिन्दी में छः विदेशी ध्वनियां भी गृहीत की गई हैं जिनमें पांच का संबंध फारसी और एक का सम्बन्ध अंग्रेजी से है।

फारसी – क, ख, ग, ज, फ (कलम, खैर, जरूरत, गम, फना)

अंग्रेजी – ॅ (डॉक्टर, कॉलेज)

हिन्दी व्यंजनों को संस्कृत की तरह तीन श्रेणियों में बांटा गया है –

1. स्पर्श 2. अन्तःस्थ 3. उष्म

स्पर्श व्यंजन पाँच वर्गों में विभक्त हैं –

कंठ्य – क ख ग घ ङ
तालव्य – च छ ज झ ञ
मूर्द्धन्य – ट ठ ड ढ ण
दन्त्य – त थ द ध न
ओष्ठ्य – प फ ब भ म

अन्तःस्थ व्यंजन चार हैं – य र ल व

उष्म व्यंजन भी चार हैं – श ष स ह

उच्चारण में वायु प्रक्षेप की दृष्टि से व्यंजनों के दो भेद किये गये हैं –

1. **अल्पप्राण** – इनके उच्चारण में थोड़ा श्रम करना पड़ता है। **स्पर्श वर्णों के प्रत्येक वर्ग का पहला, तीसरा और पांचवाँ वर्ण** अल्पप्राण होता है। क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म। अन्तःस्थ यानी य र ल व भी अल्प प्राण हैं।

2. **महाप्राण** – महाप्राण व्यंजनों के उच्चारण में हकार जैसी ध्वनि विशेष रूप से रहती है। स्पर्श वर्णों के प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चौथा वर्ग तथा समस्त उष्म वर्ग महाप्राण है। जैसे – ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह।

नाद की दृष्टि से व्यंजनों को घोष और अघोष में बांटा गया है –

घोष व्यंजन एवं अघोष व्यंजन – जिन व्यंजन वर्णों के उच्चारण में स्वरतंत्रियाँ परस्पर झंकृत होती है वे घोष कहलाती हैं और जिनमें झंकृति नहीं रहती वे अघोष कहलाती हैं। घोष में केवल नाद का उपयोग होता है जबकि अघोष में केवल श्वास का। जैसे –

घोष – स्पर्श व्यंजनों में प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा और पांचवां वर्ण, सारे स्वर वर्ण और य, र, ल, व, ह घोष वर्ण हैं। ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म, य, र, व, ह, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।

अघोष – स्पर्श व्यंजनों में प्रत्येक वर्ग का पहला–दूसरा एवं समस्त उष्म व्यंजन (ह को छोड़कर) अघोष हैं।

IAS/PCS

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी की ध्वनि–संरचना संस्कृत पर आधारित है और कुछ नयी ध्वनियों को समाहित करने के बावजूद इसके ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

शब्द–संरचना

शब्द वाक्य की मूल इकाई है। हिन्दी की शब्द–सम्पदा समृद्ध और उसकी शब्द–संरचना बहुआयामी और विविधतापूर्ण है।

व्युत्पत्ति अथवा बनावट की दृष्टि से हिन्दी शब्द–संरचना के तीन आधार हैं –

रूढ़ : जिन शब्दों के खण्ड सार्थक न हों, उन्हें रूढ़ कहते हैं। ये शब्द अविभाज्य होते हैं और परम्परा और प्रयोग से इनका अर्थ निश्चित होता है। जैसे – नाक, हाथ, पीला,

पर आदि। यहां पर प्रत्येक शब्द के खण्ड, जैसे – ना–क, हा–थ, पी–ला, प–र – अपनी इकाई में अर्थ के स्तर पर अर्थहीन हैं। इन शब्दों का अर्थ निश्चित है।

यौगिक : ऐसे शब्द जो दूसरे शब्दों के मेल से बनते हैं और जिनके खण्ड सार्थक होते हैं – यौगिक कहलाते हैं। यौगिक शब्द रूढ़ शब्दों के संयोग से बनते हैं। जैसे – दूधवाला, घुड़सवार, हथगोला, महालेखापाल आदि। यहां प्रत्येक शब्द के दो खण्ड हैं और दोनों खण्ड सार्थक हैं।

योगरूढ़ : ऐसे शब्द जो यौगिक तो होते हैं, पर अर्थ के विचार से अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर विशेष अर्थ प्रस्तुत करते हैं, योगरूढ़ कहलाते हैं। योगरूढ़ शब्दों में निहित अन्य अर्थ परम्परा और प्रयोग की दृष्टि से निश्चित होता है। जैसे – लंबोदर, पंकज, चलुपाणि, जलज, खग आदि। यहां लंबोदर का अर्थ है – जिसका पेट बड़ा हो, लेकिन यह अर्थ गणेश के लिए रूढ़ है। इसी प्रकार जलज का सामान्य अर्थ है – जल में पैदा होने वाला, लेकिन इसका अन्य अर्थ है कमल, यह अर्थ भी रूढ़ है।

रूपांतर की दृष्टि से शब्द दो प्रकार के होते हैं – विकारी एवं अविकारी।

विकारी : विकारी शब्द वे हैं जिनके रूप में विकार या परिवर्तन होता रहता है। यह विकार संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया और विशेषण में होता है। शब्दों में विकार उत्पन्न होने में लिंग, वचन, कारक और पुरुष के प्रत्यय विशेष रूप से सहायक होते हैं।

अविकारी : ऐसे शब्द जिनके रूप में परिवर्तन नहीं होता, जो अपने मूल रूप में बने रहते हैं, अविकारी कहते हैं। अविकारी शब्द को अव्यय भी कहा जाता है। क्रिया–विशेषण, समुच्चय बोधक, सम्बन्धसूचक और विस्मयादिबोधक अव्यय अविकारी के रूप में आते हैं।

संस्कृत की तरह हिन्दी में भी शब्द–संरचना की **चार विधियां** हैं –

1. उपसर्ग, 2 प्रत्यय, 3. संधि और 4. समास।

उपसर्ग : उपसर्ग वे शब्दांश हैं जो किसी शब्द के आरम्भ में जुड़कर उसके अर्थ में अतिरिक्त विशेषता या परिवर्तन ला देते हैं। उपसर्गों का स्वतंत्र अस्तित्व न होते हुए भी वे अन्य शब्दों के

साथ मिलकर उनके एक विशेष अर्थ का बोध कराते हैं। जैसे – प्र + हार = प्रहार, अनु+शासन = अनुशासन, आ+गमन = आगमन, अव+सान = अवसान आदि।

मानक हिन्दी की शब्द–संरचना अधिकांशतः संस्कृत शब्द–संरचना पर आधारित है, लेकिन लोकभाषाओं से गहरे रूप में जुड़ी होने के कारण अन्य भाषाओं के संरचनात्मक उपकरणों को भी आत्मसात करती है। संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी में अरबी–फारसी के उपसर्गों एवं हिन्दी के ठेठ तद्भव उपसर्गों का भी प्रयोग होता है।

उदाहरणार्थ :

संस्कृत : प्र+वास = प्रवास, अनु+संधान = अनुसंधान, अभि+वादन = अभिवादन।

अरबी–फारसी : अल+बत्ता = अलबत्ता, कम+सिन = कमसिन, गैर+हाजिर = गैरहाजिर।

तद्भव : अध+जला = अधजला, बिन+ब्याहा = बिनब्याहा, भर+पेट = भरपेट आदि।

प्रत्यय : शब्दों के अन्त में जो अक्षर या अक्षर समूह लगाया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं।

कृदन्त

क्रिया या धातु के अन्त में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों को 'कृत्' प्रत्यय कहते हैं और उसके मेल से बने शब्द को कृदन्त। ये प्रत्यय क्रिया या धातु को एक नया रूप दे देते हैं। जैसे–

क्रिया	कृत प्रत्यय		कृदन्त
गाना +	वाला	=	गाने वाला
खेना +	वैया	=	खेवैया
होना + हार	हार	=	होनहार

धातु	कृत प्रत्यय		कृदन्त
नी +	अन	=	नयन
शक् +	ति	=	शक्ति
कृ +	तव्य	=	कर्त्तव्य
पूज् +	आ	=	पूजा

तद्धित

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और अव्यय के अन्त में लगने वाले प्रत्यय को तद्धित कहा जाता है और उनके मेल से बने शब्द को तद्धितान्त। जैसे –

मानव + ता = मानवता, अच्छा+आई = अच्छाई, एक+ता = एकता,

अपना+पन = अपनापन, मातृ+उल = मातुल, आत्म+सात् = आत्मसात् आदि।

प्रत्यय पर आधारित शब्द–संरचना की दृष्टि से मानक हिन्दी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें संस्कृत अथवा अन्य भाषाओं के प्रत्ययों का यथावत् अनुकरण नहीं होता। यहां परसर्गों का प्रयोग आवश्यकता, प्रयोग एवं संप्रेषण पर आधारित है।

संधि

दो वर्णों के मेल से होने वाले विकार को संधि कहते हैं। शब्द–रचना में संधियां उसी तरह सहायक हैं जिस तरह उपसर्ग और प्रत्यय। स्वर वर्णों एवं व्यंजन–वर्णों के आधार पर संधि के भी क्रमशः दो भेद किये गये हैं – स्वर संधि तथा व्यंजन संधि। संधि में दो वर्ण आपस में मिलकर शब्द की संरचना में परिवर्तन कर देते है। और उनके अर्थ में भी। जैसे –

विद्या+ आलय = विद्यालय, रजनी+ईश = रजनीश, देव+इन्द्र = देवेन्द्र,

देव+असुर = देवासुर, दिक्+भ्रम = दिग्भ्रम, जगत्+आनन्द = जगदानन्द आदि।

समास

अनेक शब्द मिलकर जब एक पद बन जाते हैं तो वह समास कहलाता है। समाज में विभक्तियों का लोप हो जाता है और इस लोप के कारण दो या अधिक शब्द मिलकर एक पदीय शब्द का निर्माण करते हैं। हिन्दी व्याकरण में समास का अनुशीलन संस्कृत व्याकरण के आधार पर हुआ है। इसलिए हिन्दी में भी मुख्य रूप से समास के चार भेद हैं – अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुब्रीहि, द्वन्द्व।

अव्ययी भाव समास :

अव्ययी भाव में पूर्वपद की प्रधानता होती है। इसमें पहला पद उपसर्ग जाति का अव्यय होता है और वही प्रधान होता है। इस समास में पूरा पद क्रियाविशेषण व्यय हो जाता है। जैसे– प्रतिदिन, आजन्म, अनुरूप, भरसक, बेखटके आदि।

तत्पुरुष :

तत्पुरुष समास में अन्तिम पद प्रधान होता है। कर्त्ता और सम्बोधन कारक को छोड़कर अन्य छः कारकों (कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध एवं अधिकरण) की विभक्तियों के लोप हो जाने से इस समाज की रचना होती है। जैसे --

कठफोड़वा, जेबकतरा, गृहागत (कर्म तत्पुरुष) (को)
ईश्वरप्रदत्त, मदमाता, अकालपीड़ित, मुंहमांगा (करण) (से)
देशभक्ति, रसोईघर, हथकड़ी, राहखर्च (सम्प्रदान)
दूरागत, जन्मान्ध, धर्मभ्रष्ट, ऋणमुक्त (अपादान) (से)
सेनापति, माधव, राजदरबार, गंगाजल (सम्बन्ध) (का)
गृहप्रवेश, हरफनमौला, स्नेहमग्न, आपबीती (अधिकरण)(मे, पर)

बहुब्रीहि :

समास में आये पदों को छोड़कर, उनके माध्यम से जब किसी तीसरे शब्द का बोध होता है, तब बहुब्रीहि सभास होता है। इस समास में समासगत पदों में कोई प्रधान नहीं होता, बल्कि पूरा पद ही किसी अन्य पद का विशेषण होता है। जैसे –

पीताम्बर	– पीत है अम्बर जिसका वह– विष्णु
लम्बोदर	– लम्बा है उदर जिसका वह – गणेश
वीणापाणि	– वीणा है पाणि में जिसके वह – सरस्वती

द्वन्द्व :

द्वन्द्व समास में सभी पद प्रधान होते हैं – जैसे माँ–बाप, ऋषि–मुनि, दाल–रोटी, हाथ–पाँव, घास–फूंस, काम–काज, पाप–पुण्य, थोड़ा–बहुत आदि।

सामासिकता हिन्दी की प्रकृति नहीं है। उसका स्वभाव विश्लेषणपरक होता है। इसलिए समास का उपयोग हिन्दी में आवश्यकतानुसार ही होता है। अधिक प्रयोग तत्पुरुष का होता है।

पद–रचना

वर्ण–समूह को शब्द और वाक्य में प्रयुक्त शब्द को पद कहा जाता है। शब्द जब तक किसी वाक्य में प्रयुक्त नहीं होता तब तक वह शब्द रहता है और वाक्य में प्रयुक्त होते ही वह

पद बन जाता है। मानक हिन्दी की पद–रचना व्यवस्थित और नियमबद्ध है। हिन्दी व्याकरण में पद–समूहों के पांच भेद हैं – संज्ञा पद, सर्वनाम पद, विशेषण पद, क्रिया पद एवं अव्यय पद।

संज्ञा पद :

व्यक्तित्वाचक संज्ञा को छोड़कर शेष संज्ञाओं में लिंग, वचन, कारक आदि के अनुसार रूप परिवर्तन हो सकता है। जैसे – कपड़ा–कपड़े, लड़की–लड़कियां, तारा–तारे। संज्ञा रूपों में परिवर्तन हिन्दी की व्याकरणिक विशेषता है। लिंग–वचन अथवा कारक के अतिरिक्त मानक हिन्दी के संज्ञा पदों की संरचना क्रिया अथवा विशेषण पदों में रूपांतरण के द्वारा भी होती है– श्रेष्ठ–श्रेष्ठता, सुन्दर–सुन्दरता, पढ़ना–पढ़ाई, थकना–थकान आदि।

सर्वनाम पद :

मानक हिन्दी की सर्वनाम पद–सरंचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें वचन–भेद के अनुसार तो परिवर्तन हो जाता है, लेकिन लिंग–भेद का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जैसे – तुम पढ़ते हो – तुम पढ़ती हो। वह जा रहा है – वह जा रही है। मैं समझता हूं – मैं समझती हूं। संस्कृत और अंग्रेजी में सर्वनाम पद–संरचना लिंग–भेद से परिवर्तित होती है। वहां लिंग के अनुसार अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम में अलग व्यवस्था है। जैसे – सः–सा, He, She, लिंग को छोड़कर हिन्दी में 'सर्वनाम रूपों में पर्याप्त विविधता है। जैसे – मैं–मुझे, मेरे–मेरे, हम, हमें, हमारा, तुम, तुम्हें, तुझे, तुम्हारा, यह, इसे, इस, वह, उसका, उसे, वे, उनका, उन्हें आदि।

विशेषण पद :

हिन्दी व्याकरण में विशेषण–पदों की संरचना संज्ञा–सर्वनाम पदों के अनुरूप है। सिर्फ संख्यावाची और परिणामवाची विशेषणों को छोड़कर लगभग सभी गुणवाची विशेषणों की संरचना उनके विशेष्य के अनुसार बदल जाती है। जैसे – संख्यावाची विशेषण – तीन देव–तीन देवियां, बहुत जाड़ा – बहुत गर्मी, परिवर्तन – अच्छा आदमी – अच्छे दिन, निचला भाग–निचले इलाके, परिचयायक – परिचायिका आदि।

क्रिया पद :

क्रिया पद–सरंचना में अपार विविधता हिन्दी व्याकरण का वैशिष्ट्य है। लिंग–वचन–काल के अनुसार क्रिया रूपों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे – सीता जाती है – राम जाता है,

वह पढ़ता है – वे पढ़ते हैं, राघव आया – राघव आता है – राघव आयेगा। इसके अतिरिक्त मानक हिन्दी में क्रिया के अनेक रूप विद्यमान हैं। जैसे – अपूर्ण क्रिया – वह सोचता रहा, संयुक्त क्रिया – लेट आना, गिर पड़ना, काम करना, मार देना आदि। प्रेरणार्थक क्रिया – खिलाना, पढ़वाना, दिखवाना आदि। संज्ञा पदों से क्रियापदों की संरचना हिन्दी व्याकरण की विशेषता है। जैसे – लाज–लजाना, लात–ललियाना, बात–बतियाना आदि। हिन्दी में विशेषण–पदों से भी क्रियापद बनाने की व्यवस्था है। जैसे – मोटा–मुटापा, गर्म–गर्माना आदि।

अव्यय–पद :

अविकारी पदों को ही अव्यय कहते हैं। ये वे पद है जिनमें लिंग, वचन, कारक आदि के कारण कोई परिवर्तन नहीं होता। हिन्दी के कुछ अव्यय संस्कृत से आये हैं, तथा – यदि, कदाचित आदि। मानक हिन्दी के सभी क्रिया विशेषण (अभी, आज, आगे, शीघ्र, धीरे), योजक (और, किन्तु, परन्तु, अथवा), समुच्चय बोधंक (बिना, भर, तक) और विस्मयादि बोधक (अहा! वाह! काश! आदि) अव्यय पद हैं।

वाक्य–संरचना

विचारों को पूर्णता से प्रकट करने वाले पद–समूह को वाक्य कहते हैं। वाक्य सार्थक शब्दों का एक ऐसा व्यवस्थित रूप है जो अनिवार्यतः एक अर्थ की प्रतीति कराता है। स्पष्टता, तारतम्यता और संक्षिप्तता वाक्य के गुण हैं। वाक्य में क्रिया का होना अनिवार्य है।

मानक हिन्दी की वाक्य–संरचना का मूल आधार संस्कृत है। हिन्दी वाक्य–संरचना में कर्त्ता+क्रिया की क्रम–व्यवस्था होती है। रचना की दृष्टि से हिन्दी में वाक्य तीन प्रकार के होते हैं – सरल वाक्य, मिश्र वाक्य, संयुक्त वाक्य।

सरल वाक्य :

जिस वाक्य में एक ही क्रिया होती है, वह सरल वाक्य होता है। जैसे – बिजली चमकती है, पानी बरसा।

मिश्र वाक्य :

जिस वाक्य में एक साधारण वाक्य के अतिरिक्त उसके अधीन कोई दूसरा अंग वाक्य हो, उसको मिश्र वाक्य कहते हैं। जैसे – 'वह कौन–सा भारतीय है जिसने गंगा का नाम न

सुना हो।' यहां मुख्य वाक्य है – वह कौन–सा भारतीय है, शेष सहायक वाक्य है, क्योंकि वह मुख्य वाक्य पर आश्रित है।

संयुक्त वाक्य :

जिस वाक्य में साधारण अथवा मिश्र वाक्यों का मेल संयोजक अव्ययों द्वारा होता है, उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। कुछ वैयाकरणों का मत है कि संयुक्त वाक्य उस वाक्य–समूह को कहते हैं जिसमें दो या दो से अधिक सरल वाक्य अथवा मिश्र वाक्य अव्ययों द्वारा संयुक्त हों। जैसे – 'मैं 'डायरी लिखकर लेटा कि आकाश में बादल गरजने लगे और बारिश इतनी तेज होने लगी कि उठकर खिड़की बंद करनी पड़ी।'

इस वाक्य में मिश्र वाक्यों को और वाक्यों द्वारा जोड़ा गया है।

हिन्दी वाक्य–संरचना के कुछ अपने विशिषट नियम हैं जो मानक हिन्दी के लिए अनिवार्य हैं। जैसे --

1. विशेषण पद विशेष्य से पहले रखने का विधान है। जैसे –

   महेश एक ईमानदार व्यक्ति है।

—000—

हिंदी और उच्च प्रौद्योगिकी

विविधता में एकता केवल भारतीय संस्कृति की ही नहीं, भारतीय भाषाओं और उनकी लिपियों की भी मूलभूत विशेषता है। इसी अंतर्निहित समानता के आधार पर वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से इसकी ISCII अर्थात् 'Indian Standard Code for Information Intercharge' नाम एक ऐसी मानक कोडिंग प्रणाली (coding system) का विकास किया गया है, जिसके अंतर्गत न केवल भारतीय और दक्षिण पूर्व एशिया की भाषाओं एवं लिपियों, बल्कि रोमन-लिपि पर आधारित सभी यूरोपीय भाषाओं को भी समाहित किया गया है। इससे आज उच्च प्रौद्योगिकी (Hi-tech) के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं का मार्ग प्रशस्त हो गया है। इसी मानक के आधार पर सभी भारतीय भाषाओं के लिए (उर्दू को छोड़कर) इन्स्क्रिप्ट (Inscript) नाम से समान कुंजीपटल का विकास किया गया है। यह कुंजीपटल अंगरेज़ी के क्वेर्टी की-बोर्ड पर ही आधारित है। इसके माध्यम से भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंगरेज़ी में भी टंकण या कुंजीयन का कार्य किया जा सकता है। भारत के प्रथम सुपर कंप्यूटर के निर्माता सी-डैक ने इस्की (ISCII) मानक कोड के आधार पर आई.टी. कानपुर के सहयोग से ज़िस्ट नामक भाषा-टेक्नोलॉजी का विकास किया। आज इस टेक्नोलॉजी के अंतर्गत कंप्यूटर से संबंधित सभी प्रकार के अनुप्रयोगों को हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में संपन्न करने की सुविधा उपलब्ध है। इसकी सहायता से डॉस, विंडोज़ और यूनिक्स परिवेश के अंतर्गत सभी भारतीय भाषाओं में शब्द संसाधन और डेटा संसाधन का कार्य किया जा सकता है। इसमें हिंदी स्पैल-चैकर और ऑन-लाइन शब्दकोश के साथ-साथ ई-मूल और वेब-प्रकाशन की सुविधा भी प्रदान की गयी है; इसके अतिरिक्त, भारतीय भाषाओं में उच्च कोटि का कार्य करने के लिए इस्फॉक (ISFOC) अर्थात् 'Intelligence based script font code' नामक से मानक फॉंट का भी निर्माण किया गया है। इसके साथ ही वीडियो एवं मल्टी-मीडिया प्रणाली पर आधारित अनेक सॉफ्टवेयर भी विकसित किये गये हैं। लिप्स (LIPS) के ज़रिए फिल्मों के उपशीर्षक (sub-titles) आज भारतीय भाषाओं में बनाये जा रहे हैं। इसी प्रकार डबिंग

पर सरलता से समाचार-वाचन के लिए मल्टी-प्रॉम्प्टर (Multi-prompter) आदि का निर्माण भी किया गया है। हाल ही में अहिंदी भाषियों को हिंदी सिखाने के लिए लीला-प्रबोध नामक मल्टी-मीडिया पैकेज का विकास किया गया है। मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में मंत्र और अनुसारक सॉफ्टवेयर प्रस्थान बिंदु के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उच्च प्रौद्योगिकी (Hi-tech) के क्षेत्र में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएं विश्व की विकसित भाषाओं की तुलना में पीछे नहीं है।

यह एक ऐतिहासिक संयोग ही है कि कंप्यूटर का विकास सर्वप्रथम ऐसे देशों में हुआ जिनकी भाषा मुख्यत: अंगरेज़ी या रोमन लिपि पर आधारित कोई यूरोपीय भाषा थी। कदाचित् यही कारण है कि रोमनेतर लिपियों में कंप्यूटर पर कार्य कुछ देरी से आरंभ हुआ, किंतु इस बात का कोई तकनीकी कारण नहीं है कि रोमन लिपि या अंगरेज़ी कंप्यूटर के लिए आदर्श लिपि या भाषा समझी जाय। **वस्तुत: कंप्यूटर की दो संकेतों की अपनी एक स्वतंत्र गणितीय भाषा है और उसी में वे हमारी भाषाओं को ग्रहण करके अपने समस्त कार्य करते हैं।** इसलिए कंप्यूटर के लिए किसी भी भाषा को अपनाने में कोई तकनीकी बाधा नहीं है। लेकिन यह भी सत्य है कि **रेखिक (linear) लिपि होने के कारण रोमन लिपि यांत्रिक दृष्टि से अपेक्षाकृत सरल है। रोमनेतर लिपियों में इतनी अधिक भिन्नता और जटिलता है कि उन्हें एक कुंजीपटल पर लाना कोई सरल कार्य नहीं है।** अरबी और हिब्रू दायें से बायें लिखी जाती हैं। चीनी लिपि ऊपर से नीचे लिखी जाती है। किंतु जहां तक भारतीय लिपियों का संबंध है, वे अपने मूल स्वरूप में अक्षरात्मक है। लेकिन उनकी वर्णमाला ध्वन्यात्मक है और उर्दू को छोड़कर शेष प्रमुख दस लिपियों की वर्णमाला का क्रम भी समान है। वस्तुत: ये सभी लिपियां ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई हैं. लेकिन लेखन-सामग्री की भिन्नता के कारण इनके बाहरी स्वरूप में काफी अंतर आ गया है। इसी अंतर्निहित समानता के आधार पर इलेक्ट्रानिकी विभाग, भारत सरकार की एक परियोजना के अंतर्गत सन् 1983 में आई.आई.टी. कानपुर में 'जिस्ट' (Graphics & Script Technology) प्रौद्योगिकी पर आधारित एक प्रोटोटाइप का विकास किया गया जिसका प्रदर्शन सन् 1984 में नयी दिल्ली में

आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर किया गया था। सन् 1988 में भारतीय भाषाओं की यह टेक्नोलॉजी पुष्पित और पल्लवित होकर 'जिस्ट टैक्नोलॉजी' के नाम से एक विशाल वटवृक्ष के रूप में विकसित हो गयी है।

रोमन लिपि के लिए विशेष रूप से विकसित ASCII (American Standard Code for Information Interchance) भी 'इस्की' के अंतर्गत समाहित है। इतना ही नहीं, विश्व की सभी लिपियों के लिए मानक यूनिकोड (Unicode) भी 'इस्की' के अनुरूप (compatible) है। वस्तुत: ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। 'इस्की' के आधार पर सभी भारतीय लिपियों के लिए इंस्क्रिप्ट (Inscript) अर्थात् Indian Language Script नाम से समान कुंजीपटल का विकास किया गया है। यह कुंजीपटल अंगरेज़ी के क्वेर्टी (Querty) कुंजीपटल पर आधारित है। इस कुंजीपटल की सहायता से सभी भारतीय लिपियों और अंगरेज़ी में कुंजीयन का कार्य किया जा सकता है और उनमें परस्पर लिप्यंतरण (transliteration) भी किया जा सकता है। इसमें विशेषक चिह्नों (diacritic marks) के साथ रोमन लिपि को भी शामिल किया गया है। इसकी सहायता से भारतीय लिपियों से अपरिचित होते हुए भी रोमन लिपि में भारतीय भाषाओं के पाठ का कुंजीयन किया जा सकता है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित चिह्नों के साथ वैदिक स्वरों का कुंजीयन भी इसकी सहायता से बखूबी किया जा सकता है। भारतीय लिपियों की कलात्मकता और वैशिष्ट्य को संजोये रखते हुए प्रकाशन का कार्य करने के लिए ISFOC (Intelligence based Script Font Code) का विकास किया गया है। इस्फॉक के विकास के फलस्वरूप आज भारतीय भाषाओं में प्रकाशन विश्व-प्रकाशन के समकक्ष आ गया है।

विभिन्न परिचालन (Operation Systems) में कंप्यूटर साधित संसाधन

आज 'डॉस', 'यूनिक्स', 'नेटवर्किंग' आदि सभी परिचालन प्रणालियों (Operation Systems) या प्लेटफॉर्मों पर भारतीय भाषाओं में संसाधन की सुविधा मौजूद है। इस कार्य में अनेक सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं का योगदान रहा है। सरकारी संस्थाओं में भारत के लिए सुपर कंप्यूटर के निर्माता पुणे (महाराष्ट्र) स्थित 'सी-डैक' का योगदान अप्रतिम है। इस संस्था ने

भारतीय भाषाओं के लिए सॉफ्टवेयरों की एक पूरी शृंखला विकसित की है। 'डॉस' परिवेश के अंतर्गत भारत की सभी प्रमुख संस्थाओं ने शब्द संसाधन (word processing) के पैकेज विकसित किये। इनमें प्रमुख हैं - 'एएलपी', 'मल्टीवर्ड', 'शब्दरत्न', 'शब्दमाला', 'अक्षर', 'बाईस्क्रिप्ट', 'सुवर्ड' आदि। शब्द-संसाधन के साथ-साथ डाटा संसाधन (Data Processing) का कार्य हिंदी में करने के लिए 'सी-डैक' ने 'जिस्ट कार्ड', आर.के. कंप्यूटर्स ने 'सुलिपि' और 'सॉफ्टेक' कंपनी ने 'देवबेस' का विकास किया, किन्तु जहां **'सुलिपि'** और **'देवबेस'** में भारतीय भाषाओं में **केवल हिंदी को ही समाहित किया गया है**, वहां सी-डैक, पुणे द्वारा विकसित 'जिस्ट' कार्ड में भारतीय भाषाओं की सभी लिपियों के साथ-साथ दक्षिण-पूर्व एशिया और यूरोप की लिपियों को भी समाहित किया गया है। फ़ारसी-अरबी पर आधारित उर्दू लिपि भी 'जिस्ट' कार्ड की अन्यतम विशेषता है, किंतु ये सभी सॉफ्टवेयर आईबीएम-पीसी के लिए हैं। मैक (MAC) प्लेटफार्म के लिए सी-डैक ने 'एएलपी' शब्द-संसाधन का विशेष वर्शन (version) विकसित किया है।

इसमें संदेह नहीं कि इन सॉफ्टवेयरों के माध्यम से डॉस परिवेश के अंतर्गत सरलता से हिंदी में काम किया जा सकता है, किंतु अभी भी इनके कमांड और मेन्यू आदि अंगरेज़ी में ही हैं। इस कठिनाई को देखते हुए आईबीएम टाटा कंपनी ने आर.के. कंप्यूटर्स की मदद से **'हिंदी डॉस'** नाम से एक ऐसी परिचालन प्रणाली (Operating System) का विकास किया है जिसके अंतर्गत **'कमांड' और 'मेन्यू' भी हिंदी में दिये गये हैं और फाइल का नाम भी हिंदी में दिया जा सकता है।** यूनिक्स परिवेश के अंतर्गत **सी-डैक ने 'जिस्ट टर्मिलन' और आर.के. कंप्यूटर्स ने 'सुयूनिक्स' का विकास किया है।** सी-डैक ने यूनिक्स परिवेश के अंतर्गत शब्द संसाधन के लिए एएलपी का यूनिक्स दर्श (version) भी विकासित किया है, जिसमें स्पैल-चैकर आदि की अधुनातन सुविधाएं भी मौजूद हैं। किंतु आज आम आदमी के लिए सर्वाधिक मैत्रीपूर्ण प्लेटफॉर्म है 'विंडोज'। इस प्लेटफार्म पर भारतीय भाषाओं में विभिन्न प्रकार के 'इंटरफेस' विकसित किये गये हैं, इनमें प्रमुख हैं - सी-डैक द्वारा विकसित 'लीप ऑफिस' और 'इज़्म ऑफिस', आर.के. कप्यूटर्स द्वारा विकसित 'सुविंडोज', एसीईएस कंसल्टैंट्स द्वारा विकसित 'आकृति ऑफिस' और 'सॉफ्टेक'

कंपनी द्वारा विकसित 'अक्षर फॉर विंडोज' आदि। मैक प्लेटफार्म के लिए सी-डैक ने 'मैक इज़्म' का विकास किया है, जिसके माध्यम से **पेजमेकर और क्वार्क एक्सप्रेस आदि में भी हिंदी में कार्य किया जा सकता है।** इनमें एम.एस. ऑफिस के अंतर्गत समाविष्ट सभी सॉफ्टवेयरों में विभिन्न भारतीय लिपियों में काम करने की सुविधा उपलब्ध है। वस्तुतः विंडोज़ और एम.एस. ऑफिस की लोकप्रियता के कारण आज सभी कंपनियां भारत की विभिन्न लिपियों में फॉंट (font) एम.एस. आफिस पैकेज के साथ ही देने लगी हैं, किंतु 'स्पैल-चैकर' और 'ऑन-लाइन' शब्दकोश की सुविधा उपर्युक्त सॉफ्टवेयरों में ही उपलब्ध है।

हिंदी में डीटीपी अर्थात् डेस्क प्रकाशन

यह तो स्पष्ट ही है कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशन कार्य में गुणात्मक सुधार लाने में 'इस्फॉक' मानक फॉंट की विशेष भूमिका है। इस कार्य के लिए भी सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही स्तरों पर कई सॉफ्टवेयर विकसित किये गये हैं। इनमें प्रमुख हैं - 'समिट' द्वारा विकसित 'इंडिका', 'एसआरजी' द्वारा विकसित 'प्रकाशक' और 'सी-डैक' द्वारा विकसित 'इज़्म पब्लिशर' या 'इज़्म सॉफ्ट' आदि। वस्तुतः हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशन कार्य में क्रांति तब आयेगी, जब लेखक स्वयं अपने कंप्यूटर पर अपनी पांडुलिपि को टंकित करेगा। प्रयोक्ता की सुविधा के लिए सभी प्रमुख सॉफ्टवेयरों में हिंदी में तीन प्रकार के कुंजीपटल की व्यवस्था है। 'Tool' के अंतर्गत 'Option' से आप तीनों में किसी एक कुंजीपटल का चुनाव कर सकते हैं। यांत्रिक टाइपराइटर पर काम करने के अभ्यस्त टाइपिस्ट 'Typewriter' विकल्प का चुनाव कर सकते हैं और 'क्वेर्टी' कुंजीपटल पर रोमन लिपि में काम करने के अभ्यस्त प्रयोक्ता 'Phonetic English' का चुनाव कर सकते हैं, किंतु मूलतः कंप्यूटर पर ही टंकण सीखने वाले लेखकों और अन्य प्रयोक्ताओं के लिए 'इन्स्क्रिप्ट' (Inscript) कुंजीपटल का विकास किया गया है। सी-डैक ने व्यक्तिगत स्तर पर लेखकों के कुंजीपटल को सरल बनाने के लिए 'आई-लीप' (ileap) नामक अत्यंत मैत्रीपूर्ण और कलात्मक इंटरफेस का विकास किया है। इसके माध्यम से लेखक न केवल अपनी पांडुलिपि स्वयं टंकित कर सकते हैं, बल्कि 'बहुभाषी स्पैलचैकर' की

सहायता से उसमें प्रूफ-संशोधन भी कर सकते हैं। प्रूफ संशोधन के बाद 'पेज-लेआउट' तैयार करके व्यक्तिगत स्तर पर प्रकाशन कार्य (Personal Publishing) भी कर सकते हैं। 'वेब प्रकाशन' (Web Publishing) अतिरिक्त सुविधा के कारण इसके माध्यम से लेखक या प्रयोक्ता इंटरनेट पर अपना 'होमपेज' या 'वेबपेज' बना सकते हैं। इस सॉफ्टवेयर में भी सभी भारतीय भाषाओं में उक्त सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। हाल ही में सी-डैक ने कला-चित्रों का एक संलन 'शैली' नाम से जारी किया है। इसमें रंगोली के चित्रों से लेकर भारतीय भाषाओं के प्रतीक 'क्लिपर्ड' के रूप में दिये गये हैं। इन्हें 'कोरल ड्रा' '3-डी स्टूडियो' और वेब प्रकाशन के सॉफ्टवेयरों के साथ भारतीय भाषाओं का संयोजन करते हुए इस्तेमाल किया जा सकता है।

इंटरनेट, ई-मूल और वेब पब्लिशिंग

आज विंडोज का अधुनातन वर्शन (version) है - विंडोज़ 2000, इसे 'विंडोज एनटी 50' कहा जाता है। इसी के अनुरूप माइक्रोसॉफ्ट कंपनी ने एम.एस. ऑफिस के अंतर्गत 'ऑफिस 2000' भी रिलीज़ किया है। इसमें विश्व की सभी जटिलतम लिपियों को समाहित किया गया है। इनमें प्रमुख हैं - अरबी, हिब्रू, थाई, देवनागरी और तमिल। वस्तुत: अभी तक 'विंडोज' के अंतर्गत विभिन्न भाषाओं में मात्र कुंजीयन (Keying) की सुविधा मौजूद थी। 'विंडोज़ 2000' के आगमन के कारण स्थानीय भाषाओं में 'इंटरफेस' की सुविधा भी उपलब्ध हो गयी है अर्थात् अब हम देवनागरी में न केवल संदेशों का आदान-प्रदान कर सकते हैं, बल्कि पाठों के कुंजीयन के साथ-साथ 'मेन्यु' (menu) भी देवनागरी में देख सकते हैं। 'यूनिकोड' पर आधारित होने के कारण इसमें 'इस्की' कोडिंग प्रणाली का समावेश भी अनायास ही हो गया है। यद्यपि ई-मेल और 'वेब प्रकाशन की सुविधा 'विंडोज़ 95' और 'विंडोज़ 98' में भी उपलब्ध थी, लेकिन अब ये कार्य बहुत सरलता से सभी भारतीय लिपियों में किये जा सकेंगे।

सी-डैक द्वारा विकसित 'आई-लीप', 'लीप-ऑफिस 20' तथा आर.के. कंप्यूटर्स द्वारा विकसित 'सुविंडोज़ 20' के माध्यम से आज न केवल ई-मेल के संदेशों का आदान-प्रदान देवनागरी में किया जा सकता है, अपितु वेब-पेज भी हिंदी में लिखा जा सकता है। किंतु जहां

आई-लीप और 'लीप ऑफिस 20' में यह सुविधा सभी भारतीय भाषाओं में सुलभ है, वहां 'सुविंडोज़ 20' से यह सुविधा केवल देवनागरी में है, किंतु सी-डैक द्वारा 'हॉटमेल' के समकक्ष हिंदी और मराठी में 'मल्टीमेल' की सुविधा भी प्रदान की गयी है। यह निश्चय ही क्रांतिकारी कदम है। इसके माध्यम से न केवल संदेशों का आदान-प्रदान हिंदी में किया जा सकता है, बल्कि 'कमांड' और 'मेन्यु' भी हिंदी में ही दिये गये हैं। प्रयोक्ता अपना 'पासवर्ड' भी हिंदी में दे सकता है। इंटरनेट पर इसका पता इस प्रकार है : http://www.gist.cdac.org और ई-मेल का पता इस प्रकार है - hody@cdac.ernet.in।

इलेक्ट्रॉनिक और प्रसारण माध्यमों में मल्टी-मीडिया वीडियो कार्य

विश्व-इतिहास में वही राज्य या देश शक्तिशाली माना जाता रहा है जिसके पास सैन्यबल या अर्थबल रहा हो, किंतु आज के युग में वही देश शक्तिशाली माना जाता है जिसके पास सूचना-बल हो; जिसका सूचना-तंत्र मज़बूत हो। कंप्यूटर, वीडियो, टी.वी. और संचार (communication) के संयोजन से एक ऐसा सूचना-विस्फोट हुआ है जिसके प्रभाव से सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) का वर्चस्व बहुत बढ़ गया है। भारत में वैश्वीकरण (Globalozation), आर्थिक उदारीकरण (Economic Liberalization) और निजीकरण (Privatization) के परिप्रेक्ष्य में यह सोचना अनिवार्य हो गया है कि यदि आम लोगों को इस टेक्नोलॉजी का लाभ पहुंचाना है तो इसे भारतीय भाषाओं में सुलभ कराना आवश्यक है। पिछले वर्ष पूणे में सार्क देशों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया था, जिसमें यह बात उभरकर सामने आयी थी कि सूचना-विस्फोट के फलस्वरूप अंगरेज़ी का वर्चस्व भी सारे विश्व में कायम हो गया है और यदि कोई देश या कोई भाषा इस दौड़ में पिछड़ जाती है तो उसके नि:शेष होने के खतरे में भी बढ़ जायेंगे। रोमन लिपि के बढ़ते प्रभाव के कारण विश्व की अनेक लिपियां समाप्त हो गयी हैं। किंतु भारतीय भाषाओं के संदर्भ में स्थितियां इतनी निराशाजनक नहीं हैं। सी-डैक ने इस क्षेत्र में भी चुनौती को स्वीकार किया है और मल्टी-मीडिया वीडियो कार्यों की एक पूरी शृंखला विकसित कर दी है। इसके अंतर्गत 'लिप्स' (Language Independent Program Sub-titles)

नाम से एक सॉफ्टवेयर विकसित किया गया है। जिसके माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं में फिल्मों के उप-शीर्षक (sub-titles) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में तैयार किये जा सकते हैं। इसके फलस्वरूप अपने ड्राइंगरूम में बैठकर अपनी पसंद की किसी भी भारतीय भाषा में विदेशी फिल्में भी देखी जा सकती हैं। टी.वी. पर भारतीय भाषाओं में समाचार-वाचन के लिए 'मल्टी प्रॉम्प्टर' (Multi Prompter) का विकास किया गया है जिसके माध्यम से समाचार-वाचक बिना कागज़ देखे समाचार पढ़ सकता है और आवश्यकतानुसार स्क्रॉलिंग की गति को नियंत्रित भी कर सकता है। 'मूव' (MOVE) अर्थात् Multi Script Online Video Editor एक ऐसा बहुभाषी अक्षर-जनरेटर है जिसके द्वारा दूरदर्शन और फिल्मों में पात्रों के नाम भारतीय भाषाओं में अंकित किये जा सकते हैं। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में 'बटरफ्लाई' (Butterfly) नाम से डबिंग स्टेशन भी विकसित किया गया है और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में सीडी बनाने के लिए 'कमेलियन' (chameleon) नामक सॉफ्टवेयर का विकास किया गया है।

इसके अतिरिक्त 'मोटरोला' कंपनी ने सन् 1997 में 'देवनागरी' और गुजराती में 'पेजर' का निर्माण भी किया है और भारतीय भाषाओं में पेजर टेक्नोलॉजी के विकास के लिए 'इस्क्लप' (ISCLAP) अर्थात् Indian Standard Code for Language Paging के मानक का विकास किया था और यह मानक 'इस्की' (ISCII) के ही अनुरूप है। इसके द्वारा संदेशों का आदान-प्रदान पेजर पर भी हिंदी में करना संभव हो गया है।

कृत्रिम बुद्धि (Arificial Intelligence) पर आधारित विशेषज्ञ प्रणालियों (Expert Systems) का विकास

कंप्यूटर टेक्नोलॉजी के अंतर्गत प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing) के क्षेत्र में विश्व भर में अनेक विशेषज्ञ प्रणालियों (expert systems) का विकास किया गया है, जिनके माध्यम से कंप्यूटर साधित भाषा-शिक्षण, मशीनी अनुवाद और वाक् संसाधन (Speech Processing) से संबंधित विभिन्न अनुप्रयोग विकसित किये गये हैं। इस संबंध में आई.

आई.टी. कानुपर के सहयोग से हैदराबाद विश्वविद्यालय में 'अनुसारक' नाम से एक ऐसी स्वचालित मशीनी अनुवाद-प्रणाली का विकास किया गया है जिसके माध्यम से विभिन्न भारतीय भाषाओं में परस्पर 'शाब्दिक अनुवाद' की व्यवस्था है। यह तो स्पष्ट ही है कि सभी भारतीय भाषाओं में वाक्य-विन्यास एक जैसा है। यदि कहीं कुछ अंतर है भी, तो वह अंतर इतना बड़ा नहीं है कि उससे 'अर्थ' का 'अनर्थ' हो जाये। यही कारण है कि अंगरेज़ी से हिंदी में अनुवाद के लिए 'अनुसारक' प्रणाली सफल नहीं हो पायी हैं। किंतु भारतीय भाषाओं के संदर्भ में यह प्रणाली अपनी सीमाओं के बावजूद काफी हद तक सफल मानी जा सकती है। अब तक 'अनुसारक' प्रणाली तेलुगु-हिंदी, कन्नड़-हिंदी, बांग्ला-हिंदी, मराठी-हिंदी और कुछ हद तक पंजाबी-हिंदी में भी विकसित की गयी है। इसके अतिरिक्त, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से सी-डैक के 'ए.ए.आई.' ग्रुप ने भी 'मंत्र' (Machine-assisted Translation tool) नाम से एक ऐसी स्वचालित मशीनी अनुवाद-प्रणाली विकसित की है जिसके माध्यम से नियुक्ति और पदोन्नति से संबंधित भारत के राजपत्र की अधिसूचनाओं को अंगरेज़ी से हिंदी में अनूदित किया जा सकता है। यद्यपि इसका प्रयोग-क्षेत्र अत्यंत सीमित है, किंतु अधिसूचनाओं की जटिल वाक्य-रचनाओं को देखते हुए यह प्रयास निश्चय ही सराहनीय है। इंटेल कंपनी की सलाह पर 'स्मिथसोनियन' संस्था ने इसे सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अत्यंत साहसिक और सराहनीय कदम के रूप में स्वीकार किया है। इसके अलावा, इसी ग्रुप ने 'लीला प्रबोध' नामक स्वयंशिक्षक पैकेज का भी विकास किया है। यह पैकेज पूर्णतः मल्टीमीडिया कंप्यूटर प्रणाली पर आधारित है और इसमें आवाज़ (speech), चित्रों (graphics) और एनिमेशन का भरपूर उपयोग किया गया है। इसमें अनेक प्रकार के वीडियो क्लिपिंग्स भी रखे गये हैं ताकि शिक्षार्थी बड़े जीवंत रूप में और सहजता के साथ इसके माध्यम से हिंदी सीख सकें।

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर संबंधी विभिन्न अनुप्रयोग

भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर टैक्नोलॉजी के विकास के कारण आज जटिल से जटिल कंप्यूटर संबंधी अनुप्रयोगों में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का व्यापक रूप से प्रयोग किया जा

रहा है। भारतीय रेल द्वारा आरक्षण व्यवस्था के कंप्यूटरीकरण के कारण आम आदमी को बहुत सुविधा हो गयी है और अब यह सुविधा एक विशेष टेक्नोलॉजी के माध्यम से हिंदी में भी सुलभ है। इस कार्य में 'सीएमसी' और 'क्रिप्स' जैसी वैज्ञानिक संस्थाओं का प्रमुख योगदान है। आजकल भारत में हो रहे आम चुनावों में करोड़ों मतदाताओं की सूचियां कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में तैयार की गयी हैं। भारतीय चुनाव आयोग द्वारा वितरित अधिकांश परिचय-पत्र भी भारतीय भाषाओं में तैयार किये गये हैं। महाराष्ट्र बिजली बोर्ड की रसीदें कंप्यूटर के माध्यम से मराठी में छापी जा रही हैं। उड़ीसा के पटवारी और जमीन से संबंधित रिकार्ड कंप्यूटर पर उड़िया में तैयार कर रहे हैं। आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में अनेक सरकारी काम क्रमशः तेलुगु और तमिल में संपन्न किये जा रहे हैं।

आज अनेक गौरव-ग्रंथ (classics) और महत्वपूर्ण सूचनाएं भी सीडी के रूप में भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होने लगी हैं। इसमें प्रमुख हैं - सी-डैक द्वारा विकसित 'ज्ञानेश्वरी', भारतीय चुनाव आयोग द्वारा तैयार की गयी मतदाता सूचियां, कुछ निजी संस्थाओं द्वारा विकसित 'पंचतंत्र की कथाएं' और गेटवे मल्टीमीडिया इंडिया लिमिटेड, अहमदाबाद द्वारा विकसित विशाल अंगरेजी-हिंदी शब्दकोश।

हम अगली सदी और सहस्राब्दी (millennnium) की दहलीज़ पर खड़े हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के सामने आने वाली चुनौतियों को रेखांकित करें। इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव इस प्रकार हैं -

1. हिंदी के प्रमुख गौरव-ग्रंथों (Classics) को चिह्नित करना और उन्हें सीडी के रूप में उपलब्ध कराना।
2. हिंदी में ओ.सी.आर. (Optical Character Recognition) का निर्माण।
3. अधिक से अधिक वेब ठिकानों (websites) को हिंदी में निर्मित करना।
4. हिंदी में स्पीच इनपुट-आउटपुट सिस्टम विकसित करना।
5. पूर्णतः स्वचालित कंप्यूटर साधित मशीनी अनुवाद-प्रणाली का विकास।

-000-

बैंकों में हिंदी

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने राष्ट्रीय एकता व भावात्मक एकता की कड़ी हिंदी भाषा पर चिंतन-अनुचिंतन के बाद 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने तथा केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी की श्रीवृद्धि, इसके प्रचार-प्रसार एवं प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने का साहसी निर्णय लिया।

स्वतंत्रता मिलने के बाद हर देश के सामने यदि कोई उत्तेजक एवं विवादास्पद सवाल उठा है तो वह भाषा नीति का निर्धारण और उसका सुदृढ़ता से कार्यान्वयन हो रहा है। चीन, जापान, फ्रांस, तुर्की आदि देश साक्षी हैं कि उन्होंने अपनी-अपनी राजभाषा के महत्व को समझा, उसकी एक स्थिर-नीति अपनायी तथा निर्धारित समय-सीमा में उसका कार्यान्वयन भी किया।

सन् 1947 में विदेशी दासता से मुक्ति तो मिल गयी, लेकिन भारत भूमि पर अंकुरित एवं विकसित ब्रिटिश बैंकिंग व्यवस्था के अधीन भारतीय बैंकिंग पद्धति को चलाना हमारी नियति बन गया। उस समय बैंकिंग कारोबार का सरोकार अंगरेजी जानने वाले एवं शिक्षित मुट्ठी भर लोगों का सुख और आराम था। आम जनता बैंकिंग सुविधाओं से कोसों दूर थी। बैंकिंग का समस्त कामकाज केवल अंगरेजी में ही होता था। उस समय अनुवादकों एवं हिंदी अधिकारियों की नियुक्तियां भी नहीं के बराबर थीं। हां, बैंकिंग के आंतरिक कामकाज-संबंधी साहित्य के अनुवाद-कार्य विषयक कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं। लेकिन यह अनुवाद-कार्य फारसी तक ही सीमित था। अंगरेजी से हिंदी में अनुवाद करने का प्रतिशत बहुत कम था। कई नियमों, विनियमों, अनुदेश पुस्तिकाओं एवं प्रलेखों का फारसी से हिंदी एवं अंगरेजी से फारसी में अनुवाद होने के बाद भी बैंकिंग क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग नहीं के बराबर था। चूंकि बैंकिंग व्यवस्था अंगरेजी से विरासत में मिली थी, अत: स्वाभाविक है कि जनता के साथ लेन-देन संबंधी साहित्य एवं बैंकों का आंतरिक कामकाजी साहित्य केवल अंगरेजी भाषा में ही उपलब्ध था। दिलचस्प है कि 18 जुलाई, 1969 तक बैंकिंग जगत के समग्र साहित्य को अंगरेजी से हिंदी में अनूदित करने की कोई आवश्यकता भी महसूस नहीं की गयी।

उल्लेखनीय है कि सन् 1963 का राजभाषा अधिनियम, 19 जुलाई, 1969 में 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण, सन् 1976 में बनाये गये राजभाषा नियम एवं सन् 1980 में अन्य छह बैंकों का राष्ट्रीयकरण आदि ऐसे महत्वपूर्ण घटक हैं जिनके चलते बैंकों में हिंदी प्रयोग का शुभारंभ हुआ। राजभाषा अधिनियम, सन् 1963 की धारा 3.3 ने राष्ट्रीयकृत बैंकों को हिंदी प्रयोग की दृष्टि से अपनी गिरफ़्त में ले लिया और उनके सामान्य आदेशों, नियमों, संकल्पों, अधिसूचनाओं, रिपोर्टों, प्रेस-विज्ञप्तियों, संविदाओं, करारों, अनुज्ञा पत्रों, निविदा फार्मों आदि न जाने कितने बैंकिंग साहित्यिक विषयों का अंगरेजी से हिंदी में अनुवाद करने के लिए बाध्य कर दिया। यही वह निर्णायक कदम था जहां से बैंकों में हिंदी की यात्रा अनुवाद के माध्यम से शुरू हुई। बैंकों में हिंदी आरंभ करने में चार बातें गंभीर रूप से महसूस की गयीं –

1. एक शीर्ष अथवा केंद्रीय बैंक का होना,
2. शब्दावलियों एवं अन्य संदर्भ साहित्य की उपलब्धता,
3. राजभाषा अधिकारियों, हिंदी अनुवादकों एवं हिंदी सहायकों की नियुक्तियां,
4. हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने में प्रबंध तंत्र, विशेषकर कार्यपालकों के सहयोग एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता।

यह सुखद ही रहा कि भारतीय रिज़र्व बैंक एक शीर्ष बैंक के रूप में उभरा। सन् 1971 में आयोजित की गयी पहली चार बैठकों में रिज़र्व बैंक ने चेक-बुक, जमापर्ची, आवेदन-पत्र आदि के मानक फार्म हिंदी और अंगरेजी दोनों भाषाओं में प्राथमिकता के आधार पर शुरू करने के लिए सरकारी क्षेत्र के बैंकों को आदेश दिया। सन् 1975 के आते-आते बैंकों के प्रधान कार्यालयों एवं आंचलिक कार्यालयों में राजभाषा प्रभाग एवं राजभाषा कक्ष-स्थापित हो चुके थे। फिर सन् 1980 से बैंकों में विधिवत राजभाषा अधिकारियों की नियुक्तियां शुरू हुईं। सन् 1986-87 तक बैंक हिंदी-संस्कार के साथ पूरी तरह से जुड़ गये। बैंक महानगरों, शहरों एवं कस्बों से निकलकर गांवों की पगडंडियों पर चलने लगे और देखते ही देखते हजारों की संख्या में ग्रामीण शाखाएं खुल गयीं जिनकी बोलचाल की भाषा हिंदी है। ग्राहकों के साथ उनकी भाषा में ही बातचीत करने तथा लिखित व मौखिक बैंक सेवाएं प्रदान करने के लिए पदनाम शब्दावली, बैंकिंग शब्दावली, कृषि शब्दावली, सुरक्षा शब्दावली, विधि शब्दावली, विदेशी विनियम शब्दावली आदि का निर्माण किया

गया जिससे कि ग्राहक-सेवा, बैंकिंग पत्र-व्यवहार एवं बैंक के आंतरिक कामकाज में हिंदी-प्रयोग को अधिकाधिक बढ़ावा दिया जा सके।

बैंकों के महाविद्यालय एवं प्रशिक्षण-केंद्र हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

वर्तमान में भारतीय रिजर्व बैंक एवं अन्य सरकारी क्षेत्र के बैंकों के प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवं केंद्रों में न केवल सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं विशिष्ट कार्यक्रमों को हिंदी में चलाया जा रहा है, बल्कि इन कार्यक्रमों के सहभागियों को हिंदी में पाठ्य-सामग्री भी उपलब्ध करायी जाती है। कंप्यूटर शब्दावली (अंगरेजी-हिंदी) के निर्माण से कंप्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रमों को हिंदी में संचालित करने तथा संदर्भ-सामग्री हिंदी में तैयार करने का कार्य जोरों पर है। बैंकिंग महाविद्यालयों के कई संकाय अपनी शोध-परियोजनाओं को हिंदी में तैयार करके राजभाषा हिंदी को बैंकों में बढ़ावा देने की दिशा में प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। गुणवत्ता एवं उपयोगिता की दृष्टि से ये परियोजनाएं बड़ी सफल एवं परिणामोन्मुख सिद्ध हुई हैं।

बैंकों में आधुनिक तकनीक की कसौटी पर भी हिंदी खरी उतरी है। कंप्यूटर, ई-मेल इंटरनेट आदि आधुनिक संचार प्रणालियों में भी हिंदी के प्रयोग के कई आयाम खुले हैं तथा कुछेक क्षेत्रों में तो हिंदी का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया जा रहा है। न केवल इतना, बल्कि त्वरित बदलती तकनीक में हिंदी को और अधिक निकटता से कैसे जोड़ा जाय, सूचना प्रौद्योगिकी में नूतन परिवर्तन के अनुसार हिंदी को कैसे ढाला जाये, कंप्यूटर बैंकिंग अनुवाद में क्या मदद कर सकता है, आदि ज्वलंत प्रश्नों पर बैंक बड़ी गंभीरता से सोच रहे हैं। किंतु किसी भी तकनीक के उपयोग का अपना विशिष्ट महत्व होता है। यदि तकनीक सहयोग करने वाली है तो वह कर्मचारियों एवं कार्यकर्ताओं को आकृष्ट करेगी। यदि बारीकियां छूट जायेंगी तो वह उत्पाद या तकनीक उतनी कामयाब नहीं होगी। ज़ाहिर है कि पारंपरिक मानक प्रक्रियाओं, ढंगों एवं शैलियों को बदलना पड़ेगा। कंप्यटर विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि कंप्यूटर पर हिंदी में काम करने के लिए कर्मचारियों की मानसिकता भी बदलने की आवश्यकता है। इससे सूचना तकनीक में हिंदी को और बढ़ावा देने में

मदद मिलेगी। कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करने वाले कर्मचारियों से जो प्रतिसूचना प्राप्त होती है, उसे गंभीरता से आकलित एवं विश्लेषित किया जाना चाहिए ताकि प्रयोगकर्ता की रुचि, उत्पाद की गुणवत्ता एवं तकनीक परिवर्तन तीनों का एक संधि-स्थल बन सके और सुधार तथा संभाव्य सुविधाओं के द्वार खुल सकें।

अब बैंकों में देवनागरी में यांत्रिक और इलेक्ट्रॉनिक सुविधाएं अत्यंत गतिमान हैं। इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटरों, पतालेखी मशीनों, टैलेक्टस, कंप्यूटर आदि पर हिंदी या द्विभाषिक रूप में बैंकिंग कार्यों का प्रतिशत बढ़ा है। कंप्यूटर पर हिंदी में 'शब्द-संसाधन' एवं 'डाटा संसाधन' दोनों स्तरों पर कार्य किया जा रहा है। जिस्ट शैल, जिस्ट कार्ड तथा जिस्ट टर्मिनल, 'बैंकिंग मित्र' विंडोज, मैट, गुरु आदि ऐसे साधन हैं जिनके माध्यम से बैंक कर्मचारी-अधिकारी न केवल हिंदी प्रशिक्षण की सुविधाएं प्राप्त कर रहे हैं, बल्कि बैंकों में चरणवार संवेदनशील क्षेत्रों में इनका हिंदी में या द्विभाषिक रूप में प्रयोग करने के अवसर भी प्राप्त किये जा रहे हैं। पिछले लगभग एक दशक से बैंकों में हिंदी के प्रयोग में आशातीत वृद्धि हुई है जिसे संसदीय राजभाषा समिति एवं गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग के पदाधिकारियों द्वारा हिंदी निरीक्षण के दौरान सराहा भी गया है। संसदीय राजभाषा समिति के मौखिक साक्ष्य कार्यक्रमों में भी अन्य संगठनों, उपक्रमों, वित्तीय संस्थाओं की तुलना में बैंकों में हिंदी-कार्य की बढ़त की विशेष चर्चा रही है। राजभाषा हिंदी स्वर्णजयंती वर्ष के उपलक्ष्य में प्रत्येक बैंक ने एक विशिष्ट हिंदी कार्य-योजना बनायी है जिससे हिंदी-प्रयोग को सुव्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ाने में पर्याप्त सहायता मिलेगी। इस योजना के अंतर्गत विशेष रूप से कंप्यूटर पर हिंदी में अधिकाधिक कार्य करना है।

000

हिन्दी का विकासशील स्वरूप

1. नागरी वर्ण, ध्वनि और अक्षरों की अवृत्ति तथा देवनागरी में नवीनतम सुविधाएं

भारत के संविधान के भाग सत्रह के अनुच्छेद 343 (1) की व्यवस्था के अनुसार 'संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।'।

इससे स्पष्ट है कि 'देवनागरी लिपि' को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। वर्ण, ध्वनि तथा अक्षरों की आवृत्ति का सीधा संबंध टाइपराइटर के की-बोर्ड (कुंजीपटल) से है। हिंदी भाषा में आवृत्तिपरक अध्ययन सीमित मात्रा में है। अधिकांश शोध कार्य शब्दों की आवृत्ति पर ही सम्पन्न हुआ।

हिंदी वर्णों की आवृत्ति पर डॉ0 धीरेंद्र वर्मा का महत्वपूर्ण आलेख 'हिंदी वर्णों का प्रयोग' शीर्षक से द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ में (पृ. 427-429) प्रकाशित है। वर्णों तथा ध्वनियों की आवृत्ति का सीधा संबंध टाइपराइटर के कुंजीपटल से है। एक-एक 'की' (कुंजी) का महत्व होता है। पुरानी कहावत है कि **'ऋषियों को किसी वाक्य में एक वर्ण घटाने से उतनी ही प्रसन्नता होती है, जितनी किसी पुत्र जन्म से।' आज यांत्रिक युग में यही बात यंत्रों पर लागू होती है। यदि खोजबीन कर टाइपराइटर की एक भी 'की' (कुंजी) घटा सकें अथवा अधिक गति लाने के लिए उसका स्थान बदल कर अन्यत्र निश्चित कर सकें तो महत्व कम नहीं है।** टाइपराइटर में कौन वर्ण पूरे रखे जाएं और कौन आधे (बिना स्वर), यह भी महत्वपूर्ण है। यह भी प्रयास किया गया कि केवल आधे अक्षर (स्वर रहित पूर्ण व्यंजन) रखे जाएं और खड़ी पाई स्वचालित हो जो प्रत्येक आधे अक्षर में आप-से-आप लग जाए। इस प्रयास से काफी 'की' बच सकती हैं। स्वचालित अथवा आगे न बढ़ने की पद्धति, यंत्र में उसके जानकार आसानी से डाल सकते हैं। आज तो यह सर्वविदित है कि मात्राएं लगाने के बाद स्वत: ही रोलर आगे नहीं बढ़ता या कहें स्पेस नहीं दिया जाता। इस प्रकार की निष्क्रिय कुंजियों (डैड कीज) की व्यवस्था बहुत पहले रेमिंगटन ने कर दी थी।

किस वर्ण का स्थान 'की बोर्ड' में कहां निश्चित किया जाए, यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है और इसका सीधा संबंध आवृत्ति से है। किन्हीं पूर्ण वर्णों की आवृत्ति अधिक हो सकती है और किन्हीं अर्ध वर्णों (स्वर रहित पूर्ण व्यंजन) की। अर्द्ध वर्ण से तात्पर्य यह है कि वे मात्र व्यंजन हैं (स्वर रहित)। नागरी लिपि अक्षरात्मक लिपि है, जबकि रोमन लिपि नहीं।

उदाहरण के लिए 'ण', 'ध', 'श', 'ष', 'क्ष' वर्णों के आधे रूपों की (स्वर रहित) आवृत्ति पूरे वर्णों (स्वर सहित) की तुलना में अधिक है। कुछ वर्ण पूरे ही अधिक प्रयोग में आते हैं, आधे (स्वर रहित रूप) वर्णों की आवृत्ति नगण्य है, जैसे :

ग - .0325%
थ - .0055%
भ - .027%
य - .012%

यह उल्लेखनीय है कि 'ड' तथा 'ढ़' व्यंजनों का प्रयोग हलन्त रूप में नहीं होता है। सबसे कम प्रयुक्त वर्ण/ध्वनि 'ढ' है।

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार स्वरों की प्रयोगावृत्ति इस प्रकार है :

अ	37.8 (प्राय: अंतर्मुक्त रहता है)
आ	14.1
इ	10.0
ई	7.1
उ	4.00
ऊ	0.7
ए	1.3
ऐ	3.7
ओ	4.7
औ	1.0

(सर्वाधिक-कम 'ऋ' की आवृत्ति (0.4) है।)

स्वरों में पूर्ण स्वर-चिह्नों की अपेक्षा मात्रा-चिह्नों का प्रयोग कहीं अधिक होता है किन्तु व्यंजनों में हलंत व्यंजनों की अपेक्षा पूर्ण व्यंजनों का प्रयोग अधिक होता है।

अगर सापेक्ष दृष्टि से देखें तो अधिकतम से निम्नतम आवृत्ति की स्थिति इस प्रकार है :

सर्वाधिक - एक सौ से अधिक	-	क, र
इक्यावर से एक सौ	-	ह, स, न, त, म, य
पचास तक	-	प, द, ब, ल, ज, झ, ग, श, व, ख, ष, भ
निम्नतम	-	च, थ, ट, छ, ण, ढ़, ढ, फ, ड़, ङ

कुछ इसी प्रकार के परिणाम दक्षिण इलीनोयस विश्वविद्यालय में हुए शोधकार्य से प्रकट हुए। नागरी के प्रथम ग्यारह वर्णों की स्थिति इस प्रकार है :

वर्ण	आवृत्ति	प्रतिशत
ा ('आ' स्वर की मात्रा)	11669	16.086
क	3375	4.653
र	3246	4.475
ह	3110	3.098
न	2247	3.038
('ए' स्वर की मात्रा)	2202	3.036
त	2026	2.789
स	2019	2.783
अ	1969	2.714
य	1687	2.326
प	1619	2.232

इसके बाद का क्रम इस प्रकार है :

'ै' (ऐ की मात्रा), ब, म, ल, व, ज, ग। कुल 429 वर्णों का आवृत्ति-क्रम निर्धारित किया गया है।

अधिकतम आवृत्ति 'ह आ' (व्यंजन - दीर्घ स्वर(सांचे की है जिसमें ही, थे, था, भी, सा, तो, वे, में, मैं, जा, दे, ले, दो, है, जो, हैं, का, के, की, को, से या आदि शब्दावली आती है। यह डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के निष्कर्ष से मेल खाती है - हिंदी शब्दों में (वर्ण) संख्या का औसत दो है इसका कारण एकाक्षरी कारक चिह्नों का अधिक प्रयाग है।

ह आ (व्यंजन - दीर्घ स्वर) सांचे की आदि स्थिति तथा अन्त्य स्थिति में आवृत्ति इस प्रकार है:

	आदि स्थिति	अन्त्य स्थिति
प्रतिशत	33	35

तुलना में अंग्रेजी में 'व्यंजन-स्वर-व्यंजन', 'स्वर व्यंजन' तथा 'व्यंजन स्वर' तीनों एकाक्षरित सांचों की आवृति क्रमशः 33.5, 20.3 तथा 21.8 प्रतिशत है।

हिंदी में आक्षरिक सांचों का प्रतिशत अधिकतम से निम्नतम इस प्रकार है :

हआ	(व्यंजन दीर्घ-स्वर)
ह अ ह	(व्यंजन-स्वर-व्यंजन)
आह	(दीर्घ स्वर- व्यंजन)
हआँ	(व्यंजन- अनुनासिक दीर्घ स्वर)
ह आ ह	(व्यंजन - दीर्घ स्वर - व्यंजन)
ह अ ह ह	(व्यंजन-स्वर-व्यंजन-व्यंजन)
हअ	(व्यंजन-स्वर)
हआँ ह	(व्यंजन-अनुनासिक दीर्घ-व्यंजन)

शेष सोचों की (आ, ह आ हह, ह आ, हहह, ह ह आ ह) आवृत्ति नगण्य है। इन सांचों की आवृत्ति के लिए लेखक का ग्रंथ 'हिंदी भाषा में अक्षर तथा शब्द की सीमा' (1970) नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्रष्टव्य है।

वर्ण-ध्वनियों की आवृत्ति पर काका कालेलकर समिति ने भी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी. जिसके आधार पर टाइपराइटर के कुंजी पटल को स्वरूप प्रदान किया गया। लेकिन बाद में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के तत्वावधान में फरवरी 1955 में देवनागरी लिपि सुधार, लखनऊ सम्मेलन (1953) की संस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए देवनागरी के कुंजी पटल को अंतिम रूप देने के लिए तीन सदस्यीय समिति बनाई गई। संचार मंत्रलय के श्री एस.एच. अग्रवाल, मुद्रण निदेशालय के श्री ए.सी.सेन तथा डॉ0 यदुवंशी सदस्य थे। इस समिति ने 4 मार्च, 1955 को अपना कार्य प्रारंभ किया और 1958 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उन्होंने दो प्रकार के की-बोर्ड प्रस्तुत किए। उसके बाद भी इन की-बोर्डो में निरन्तर संशोधन होता रहा और नया की-बोर्ड प्रस्तुत किया गया। अद्यतन संशोधित नवीन मानक देवनागरी कुंजीपटल आजकल प्रयोग में आ रहा है।

वर्तमान कुंजीपटल से उतनी गति नहीं आ पा रही है, जितनी गति रेमिंगटन के इससे पूर्व के 'की-बोर्ड' (1958-59) से आती थी।

इलैक्ट्रिक तथा इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर

हाथ से टाइप (मैनुअल) करने के साथ-साथ आज इलैक्ट्रिक तथा इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर भी उपलब्ध हैं। यह टाइपराइटर द्विभाषी रूप (रोमन देवनागरी) में भी उपलब्ध हैं। भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने 15 जून, 1987 को ही का.ज्ञा. सं. 120/5/20/87 द्वारा यह आदेश निकाला था कि 'केंद्रीय सरकार के सभी कार्यालयों में इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर केवल द्विभाषी रूप में ही खरीदे जाएं।' 28 मार्च, 1998 को यही बात इलैक्ट्रॉनिक टेलीप्रिंटर पर भी लागू कर दी गई।

इलैक्ट्रिक तथा इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर आधुनिक हैं। इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर अधुनातन तकनीक पर आधारित हैं, जिसमें छपाई के लिए एक से अधिक डेजी व्हील (Daisy wheel) प्रयोग किए जा सकते हैं। केवल दवेनागरी का डेजी व्हील लगाना ही पर्याप्त नहीं है वरन् मशीन में मूलरूप से देवनागरी के अक्षर पहचानने की क्षमता होनी चाहिए। इन टाइपराइटरों में स्वचालित करैक्शन, मोटे अक्षरों में टाइप करना, अक्षरों के नीचे लाइन लगाते हुए टाइप करने की सुविधाएं उपलब्धा हैं। बहुत से मॉडलों में डिस्पले की सुविधा भी है, जिससे सारी सामग्री को छापने से पहले

लाइन प्रिंटर की गति तीन सौ से दो हजार लाइनें प्रति मिनट होती हैं, जिसको नागरी के लिए उपयोग करने का प्रयत्न किया जा रहा है। **लेजर प्रिंटर की गति तीन सौ से दो हजार लाइनें प्रति मिनट होती हैं**, जिसको नागरी के लिए उपयोग करने का प्रयत्न किया जा रहा है। लेजर प्रिंटर आधुनिक तकनीक की देन है जिससे (फ्लॉपी डिस्क से) अति सूक्ष्म मुद्रण संभव है, जिसकी तुलना ऑफसेट मुद्रण से की जा सकती है। हिंदी में मुद्रण के लिए सॉफ्टवेयर की आवश्यकता है, जिसको तैयार करवाया जा सकता है।

अब तो हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में बड़ी मात्रा की छपाई को तेज गति से निपटाने के लिए 'लाइन मैट्रिक प्रिंटर' - लिपि एमटी-661 विकसित हो गया है। 'लिपि डेटा सिस्टम्स' से एक उन्नत प्रकार का 'शटल मैट्रिक्स लाइन प्रिंटर' आने पर लाइन प्रिंटर टेक्नोलॉजी में गति आई हैं यह तेजी से बिना आवाज के अपना कार्य सम्पन्न करता है। इससे अनेक लाभ हैं :

1. इससे प्रति माह 75,00 पृष्ठ मुद्रित किए जा सकते हैं।
2. पत्र व्यवहार के मसौदे तैयार हो सकते हैं और आंकड़ों को कई आकारों में प्रस्तुत किया जा सकता है।
3. अलग-अलग 15 तरीकों से अक्षरों को घनत्व प्रदान किया जा सकता है।
4. घनत्व की दृष्टि से प्रति इंच लाइनों के चुनाव की सुविधा है।
5. प्रति इंच 240×240 डॉट तक ग्राफिक्स की सघनता का चुनाव संभव है।
6. एक ही कार्ड में श्रेणी इंटरफेस और समानांतर इंटरफेस दोनों के लिए अलग-अलग सुविधा है, जिसको इच्छानुसार स्वचालित ढंग से चलाया जा सकता है।

यह प्रिंटर इतना सुदृढ़ और टिकाऊ है कि काफी लम्बे समय तक लगातार काम करने पर भी कार्यकुशलता पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। इसका निर्माण जर्मनी की एक कंपनी के सहयोग से किया गया है।

देवनागरी में कार्य करने की सुविधा अन्य पद्धतियों/कम्प्यूटरों में भी उपलब्ध है, जिनमें से कुछ का विवरण दिया जा रहा है :

'जिस्ट' प्लग-इन-कार्ड

जिस्ट (ग्राफिक्स इंटेलिजेंस बेस्ट इंडियन स्क्रिप्ट टर्मिनल) कार्ड को किसी भी आई.बी.एम. कंप्यूटर में केवल लगाकर केवल हिंदी न वरन् भारत की किसी भी भाषा में 'इनपुट-आउटपुट' की व्यवस्था प्राप्त कर सकते हैं। कमांड आदेश बहुत सरल है। ध्वन्यात्मक कुंजीपटल होने से इसको सीखना आसान है, बस इसकी शर्त यही है कि पर्सनल कंप्यूटर में हरक्यूलिस कार्ड तथा हाई रिजोल्यूशन वाला मॉनीटर उपलब्ध हो। इसकी सहायता से लोकप्रिय पैकेज हिंदी या भारतीय भाषाओं में चलाए जा सकते हैं। इलेक्ट्रॉनिक विभाग की इस काम में महत्वपूर्ण भूमिका है।

आलेख

हिन्दीट्रॉन ने एक द्विभाषी (हिंदी/अंग्रेजी) शब्द संसाधक पैकेज 'आलेख' निकाला है जो केवल हरक्यूलिस कार्ड के साथ ही काम करता है। अब तो इसका और संस्करण निकाला गया है।

देवनागरी कंपाइलर

सॉफ्टैक प्रा.लि. ने देवनागरी कंपाइलरों को नये रूप में प्रस्तुत किया है, जिसकी सहायता से (यूनिक्स आपरेटिंग सिस्टम के साथ) हिंदी में प्रोग्राम बनाए जा सकते हैं। कंप्यूटर की भाषाओं- बेसिक, कोबोल, फोरट्रॉन आदि में यदि देवनागरी के नाम और संकेत प्रविष्ट करवाए जा सकें तो इनके प्रोग्रामों के द्वारा हिंदी में काम किया जा सकता है और परिणाम भी हिंदी में मुद्रित हो सकते हैं।

'बाइस्क्रिप्ट' शब्द संसाधक

भारत सरकार के उपक्रम सी.एम.सी.लि. ने हिंदी-अंग्रेजी में (द्विभाषी) शब्द संसाधक सॉफ्टवेयर पैकेज बाइस्क्रिप्ट तैयार किया है जिसका उपयोग आई.बी.एम.पी.सी. के सभी कंप्यूटरों पर किया जा सकता है।

प्रकाशक

मै0 सोजाटा ने 'प्रकाशक' नाम से 'डेस्क-टाप प्रिंटिंग सॉफ्टवेयर' तैयार किया है, जिसकी सहायता से भारतीय भाषाओं में छपाई की जा सकती है। जिस कंप्यूटर में हार्ड डिस्क लगी हो, उसमें इसका उपयोग किया जा सकता है। इसमें इलैक्ट्रॉनिकी विभाग द्वारा मानकीकृत कुंजी पटल प्रयोग किया गया है। अगर 'वेन्चुरा' (Ventura) सॉफ्टवेयर के साथ इसका उपयोग किया जाए तो विभिन्न आकारों तथा शैलियों में छपाई की जा सकती है। 'पेजमेकर' सॉफ्टवेयर के साथ भी इसका उपयोग होता है। इसका योगदान टाइपसेटिंग व प्रकाशन में उल्लेखनीय है। अति सूक्ष्म लेजर प्रिंटिंग पद्धति से छापा जा सकता है।

डेटाबेस

छोटे कंप्यूटरों पर अब डेटाबेस (Database) का उपयोग बहुत होता है। डेटाबेस एक विशेष प्रकार की व्यवस्था है, जिसमें किसी भी प्रकार के आंकड़े सुव्यवस्थित ढंग से इकट्ठे किए जा सकते हैं। अब वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली विभिन्न विषयों की पारिभाषिक शब्दावली इस पद्धति से ही प्रकाशित कर रहा है।

इस समय विश्व में सबसे लोकप्रिय डेटाबेस पैकेज डीबेस-3 (dbaseIII) है, भारत में द्विभाषी रूप में कार्य करने वाला एक डेटाबेस 'डेवबेस' (Devbase) बनाया गया है। इसमें डीबेस-3 की सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं।

इस समय 'अक्षर', 'शब्दमाला', 'शब्दरत्न' जैसे दर्जनों सॉफ्टवेयर पैकेज हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। अब तो वर्डस्टार, स्प्रैडशीट तथा लोटस जैसे पैकेजों के समान सुविधाएं हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हो गई हैं, जैसा कि डीबेस-3 के विषय में बताया जा चुका है।

पिछले दो दशकों में कंप्यूटर में हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में वे सभी सुविधाएं प्राप्त हो गई हैं, जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। काफी प्रयत्नों के बाद अब कंप्यूटर द्वारा

नागरी में लिप्यंतरण भी संभव हो गया है। अंग्रेजी में बनी टेलीफोन डाइरेक्टरी तथा हवाई/रेलवे आरक्षण सूची अब नागरी में लिप्यंतरण कर प्रकाशित/मुद्रित की जा सकती है, जिसको राष्ट्रीय सॉफ्टवेयर टैक्नोलॉजी केंद्र, बंबई ने एयर इंडिया के लिए तैयार किया है।

अक्षर, मल्टीवर्ड, शब्दमाला, शब्दरत्न, आलेख सभी में यह सुविधा है कि शब्दों को ढूंढकर बदलना, शब्दों के समूह को इधर-उधर करना, विभिन्न पतों पर एक जैसे पत्र भेजना संभव है। शब्दमाला व शब्दरत्न में मैमोरी कम है जब कि अन्य में अधिक। कुंजीपटल सामान्यत: मानकीकृत है। मैमोरी से पाठ मुद्रित करने की सुविधा अधिकांश में उपलब्ध है। जहां नहीं भी है, उसको उपलब्ध कराया जा रहा है। 'अक्षर' से तो इस प्रकार की छपाई (बोल्ड, छोटा दो बार, सुपरस्क्रिप्ट, नीचे लाइन, बीच के कटे, विभिन्न-आकार, चित्रों सहित) संभव है। 'मल्टीवर्ड' में लिप्यंतरण की सुविधा उपलब्ध है।

इन शब्द संसाधनों में लगभग वे ही सुविधाएं हैं जो वर्ड स्टार, वर्ड परफेक्ट, माइक्रोसॉफ्ट जैसे अधुनातन वर्ड प्रोसेसरों में सुलभ है। 'सुलिपि' नामक सॉफ्टवेयर 'जिस्ट' के समान है। परस्पर लिप्यंतरण की सुविधा हिंदी, पंजाबी, बंगला और गुजराती में उपलब्ध है। 'सुलिपि' प्रणाली लैन (LAN) के परिवेश में नागरी में कार्य करने के लिए सुलभ है। इस पर आधारित इंटरफेस भी विकसित किया गया है।

सी डैक (सेंटर फार डेवलपमेंट आफ एडवांस्ड कंप्यूटिंग), पुणे के तत्वावधान में अनेक प्रकार के कार्यक्रम विकसित हो रहे हैं। लिस्प[1] की सहायता से उप-शीर्षक भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। अब तो वर्तनी जांचने का कार्य भी OSB - हिंदी शब्द संशोधक की सहायता से किया जा सकता है, जिसका विकास बंबई की हिंद सॉफ्ट इनकारपोरेटेड ने किया है।

जैसा स्पष्ट किया जा चुका है कि 'सुलिपि' पर आधारित 'अंतरापृष्ठ' (इंटरफेस) विकसित कर लिया गया है, जिसकी सहायता से कंप्यूटर पर नागरी-हिंदी में संदेशों का

---

[1] लिस्प (lisp) एक क्रमादेशन भाषा है, जिसका प्रयोग विशेषज्ञ तंत्रों के विकास तथा अन्य कृत्रिम वृद्धि संबंधी अनुप्रयोगों में किया जाता है। यह एक प्रतीकात्मक भाषा है।

आदान-प्रदान संभव है। 'इंटरफेस' वस्तुत: दो तंत्रों के बीच लगायी गई वह युक्ति/प्रणाली है जो तंत्रों को परस्पर सुसंगत बनाती है।

आज संभावनाएं बढ़ती जा रही हैं। अनेक अमेरिकन व जर्मन वैज्ञानिकों विशेषत: श्री रिक ब्रिग्स की धारणा है कि संस्कृत भाषा (देवनागरी लिपि) कंप्यूटर प्रोग्राम की दृष्टि से आदर्श भाषा है इसलिए नागरी लिपि की संभावनाएं उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाएंगी। डॉ0 ब्रिग्स रोबोट्स के कृत्रिम मस्तिष्क पर शोध-कार्य कर रहे हैं, जिसका निष्कर्ष यही है कि भविष्य के लिए कंप्यूटर की लिपि देवनागरी होगी। लगता है इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में देवनागरी लिपि ही विश्वनागरी बन जाएगी और विनोबा भावे का स्वप्न साकार होगा।

हिन्दी का विकासशील स्वरूप (शब्दावली के संदर्भ में)

'मेरा विश्वास है कि लगभग दूसरी हर चीज की तुलना में भाषा किसी राष्ट्र के चरित्र की ज्यादा बड़ी कसौटी है। अगर भाषा शक्तिशाली और जोरदार होती है तो उसको इस्तेमाल करने वाले लोग भी वैसे ही होते हैं। अगर वह छिछली, लच्छेदार और पेचीदा है तो उसे बोलने वाली प्रजा में भी वही लक्षण देखने को मिलेंगे। × × × × अखिल भारतीय भाषा यदि कोई हो सकती है तो सिर्फ हिन्दी या हिन्दुस्तानी - कुछ भी कह लीजिए - ही हो सकती है।' (पं0 जवाहर लाल नेहरू)

कम्प्यूटर अनुवाद की संभावनाएं

मशीनी अनुवाद में तीन चीजों की आवश्यकता होती है :

1. मशीन - कम्प्यूटर
2. उपयुक्त प्रक्रिया।
3. वैज्ञानिक रीति से सुविचारित भाषिक सूचनाएं।

उपर्युक्त में से प्रथम दो - कम्प्यूटर तथा प्रक्रिया का संबंध कम्प्यूटर वैज्ञानिकों से है। वैज्ञानिकों ने इस दिशा में पर्याप्त प्रगति कर ली है। अनुवाद कार्य के लिए प्राय: डिजिटल कम्प्यूटरों का प्रयोग किया जाता है।

इसी बात को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

1. हार्डवेयर - मशीन - कम्प्यूटर

2. सॉफ्टवेयर - प्रक्रिया - उपयुक्त प्रक्रिया

इस प्रकार यह संयुक्त प्रयास है जिसमें वैज्ञानिकों तथा भाषाविदों का अनुसंधान शामिल है। जैसा कहा जा चुका है, इसमें प्राय: डिजिटल कम्प्यूटरों का प्रयोग किया जाता है। उपयुक्त प्रक्रिया की दिशा में आशातीत सफलता मिली है।

मोटे तौर पर हम समझ सकते हैं कि कम्प्यूटर का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है - सी. पी.यू. (सेंट्रल प्रोसोसिंग यूनिट) यानि केंद्रीय प्रक्रिया इकाई जिसमें विभिन्न भंडार होते हैं। यंत्र में स्मरण रखने की शक्ति पर सब कुछ निर्भर होता है जिसको 'स्मृतिकोश' (मेमोरी) कहते हैं।

यह प्रक्रिया इस प्रकार प्रदर्शित की जा सकती है :

के.प्र.इ. (सी.पी.यू.)

आगत (इनपुट)	अर्थमेटिक	नियंत्रण	स्मरण शक्ति	निर्गत (आउटपुट)
की बोर्ड कार्ड के माध्यम से		डिस्कटेप		मुद्रित रूप में दृश्य रूप में कार्ड पंच रूप में

डिजिटल कम्प्यूटर 'बिट' (बाइनरी डिजिट) के अनुसार कई प्रकार संभव है - मेन फ्रेम, मिनी तथा माइक्रो। 1971 में जो पहला माइक्रोप्रोससर बना था वह एक किलो बाइट सूचनाएं एकत्र करने में समर्थ था। अब चौंसठ किलोबाइट के चिप्पड़ आम चीज बन गए हैं और भी अधिक किलोबाइट के चिप्पड़ (चिप्स) बाजार में आने को तैयार हो चुके हैं। वह दिन दूर नहीं जब 'मेगाबिट' (दस लाख) के स्मृति चिप्पड़ आ जाएंगे।

अनुवाद कार्य के लिए ऐसे कम्प्यूटर की आवश्यकता है जिसके माध्यम से एक भाषा दूसरी भाषा में परिवर्तित की जा सके। इन दोनों भाषाओं के मध्य 'ऐसा माध्यम' होगा जो दोनों भाषाओं को जानता है। यह मध्यस्थ ही तकनकी शब्दावली में लोक प्रचलित शब्द 'इंटरप्रेटर'

(दुभाषिया) - भाषांतरकार के रूप में जाना जाता है। मान लीजिए तमिल से हिन्दी में अनुवाद करना है तो 'इंटरप्रेटर' ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से तमिल में दी गई सामग्री हिन्दी में अनूदित रूप में जा सकेगी। 'भाषांतरकार' को ही 'उच्चतर स्तरीय भाषा' (हायर लेवल लैंग्वेज) कहा जाता है। इस प्रकार का कम्प्यूटर सिर्फ निर्देशों का पालन करने के लिए बनाया गया है और दिए गए निर्देशों के अनुसार काम करता है। जब मशीन को काम करने के लिए निर्देश कार्यक्रम देते हैं तो वह काम करना प्रारंभ कर देती है। इस प्रक्रिया को ही 'प्रोग्रामिंग' कहते हैं। विविध प्रकार के कार्यों के सम्पादन तथा उनके उपयोग के लिए सॉफ्टवेयर के रूप में आज्ञा, संपादन, विनिमय, विलमय, मिटने/मिटाने, टंकरण आदि के लिए अनेक एकक होते हैं।

'अनुवाद' की दृष्टि से दो महत्वपूर्ण कार्य पहले से तैयार करने होते हैं :

1. कोश (डिक्शनरी)
2. भाषिक विश्लेषणात्मक अध्ययन।

कोश (डिक्शनरी)

मशीनी अनुवाद तब तक संभव नहीं है जब तक द्विभाषी उच्चस्तरीय कोश तैयार न हों। रूस के संदर्भ में 'कंप्यूटर' का मशीनी अनुवाद के रूप में विकास में राष्ट्रीय भाषाकोश की आवश्यकता पड़ी। अमेरिका में भी इसके विकास में राष्ट्रीय विज्ञान फाउंडेशन, आर्मी, नेवी (जलसेना), वायुसेना आदि ने विशेष रूचि ली। सर्वप्रथम जॉर्जटाउन विश्वविद्यालय ने पचास हजार शब्दों (रसायन शास्त्र, भौतिकी, जीवविज्ञान, समाज विज्ञान विषयों) का रूसी-अंग्रेजी कोश तैयार किया। बाद में आई.बी.एम. ने डेढ़ लाख शब्दों का रूसी-अंग्रेजी कोश तैयार किया जिसमें लगभग ढाई लाख शब्द हैं। ब्राउन ने जो अंग्रेजी कोश तैयार किया, उसमें साढ़े तीन लाख शब्द हैं।

भारत में जो कम्प्यूटर तैयार हो चुका है उसमें सूचना संग्रहण के लिए सीमित क्षमता है। एक लाख दो हजार चार सौ लक्षणों/शब्दों की क्षमता वाले चार डिस्क रखे जा सकते हैं। सामान्यत: ऐसे कोशों की आवश्यकता है जो द्विभाषी हों और जिनमें चार-पांच लाख शब्द हों। वैज्ञानिक-तकनीकी शब्दावली का कोश पृथक बनाया जा सकता है और दूसरा सामान्य शब्दावली का। आवृत्तिपरक शब्दावलियां तैयार की जाएं। अनुवाद का कार्य मुख्यत: अर्थबोध पर केंद्रित होता

है। अर्थ निश्चित करने में भाषेतर कारण भी होते हैं। अर्थबोध ग्रहण करने में मशीन असमर्थ होती है क्योंकि उसमें विचार की शक्ति/क्षमता नहीं होती (अब इस दृष्टि से विकास किया जा रहा है) फिर भी प्रयोगों के संदर्भ में अर्थ प्रकट करने की क्षमता आसानी से विकसित हो सकती है। प्रत्येक शब्द की प्रविष्टि में व्याकरणिक कोटि का निर्देश करना होगा और उसके अनुसार परिभाषाएं देनी होंगी। परिभाषाएं 1,2,3,4 ... अनेक हो सकती हैं।

प्रयोग कोश की नितान्त आवश्यकता है। प्रयोग के अभाव में अर्थ स्पष्ट ही नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ 'पड़', क्रिया के विभिन्न प्रयोग लिए जा सकते हैं :

1.1	क	ख		क	ख
	-- में --- पड़ना			कान	दवा
				तरकारी	नमक
				फल	कीड़े
				पेट	भोजन
1.2	क	ख		क	ख
	-- पर -- पड़ना			छत	पलंग
				पलंग	बिस्तर
2.1	क				
	-- में पड़ना		क-1-	धर्मशाला	सराय
			ख-2-	बात-चीत,	बातचीत
2.1.1					
2.1.2	क				
2.2	-- पर पड़ना		क-1-	बिस्तर	
2.21			क-2-	बाप, मां	
3.	--- पड़ना		क-	कोई भी संज्ञा	
				घूंसा, लात, पत्थर	

ओला

डाका

ठंड, गर्मी

गले

लागत

चैन

(सभी भिन्न-भिन्न अर्थ)

क

4. --- पड़ना क- कोई भी विशेषण

खाली, भारी

नरम, कमजोर

मजबूत

महंगा आदि

5. क

--- पड़ना. (क) अन्य क्रियाओं के रूप - जैसे जान, चौंक, हंस, कूद चल, निकल, घूम आदि।

किसी भी शब्द के एकाधिक अर्थ हो सकते हैं; जैसे,

इंटरेस्ट (अंग्रेजी शब्द) 1. व्याज, सूद (व्यापारी, बैंक, वाणिज्य)

2. हित (विधि)

3. रूचि (सामान्य)

ऑपरेशन (Operation) 1. परिचालन (प्रशासन)

2. शल्य क्रिया (चिकित्सा)

3. प्रवर्तन (विधि)

4. अभियान, कार्रवाई (सेना-पुलिस)

पॉइण्ट (Point)

1. अंक (गणित)
2. बिन्दु (विज्ञान)
3. पॉइंट (मुद्रण)
4. दशमलव (गणित)
5. चिह्न (सामान्य)
6. स्थल (अर्थशास्त्र)
7. नोक (धातु)
8. मुद्दा (प्रशासन, बैठक, प्रारूप)

किसी भी शब्द का ठीक-ठीक अर्थ जानने के लिए 'सहप्रयोग' सहायक सिद्ध होते हैं। इस दिशा में पर्याप्त कार्य अपेक्षित है। अंग्रेजी में इस दृष्टि से प्रो0 जे.आर. फर्म तथा प्रो0 मैकिंटोश के कार्य उल्लेखनीय हैं। डॉ0 सूरजभान सिंह ने 'स्पीकर' शब्द को लेकर इस बात को समझाया है। इस युक्ति का प्रयोग कंप्यूटर के संदर्भ में उपयोग होता है।

"इस 'स्पीकर' (Speaker) शब्द के तीन अर्थ हो सकते हैं :

वक्ता, अध्यक्ष (संसद का), स्पीकर (लाउडस्पीकर)। किसी वाक्य का पाठ में Speaker का 'वक्ता' अर्थ अभीष्ट है या 'अध्यक्ष' या 'लाउडस्पीकर', यह कम्प्यूटर कैसे समझेगा। इसके लिए प्रोग्रामर को विशेष प्रयत्न करना होगा। उसे यह देखना होगा कि Speaker शब्द के आगे-पीछे के वाक्य में किस प्रकार के शब्दों के प्रयोग की संभावना होती है। यदि Speaker का अभीष्ट अर्थ 'अध्यक्ष' है तो वाक्य में या उसके आगे-पीछे के वाक्यों में सामान्यत: House, Parliament[Member of Parliament, Minister, adjourn आदि संबद्ध शब्दों के प्रयोग की अधिक संभावना है। इस परिवेश में कम्प्यूटर Speaker शब्द का अनुवाद 'अध्यक्ष' करेगा। इसी प्रकार 'वक्ता' के अर्थ में Speaker के आसपास debate, eloquent, audience आदि संबद्ध शब्दों के प्रयोग की अधिक संभावना होती है। ये संबद्ध शब्द अर्थ को स्पष्ट करने के लिए संकेतक का कार्य करते हैं।"

क्रियाओं को भी विविध संदर्भों में देखना होगा जिसकी सूक्ष्मता अनुवाद करते समय सर्वाधिक उपयोगी होगी जैसे,

देखना	- आंखों से देखना	- मैंने कौवे को देखा।
	- बीनना	- मैं चावल में कंकड़ देख रहा हूं।
	- ध्यान देना	- देखो, कौन सामने आ रहा है।
	- पढ़ना	- आपने यह पत्रिका देखी है ?
	- ध्यान रखना	- रोगी का ब्लडप्रेशर देखते रहना।
	- चयन करना	- बच्चों के लिए कपड़े देख रहा हूं।
	- मानसिक क्रिया	- मैंने स्वप्न में देखा कि ...
	- प्रबंध करना	- कल से आप कार्यालय में काम देखना।
	- धमकी	- उसने कहा कि मैं तुम्हें देख लूंगा।

पर्यायों की समस्या भी विकट है। इस दृष्टि से आचार्य रामचन्द्र वर्मा, डॉ0 बदरीनाथ कपूर, डा0 ब्रजमोहन के कार्य उल्लेखनीय हैं। लेखक (डॉ0 कैलाश चन्द्र भाटिया) ने स्वयं प्रशासन के क्षेत्र में आने वाली शब्दावली का अध्ययन किया है जो 'अंग्रेजी-हिंदी शब्दों के ठीक प्रयोग' शीर्षक से प्रकाशित है। इस दिशा में पर्याप्त कार्य अभी अपेक्षित है। इस प्रकार मशीन अनुवाद के लिए पर्याप्त मानवीय प्रयास भी अपेक्षित हैं।

भाषा में संक्षिप्त रूप तथा संक्षिप्तीकरण (एक्रोनिम) की बड़ी समस्या है। इसका भी पृथक् से कोश होना चाहिए। डॉ0 नरेश कुमार ने एक कोश तैयार किया है पर निरन्तर विकास के कारण संशोधन की आवश्यकता है।

किसी भी भाषा में निरन्तर भाषिक प्रयोगों की संभावनाओं की निरन्तर वृद्धि अपेक्षित है।

अनुवाद करते समय जो शब्द कोश में नहीं मिलते उन्हें वैसा ही मूलभाषा से लक्ष्यभाषा में लिखा जा सकता है। व्यक्तिवाचक तथा स्थानवाचक नामों में लिप्यंतरण की विकट समस्या है। इस दृष्टि से नाम कोश की आवश्यकता है।

अनुवाद करते समय दोनों भाषाओं के मुहावरों-लोकोक्तियों के अनुवाद की जटिल समस्या है। अच्छा रहेगा कि इस प्रकार के कोश विस्तृत व्याख्या के साथ उपलब्ध रहें।

भाषिक विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रारंभ में भाषात्मक विश्लेषण और कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग को साथ-साथ रखा गया। बाद में यह अनुभव किया गया कि दोनों को अलग रखना उचित होगा क्योंकि भाषिक विश्लेषण में किसी कारणवश हेर-फेर करना पड़े तो सारा प्रोग्राम बदलना पड़ता है।

दो भाषाओं में परस्पर अनुवाद का मूल काम तो भाषिक विश्लेषण पर आधारित है। प्रत्येक शब्द/पद का संदर्भानुसार अर्थ निश्चित करना पड़ता है तत्पश्चात् अर्थ का अन्य भाषा में रूपांतरण किया जाता है। शब्दकोश व परिभाषा कोशों की आवश्यकता पड़ता है। कभी-कभी रूप और आक्षरिक संरचना (सुर तथा बलाघात के साथ) भी अर्थ को निश्चित करने में सहायक सिद्ध होती है। समध्वनि वाले दो या तीन पृथक-पृथक शब्दों की समस्या भी है।

'से' सामान्यत: करण कारक का चिह्न है और अपादान का भी, पर 'मुझसे चला नहीं जाता' वाक्य में 'से' कर्तृव्य का बोध होता है। शब्द, क्रिया रूप, प्रत्यय-उपसर्ग के अतिरिक्त भाषा की वाक्य संरचना भी अर्थ निर्धारण में महत्वपूर्ण होती है। एक ओर वाक्य में पदबंधों की संरचना का महत्व बढ़ गया है तो दूसरी ओर प्रोक्ति विश्लेषण अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है। भाषा के वैज्ञानिक विश्लेषण का कार्य सूक्ष्म दृष्टि से अपेक्षित है।

प्रत्येक भाषा की विशेषताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। सर्वनाम सरल होते हुए भी जटिलता ले लेते हैं और उनसे क्रिया की अन्विति प्रभावित होती है। तेलुगु भाषा में संधि-विधान की कठिनाई है तो हिंदी में लिंग-विधान की। हिन्दी में कर्म-कर्ता के अनुसार क्रियारूप प्रभावित होते हैं। हिन्दी की संयुक्त क्रियाओं की जटिलता सर्वविदित है। अनेक भाषिक पक्ष इस प्रकार परस्पर गुंथे रहते हैं कि उनको अलग-अलग करना संभव नहीं होता है।

कम्प्यूटर तो प्रदत्त व्याकरण के सिद्धांतों और कोश की सहायता से किसी एक भाषा के वाक्य को दूसरी भाषा के वाक्य में रूपांतरित कर देगा। शब्दश: अनुवाद तो बहुत सरल है पर वह इतना बेतुका तथा अटपटा होगा कि हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न कर देगा। यंत्र की अपनी सीमाएं हैं फिर भी वाक्य-प्रति वाक्य अनुवाद अधिक उपयोगी होगा जिसमें अभिव्यक्तियों (स्ट्रिंग) को लेना

होगा। इस प्रकार के एक बड़े कोश की महती आवश्यकता है। लेखक ने स्वयं इस दिशा में पहल की है।

ऐसी स्थिति में 'यंत्र द्वारा सहयोजित अनुवाद' (मशीन ऐडड ट्रांसलेशन) का उपयुक्त सम्पादन कुशल व्यक्ति द्वारा सम्पन्न होगा जिससे यह ठीक भाव व्यक्त कर सके। अभिव्यक्तियों में कुछ जोड़ना, हटाना अथवा बदलना होगा। इस प्रकार की प्रक्रिया को 'अभिशोधन (अपडेटिंग) कहा जाता है। इस कार्य में पांच प्रतिशत समय ही लगेगा और संपादक ऐसे 15-20 लेखों को उतने समय में ही संशोधित अनुवाद रूप में दे सकेगा जितने समय में वह एक ही लेख तैयार कर पाता था। इससे यह लाभ तो होगा ही कि सम्पादक धीरे-धीरे अनुवाद कार्य में निष्णात होकर मौलिक लेखन की ओर भी अग्रसर होगा।

दो भाषाओं का व्यतिरेकी अध्ययन भी तैयार करना होगा। व्याकरणिक संरचना का जितना सूक्ष्म विश्लेषण, शब्द की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थछटाओं, वाक्य, पद-बंध, प्रयोग के साथ वाक्यान्तर्गत पदबंधों की संरचना तथा प्रोक्ति संरचना के नियमों-उपनियमों के प्रोग्रामिंग की विधि से दिया जाएगा, अनुवाद उतना ही मूल के निकट होगा और संपादन में कम समय लगेगा। इस दृष्टि से रूपांतरण मॉडल बहुत उपयोगी होगा और स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में अनुवाद करने के लिए कुछ नियम स्थिर करने होंगे। कभी-कभी स्रोत भाषा के एक नियम के लिए लक्ष्य भाषा में दो नियम भी बनाने होंगे। इस संपूर्ण प्रक्रिया से दोनों भाषाओं के मध्य 'ट्रांसफर व्याकरण' का निर्माण करना होगा जिससे कम्प्यूटर में प्रस्थापित 'इंटरप्रेटर' ठीक-ठीक अनुवाद कर सके।

कम्प्यूटर के लिए भाषा संबंधी विश्लेषणात्मक अध्ययन की दिशा में श्री विजय कुमार मल्होत्रा ने सुविचारित योजनाएं प्रस्तुत की हैं। इन योजना में प्रमुख हैं :

1. संकल्पनात्मक निर्भरता (Conceptual Dependency-CD)
2. आर्थी जालक्रम (Semantic Network)
3. फ्रेम (Frames)
4. संकल्पनात्मक ग्राफ (Conceptual Graph)

उपयुक्त योजनाएं ज्ञान निरूपण के लिए हैं इसके साथ ही पद निरूपण की विभिन्न तकनीकों पर आधारित अनुवाद के लिए कुछ उपादान आवश्यक हैं (1) पूर्व संसाधित्र, (2) पदनिरूपित्र, (3) शाब्दिक विश्लेषित्र, (4) शाब्दिक डाटा संचय, (5) क्रिया पदबंध विश्लेषित्र, (6) अनुवादित्र, (7) जनित्र।

इस प्रक्रिया को श्री मल्होत्रा ने इस प्रकार स्पष्ट किया है :

"सर्वप्रथम पूर्व संसाधित्र स्रोत भाषा के वाक्यों का विश्लेषण करता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि विशिष्ट वाक्य सही है या नहीं। इसका दूसरा कार्य है, जटिल वाक्यों को सरल वाक्यों में बदलना। यदि मध्यवर्ती भाषा की विधि अपनाई गई हो, तो पूर्व संसाधित्र निर्दिष्ट वाक्यों की वाक्य संरचना को संदर्भ-संरचना में बदल देता है। पद निरूपित्र स्रोत भाषा के व्याकरण के आधार पर निर्दिष्ट वाक्य की पद-संरचना करता है और व्याकरणिक दृष्टि से सही और गलत वाक्यों का भी पता लगाता है और फिर शाब्दिक तत्वों की खोज करके, व्याकरणिक दृष्टि से सही वाक्यों का पदनिरूपक वृक्ष बना देता है।

"पदनिरूपण के बाद शाब्दिक विश्लेषित्र स्रोत भाषा के पदनिरूपण के लिए आवश्यक शाब्दिक तत्वों का विश्लेषण करता है। अनुवाद के लिए लक्ष्य भाषा के पर्यायों के साथ उसका मिलान करता है शब्द संचय एक द्विभाषी या बहुभाषी शब्दकोश होता है, जिसमें शब्दों के साथ उनके भाषिक पक्षों का समावेश भी होता है।

"प्राकृतिक भाषाओं के वाक्यों में क्रिया का महत्व सबसे अधिक माना जाता है।

"अनुवादित्र द्विभाषी या बहुभाषी कोश से पर्याय ढूंढने का काम करता है और अंत में जनित्र लक्ष्य भाषा के व्याकरण के आधार पर वाक्य का अनुवाद कर देता है।"

इस दिशा में सर्वाधिक व्यवस्थित कार्य आई.आई.टी. कानपुर में हुआ है। इस प्रणाली से भारतीय भाषाओं के मध्य परस्पर अनुवाद की प्रक्रिया को विकसित किया गया है। कम्प्यूटर विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग के तत्वावधान में विनीत चैतन्य, राजीव संगल आदि वैज्ञानिकों के सतत प्रयास से जो प्रणाली विकसित की गई उसकी ही 'अनुसारक' भाषा परिवर्तक की संज्ञा दी गई है।

इस प्रणाली को पूर्णत: स्वचालित और श्रेष्ठ कोटि का मशीन अनुवाद (क्वालिटी ऑटोमेटिक मशीन ट्रांसलेशन - क्यू.ए.एम.टी.) कहा गया है। अनुवाद मशीन (कम्प्यूटर) और मानव दोनों ही कर सकते हैं। ज्ञान पर आधारित अनुवाद मानव पर छोड़ दिया जाए पर भाषा के नियमों पर आधारित अनुवाद कार्य मशीन पर छोड़ा जा सकता है। उनके अनुवाद 'अनुसारक की मदद से किसी एक भाषा को जानने वाला व्यक्ति किसी अन्य भाषा के पाठ को भी पढ़ सकता है। यह व्यक्ति को किसी भाषा की पाठ्य सामग्री का ऐसा कच्चा अनुवाद उसकी समझ में आने वाली भाषा में उपलब्ध कराता है जिसमें व्याकरण का ध्यान ज्यादा नहीं रखा जाता; लेकिन आसानी से समझा जा सकता है। अनुसारक एक प्रकार से अनुवाद की समस्या पर नये ढंग से सोचने का नतीजा है। इसमें लक्ष्य हू-ब-हू अनुवाद नहीं है बल्कि व्यक्ति को किसी अन्य भाषा में लिखी पाठ्य सामग्री की जानकारी उसके समझ में आने वाली भाषा में मुहैया कराना है। चाहे इस जानकारी को ठीक से समझने के लिए व्यक्ति को खुद भी कुछ प्रयास करना पड़े।' इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है कि इसको ठीक-ठाक समझने के लिए प्रयास की आवश्यकता पड़ेगी। संपादन कार्य करना होगा जिसमें अस्पष्ट अर्थों को सही रूप देना, संज्ञा और क्रिया में तालमेल बिठाना, अर्थ शैली के अनुसार अर्थ बदलना शामिल है।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर ने इस प्रणाली को विकसित किया है और कन्नड़ से हिन्दी में अनुवाद कर इसका वर्किंग सिस्टम प्रदर्शित किया है। इस 'सिस्टम' में तीस हजार मूल शब्द हैं।

इसके प्रयोग के लिए 'इण्टरफेस' भी विकसित करने का लक्ष्य है। अनूदित सामग्री को समझने में इंटरफेस तुरंत मदद देगा। 'इंटरफेस' (अंतरापृष्ठ) दो तंत्रों के बीच लगायी गई वह युक्ति अथवा प्रणाली है जो तंत्रों को परस्पर सुसंगत बनाती है। इसके द्वारा सुसंगतता के लिए कोड संरूप, प्रचालन गति, वैद्युत संकेत आदि में अपेक्षित परिवर्तन किए जाते हैं। अनूदित पाठ्य सामग्री को संपादन कर और बेहतर बनाना चाहें तो इसके लिए अलग प्रकार के इंटरफेस की जरूरत होती है। अच्छे अनुवाद के लिए पाठ्य सामग्री का पूर्व संपादन किया जाना चाहिए। इस दिशा में अनुवाद के

लिए शब्दकोषों, भाषा-नियमों, व्याकरण, कम्प्यूटर विज्ञान, तर्क विज्ञान, मशीनी मस्तिष्क, संज्ञेय मनोविज्ञान, भाषा दर्शन व ऑपरेशन रिसर्च की महती आवश्यकता है।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि 'भाषाविद के लिए अनुसारक एक तरह से दूरबीन का काम करती है। जैसे खगोलविद दूरबीन से अन्तरिक्ष में दूर-दूर तक की चीजें देख सकता है, वैसे ही अनुसारक से व्यक्ति की विभिन्न भाषाओं तक आसानी और शीघ्रता से पहुंच संभव होगी।

कई बार सही भाषा के लिए 'अनूदित' वाक्य का मूल वाक्य देखने की जरूरत पड़ती है, अनुसारक से यह संभव हो सकेगा। सर्वनिष्ठ व्याकरण के नियमों की पहचान की जा सकेगी। इसके विभिन्न भाषाओं में निकट सम्पर्क होगा और भारतीय भाषाओं के बीच नजदीकी सम्बन्ध बनेंगे।

हैदराबाद स्थित विज्ञान संस्थान में हिंदी-अंग्रेजी-तेलुगु अनुवाद की व्यवस्था की गई है। शब्द विशेष की सही शब्दकोशीय श्रेणी बताने और एक शब्द के कई संभावित अर्थों की स्थिति में उपयुक्त अर्थ बनाने की सुविधा भी इसमें उपलब्ध करानी होगी। दो प्रकार के इंटरफेस बनाने होंगे:

1. अन्य भाषा के दस्तावेजों तक पहुंचने के लिए
2. बहुभाषाविदों के लिए भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए

भाषा-संसाधन के लिए यह अभिकलित्र क्रमादेश आवश्यक होगा जो अनुभाषा, निर्वचन और अनुवाद के लिए होगा। यही भाषा-संसाधक है।

संपादन की आवश्यकता पर बल दिया जा चुका है। विशुद्ध मानव अनुवाद के अतिरिक्त संपादन को ध्यान में रखते हुए अनुवाद के निम्न प्रकार होंगे -

1. मशीन-साधित मानव अनुवाद (Machine Aided Human Translation-HANT)
2. मानव-साधित मशीनी अनुवाद (Human Aided Machine Translation-HAMT)
3. मशीनी अनुवाद (Machine Translation)

मशीनी अनुवाद के अधिकांश प्रयोग अनुवादक के सहयोग से ही सफल हो सकते हैं। मशीनी अनुवाद के लिए मध्यवर्ती भाषा (Intermediate language) या आंतर भाषा (Inter Lingua) की आवश्यकता होती है। पहली विधि पृथक-पृथक भाषा परिवार के भाषार्थियों के

मध्य अनुवाद के लिए अपनायी जाती है, जिनमें वाक्य विन्यास में काफी भिन्नता होती है और दूसरी विधि (आंतर भाषा) उन दो भाषाओं के मध्य परस्पर अनुवाद के लिए उपयोगी है जिनमें वाक्य विन्यास तथा शब्दावली में काफी समानता है, जैसे, कन्नड़ से तेलुगु में अनुवाद।

विश्व के प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रगति हुई है। अमेरिका के कैलिफोर्निया, बर्कले, न्यूयार्क, इंडियाना, ओहिओ, एम.आई.टी., जार्जटाउन, टैक्सास, हार्वर्ड आदि विश्वविद्यालयों में पर्याप्त प्रगति हुई। अमेरिका के ही हेरी ओल्सन ने एक ऐसे भाषा यन्त्र का आविष्कार काफी पहले कर लिया था जो अनेक भाषाओं के वाक्यों का एक भाषा में शीघ्रता से अनुवाद कर लेता है। जो शब्द हम बोलते हैं वे यंत्र द्वारा संकेतात्मक रूप में अंकित हो जाते हैं। इस दृष्टि से भारत में भी यूनिवर्सल डिजिटल कम्युनिकेशन रिसर्च इंस्टीट्यूट ने अंकीय कोश की विस्तृत योजना बनाई। प्रत्येक शब्द तथा वाक्य का अंकीय कोश है। इस प्रकार संख्या पर आधारित विश्व का समान कोश बन जाता है। एक भाषा की संकल्पना करते हुए कोश में मध्यस्थ रूपांतरण होता है। यह प्रक्रिया समरूपी पैटर्न का रूपांतरण करने में सहायक सिद्ध होती है अर्थात कन्नड़ और तेलुगु के मध्य सफल हो सकती है। एक प्राकृतिक भाषा से दूसरी प्राकृतिक भाषा में संपर्क कोश के माध्यम से प्रणाली विकसित की जा सकती है।

एक भारतीय भाषा से दूसरी भारतीय भाषा में कम्प्यूटर अनुवाद की प्रक्रिया सरल है, क्योंकि उनमें व्याकरण की समानता है और बहुत से शब्द मिलते जुलते समान हैं।

अब भारत में पूर्णीकृत देवनागरी कम्पयूटर आ गया है जिसने मुद्रण, प्रकाशन, संप्रेषण और लिप्यंतरण में क्रांति ला दी है। इसका विकास आई.आई.टी. कानपुर के प्रो0 आर.एम. सिन्हा ने श्री मोहन तथा डॉ0 मलिक के सहयोग से किया। 'अक्षर', 'शब्दमाला', 'शब्दरत्न', 'आलेख', 'भारती', 'बाइस्क्रिप्ट', 'मल्टीवर्ड' आदि शब्द संसाधक तो थे ही, 'जिस्ट' (Graphics and Indian Script Terminal) तकनीक पर आधारित ऐसी हार्डवेयर युक्ति का भी विकास कर लिया गया जिससे सभी भारतीय लिपियों में और साथ में रोमन लिपि में कोई भी पाठ का कुंजीयन और संसाधन संभव हो गया है। बिड़ला संस्थान (बिट्स), पिलानी के सहयोग से देवनागरी कम्प्यूटर विकसित कर लिया गया जिससे मलयालम लिपि सीखी जा सकती है। मलयालम अक्षर धीरे-धीरे बनता है

और हर वर्ण के नीचे और ऊपर उसका उच्चारण हिन्दी-देवनागरी में लिख देता है। लिप्यंतरण में इससे अभूतपूर्व सहायता मिली है।

डी.सी.एम. द्वारा नागर कम्प्यूटर 'सिद्धार्थ' तथा तमिल के संदर्भ में 'तिरूवल्लुवर' विकसित किया जा चुका है। तमिल विश्वविद्यालय, तंजावूर ने मशीनी अनुवाद की दिशा में पहल की और 1984 में Machine Translation System मोनोग्राम का प्रकाशन किया। कोच्चिन के विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में भौतिक के प्रो0 वी.पी.एन. नम्बूरी के सहयोग से डा0 एन.जी. देवकी भी इस दिशा में कार्यरत हैं। इससे पहले ही इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस, बंगलौर में प्रो0 पी. सी. गणेश सुन्दरम् ने साधारण वाक्यों के रूसी से हिन्दी में अनूदित करने की पद्धति विकसित की है। इंसडोक, नई दिल्ली में हिन्दी से बंगला में मशीनी अनुवाद की संभावनाओं पर कई विद्वान कार्यरत हैं। एन.सी.ई. (कलकत्ता) अंग्रेजी से हिन्दी से कन्नड़ में अनुवाद की दिशा में अग्रसर हैं। प्रो0 कस्तूरी रंगाचार ने कन्नड़ लिपि से संबंधित कम्प्यूटर की रचना विकसित की है। कम्प्यूटर मेण्टेनेंस कॉरपोरेशन द्वारा बहुभाषिक वर्ड-प्रोसेसर 'लिपि' विकसित की गई है। जिसके द्वारा कई लिपियों का अंतरण नागरी-रोमन दोनों में संभव है। आठ बिटों के कोड से 256 अक्षर या चिह्न व्यक्त किए जा सकते हैं जो दो लिपियों की वर्णमालाओं के लिए पर्याप्त हैं। 'लिपि' शब्द संसाधक में भी इस आठ बिटों के मानक भारतीय कोड को अपनाया गया है। 'लिपि' से लिप्यंतरण सहज भी है। यह त्रिभाषी कम्प्यूटर है। सबसे उपयुक्त टर्मिनल गोदरेज कम्पनी ने विकसित किया है जिसमें अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला, तेलुगु, तमिल में प्रविष्टि (अनुपुट) और निर्गम मुद्रण (आउटपुट) संभव है। इसके साथ ही एक सौ अस्सी प्रति सैकंड की गति से छापने वाला डॉटमेट्रिक्स प्रिण्टर है जो छह प्रकार से अक्षरों को मुद्रण करने की क्षमता रखता है। कुछ शब्द संसाधकों में 'शब्द की वर्तनी' (वर्ड लुकअप) देखने की सुविधा भी विद्यमान है।

कम्प्यूटर के प्रयोग से अनुवाद के अतिरिक्त तकनीकी शब्दावली निर्माण, पुनर्मूल्यांकन और विषयवार मुद्रण में पर्याप्त सहायता मिली है। इसी पद्धति से प्रशासन की शब्दावली (अंग्रेजी-हिन्दी तथा हिंदी-अंग्रेजी) का मुद्रण सर्वप्रथम हुआ है।

कुछ वर्ष पूर्व डा0 ओम प्रकाश के सतत प्रयासों से इलैक्ट्रॉनिकी विभाग और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग ने 'अनुवाद प्रारूप' तैयार करने के लिए कम्प्यूटर से वैज्ञानिक अनुवाद कार्य की योजना बनाई है। जहां तक वैज्ञानिक विषयों के अनुवाद का प्रश्न है, तथ्यपरक होने के कारण अधिक शुद्ध अनुवाद की संभावना है क्योंकि भाषा-शैली और भावनाओं का स्थान बहुत सीमित है। इस दिशा में कम्प्यूटर अनुवाद लाभप्रद है। साहित्य के क्षेत्र में मशीनी अनुवाद उतना सफल नहीं हो सकता है क्योंकि वहां शैलीगत विविधताएं हैं, साथ ही संवेदनशीलता व अनुभूति की प्रधानता है।

इस दृष्टि से यांत्रिक अनुवाद मात्र उन क्षेत्रों तक सीमित रह जाता है जिनमें स्पष्टता तथा निश्चितता है, जैसे गणित, प्राकृतिक विज्ञान आदि। जिन भाषाओं की रूप रचना में समानता है उन्हें यांत्रिक अनुवाद में आसानी से लाया जा सकता है, जैसे हिंदी-मराठी, गुजराती-हिंदी, कन्नड़-तेलुगु आदि। अन्य भाषाओं में कठिनाई अधिक होगी और संपादन की अधिक आवश्यकता पड़ेगी। भारतीय भाषाओं में बहुत अधिक समान शब्दावली है अतएव अधिक सरलता है। मात्र उन शब्दों के प्रयोग की ओर सतर्क रहना है जो समान होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से भिन्न हैं।

अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद की कम्प्यूटर प्रणाली

सी-डेक (सेंटर फार डेवलपमेंट आफ एडवांस्ड कम्प्यूटिंग), पुणे के तत्वावधान में अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद की एक कम्प्यूटर-प्रणाली का विकास किया जा रहा है। यह प्रणाली टेग (ट्री-एडजोइंग ग्रामर) पद्धति पर आधारित है। इस योजना के अंतर्गत कम्प्यूटर प्रणाली का डिजाइन सी-डेक के डॉ0 हेमंत दरबारी विकसित कर रहे हैं और भाषा व्याकरण का डिजाइन प्रोफेसर सूरजभान सिंह विकसित कर रहे हैं। प्रारंभ में प्रशासनिक हिंदी के एक सीमित व्यवहार -क्षेत्र की भाषा के 'कॉरपस' के आधार पर उपयुक्त कम्प्यूटर अनुवाद प्रणाली विकसित की जा रही है।

'टेग' पद्धति में शब्दकोश (लेक्सिकन) को विश्लेषण का आधार माना जाता है और हर शब्द का एक वृक्ष-व्याकरण तैयार किया जाता है जो क्रमिक रूप से एक-दूसरे से जुड़ते हुए वाक्य तक विकसित होता जाता है। इसके लिए जिस प्रकार के व्याकरण की आवश्यकता होती है वह परंपरागत व्याकरण से अलग होता है। यह व्याकरण अर्थ-संकल्पनाओं पर आधारित अन्य

व्याकरण नेटवर्क से भी अलग होता है। यह व्याकरण पार्जिंग (पद-अन्वय) पद्धति पर आधारित होता है।

'टैग' पद्धति के अन्तर्गत तीन अलग-अलग वृक्ष-व्याकरण (या पार्जिंग सेट) तैयार किए जाते हैं:

1. स्रोत भाषा का वृक्ष-व्याकरण
2. लक्ष्य भाषा का वृक्ष -व्याकरण
3. अंतरण व्याकरण (ट्रांसफर ग्रामर)

अंतरण व्याकरण के द्वारा यह लक्ष्य भाषा के समानधर्मा वृक्षों में परिणत होता जाता है जो फिर लक्ष्य व्याकरण के नियमों के अनुरूप उन शब्दों, अभिव्यक्तियों तथा वाक्यों में उनके अनूदित रूप में प्रयुक्त होता है।

इस पद्धति में फिलहाल अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद की ही संभावना पर कार्य सम्पन्न हो रहा है, हिंदी से अंग्रेजी अनुवाद पर नहीं। अभी तक इस संदर्भ में जो प्रोटोटाइप तैयार हुआ है, वह पर्याप्त उत्साहवर्द्धक है। इलेक्ट्रानिकी विभाग तथा राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र के विशेषज्ञों ने भी इस प्रणाली की संभावनाओं को स्वीकृत कर लिया है।

स्मरण रहना चाहिए कि भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद के लिए आई.आई.टी. कानपुर में जो कार्य प्रारंभ किया गया है, वह भारतीय भाषाओं के लिए (समान प्रकृति के कारण) अधिक उपयुक्त है लेकिन भाषा के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि आई.आई.टी. कानपुर के कम्प्यूटर विभाग के अध्यक्ष प्रो0 आर.एम.सिन्हा के निर्देशन में एक्जांपल बेस्ड मशीन ट्रांसलेशन पद्धति के आधार पर अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी दोनों पर प्रारंभिक कार्य हो रहा है। हिंदी-अंग्रेजी अनुवाद के लिए प्रो0 सूरजभान सिंह की पुस्तक 'हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण' में दिए गए विश्लेषण के आधार पर जिन मूल वाक्यों को लेकर मॉडल तैयार किया गया है, वह सफल पाया गया है। इसी के आधार पर आगे कार्य चल रहा है।

भारत में हिंदी के संदर्भ में 'कम्प्यूटर अनुवाद' का भविष्य बहुत उज्ज्वल है - राजभाषा के संदर्भ में राजभाषा नीति के अंतर्गत पर्याप्त सामग्री द्विभाषिक रूप में मुद्रित होना आवश्यक है।

"भाषा की टैक्नोलॉजी तेजी से बढ़ रही है। अनुवाद के लिए कम्प्यूटर का प्रयोग हो रहा है। हिंदी के वैज्ञानिकों और तकनीशियनों को इस दिशा में समय के साथ ही नहीं, दूर की सोचनी चाहिए जिससे हिंदी और हमारी दूसरी भाषाएं पिछड़ न जाएं।"

पिछले दशक में इस दिशा में भाषाविदों तथा वैज्ञानिकों ने पर्याप्त कार्य किया। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने शब्दावली का पर्याप्त विकास किया है जो अब शब्दावली बैंक में कम्प्यूटर के माध्यम से सुरक्षित है। निकट भविष्य में ही, 'निकनेट' से इसके जुड़ जाने की संभावना है। इलैक्ट्रॉनिकी विभाग, वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी (तकनीकी) विभाग, राजभाषा विभाग तथा वैज्ञानिक-तकनीकी शब्दावली आयोग के परस्पर सहयोग से इस दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई है फिर भी अभी वैज्ञानिकों और तकनीशियनों के साथ भाषाविदों को पर्याप्त कार्य करना होगा जिससे सफलता सुनिश्चित हो जाए।

000